प्राकृतिक चिकित्सा की देन

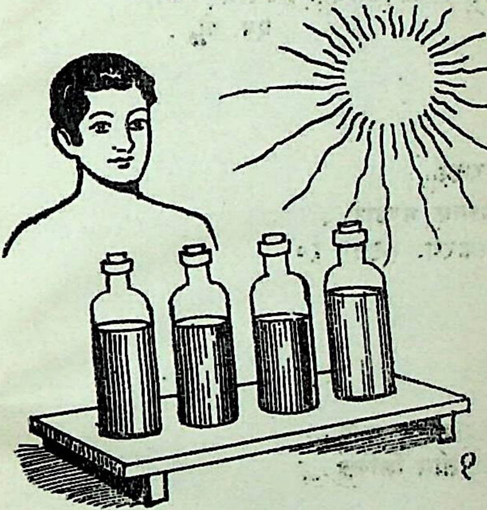
भाग तीन

प्राकृतिक चिकित्सा की महिमा

डा० जुगुल किशोर चौधरी अग्रवाल

प्राकृतिक चिकित्सा की महिमा

[प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा बुढ़ापे और बीमारियों से बचने के सरल उपायों का ज्ञान कराने वाली, शल्य-चिकित्सा की हानियों से परिचित कराने वाली तथा शारीरिक स्वास्थ्य के साथ ही विचारों को समृद्ध बनाने वाली अत्युत्तम पुस्तक]



लेखक:
सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक
डा० युगलकिशोर चौधरी अग्रवाल एन. डी.

सभी प्रकार की पुस्तकें मिलने तथा वी० पी० पी० से मगाने का एकमात्र स्थान:
देहाती पुस्तक भण्डार
चावड़ी बाजार, दिल्ली-६
दूरवाणी : २६१०३०, २६४१६१, २६५[illegible]

प्रकाशक
देहाती पुस्तक भण्डार
चावड़ी बाजार, दिल्ली—६

लेखक
डा० युगल किशोर चौधरी अग्रवाल
एन. डी.

नवीन संस्करण: १९७२ ई०

मूल्य
स्वदेश मे : बारह रुपये
विदेश में : तीस शिलिंग

मुद्रक
टैक्निकल प्रिंटिंग प्रेस
सोनीपत (निकट दिल्ली) में मुद्रित

PRAKRATIK CHIKITSA KI MAHIMA
By
Dr. Yugal Kishore Chawdhary Agarwal N.D.

दो शब्द

प्रस्तुत सङ्कलन में मेरी लिखी सात पुस्तकें---(१) बुढ़ापा और बीमारी से बचने के उपाय, (२) वस्त्रों का स्वास्थ्य पर भयंकर प्रभाव, (३) शल्य चिकित्सा, (४) प्रकृति की आवाज सुनो, (५) प्राकृतिक चिकित्सा पद्यावली, (६) प्राकृतिक चिकित्सा सूर्योदय तथा (७) विचार और समृद्धि--सङ्कलित हैं।

इन पुस्तकों के अलग-अलग कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। छोटी पुस्तिकाओं को संभाल कर रखने में पाठकों को असुविधा रहती थी, अतः मैंने अपनी लिखी ३५ पुस्तकों को 'प्राकृतिक चिकित्सा ग्रंथमाला संग्रह' के ५ खण्डों में सङ्कलित कर दिया है। आशा है, अब इन सजिल्द खण्डों के कारण पाठक मेरी पुस्तकों को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखकर निरन्तर लाभ उठाते रहेंगे।

इस रूप में मेरी सभी पुस्तकों को आवश्यक चित्रों से भी सुसज्जित कर दिया गया है।

आशा है, प्राकृतिक चिकित्सा के प्रेमी-पाठक इस 'ग्रंथमाला संग्रह' को विशेष स्नेह पूर्वक अपनायेंगे।

डा० युगलकिशोर चौधरी एन. डी.

विषय-सूची

बुढ़ापा और बीमारी से बचने के सरल उपाय

शरीर का निर्माण ९
आयु का रहस्य १५
चार प्रकार की घोर विपत्तियां २३
आरोग्य की रक्षा चिकित्सा से अच्छी है ३१
क्या आप स्वयं अपनी व्याधियां मिटा सकते हैं ४०
भोजन और आरोग्य ४४
जिन्दा और मुर्दा खुराक ५०
पाचन-क्रिया और पाचक अङ्ग ६१
संयोग विरुद्ध और प्रकृति विरुद्ध आहार ६४

वस्त्रों का स्वास्थ्य पर भयंकर प्रभाव

वस्त्र ६९
बिछौने ८९
वस्त्रों के विषय में मेरी सम्मति ९५
वस्त्रों के विषय में नियम ९५

शल्य चिकित्सा

चीर-फाड़ क्यों ? ९९
अमूल्य उपदेश १२२
प्राकृतिक उपचार या आपरेशन १२३
कैंसर, मोतियाबिन्द और पथरी १२७
एपेंडि साइटीज १३०
कुदरती इलाज १३२

प्रकृति की आवाज सुनो

मनुष्य का स्वास्थ्य १३५
रोग-परीक्षाओं की निःसारता १३७
घावों व चोटों की चिकित्सा १४३
प्राकृतिक चिकित्सा के कुछ रहस्य व करामातें १४४
जरूरी हिदायतें १४७
रोग चिकित्सा के अमूल्य व अचूक नियम १४९
आरोग्य-प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ स्थान कौनसे हैं। १५३

प्राकृतिक चिकित्सा के लिए श्रेष्ठ ऋतु

प्राकृतिक चिकित्सा का वास्तविक सच्चा स्वरूप १५८
प्राकृतिक चिकित्सा के चमत्कार १५९

कठिन पुराना सिर दर्द व बहरापन १६२
पेट की बीमारियां १६३

आरोग्य कहां है

क्या स्वास्थ्य दवा या चीर-फाड़ से मिल सकता है १६५
क्या रोग व अकाल मृत्यु का कारण अग्नि है १६८
आयुर्वेदिक, एलोपैथिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली में क्या अन्तर है १८०
दवा और प्रकृति के इलाज का अंतर १६१
प्रकृति ही सच्ची चिकित्सक है १६३

प्राकृतिक चिकित्सा पद्यावली

आरोग्य १६४
औषधि विज्ञान १६६
रोशनी, धूप, हवा, सरदी १६६
प्राकृतिक चिकित्सा की करामात २१०
एलोपैथी और आयुर्वेद २१२
बी. सी. जी. वैक्सीन और क्षय २१४
प्राकृतिक चिकित्सा की महान् सफलता २१७

प्राकृतिक चिकित्सा सूर्योदय

एक भुक्तभोगी की राम कहानी २२०
चिकित्सक बंधुओं की सेवा में दो शब्द २२१
प्राकृतिक चिकित्सा क्या है २२५
रोगों के मुख्य कारण क्या हैं २२७
तीव्ररोग (तेज बीमारी) किसे कहते हैं २२७
दीर्घ (पुरानी) बीमारी क्या है २२८
कौन-से उपचार स्वाभाविक व उत्तम होते हैं २२८
प्राकृतिक चिकित्सा के मुख्य अंग क्या हैं २२६
जीवनी शक्ति का मन्द होना २२६
मन्द व तीव्र जठराग्नि का भेद २३१
आरोग्य व रोग परमाणु में मौजूद है २३१
रक्त व रस का सम्मिश्रण २३२
विजातीय द्रव्य या विषैले पदार्थों का इकट्ठा होना २३३
मानसिक विचारों का प्रभाव २३४
तेज बीमारियों का वर्णन—कारण २३४

क्या रोगों का मूल कारण जन्तु हैं २३५
रोग-जन्तु मल-पदार्थों से उत्पन्न होते हैं २३८
चिकित्सा के नियमोपनियम २३६
क्या आयुर्वेद, डाक्टरी, हिकमत सही प्रणालियां हैं २४२
कुछ नवीन नियम २४३
सर्दी-जुकाम का इलाज २४५
रोगों को दबाना या जड़ से निकालना चाहिए २४६
बच्चों के रोग दबाने के परिणाम २५०
क्षय, दमा, कुष्ठ, लकवा आदि दीर्घ रोगों का कारण
औषधि-सेवन है २५१
आंखों से शरीर का हाल जानना २५५
गिल्टी आदि की चीर-फाड़ से हानि-लाभ २५६
सरतान (वदगोशत) २५६

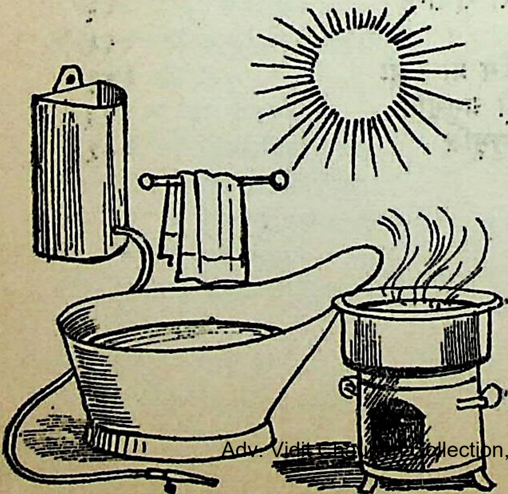
सूजन (वर्म)

सूजन की गाथा २६२
सरदी लगना या जुकाम होना २६५
मोतीभारे में दवा प्रयोगों का भयंकर परिणाम २६८
सच्चा उपाय २६६
जननेन्द्रिय रोगों को दबा देने के भीषण परिणाम २७०
स्त्री-रोगों का कारण व चिकित्सा २७१
मासिक-धर्म की खराबियां २७७
तीव्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा २८०
प्राकृतिक उपचार २८२
साफ ताजा हवा से इलाज २८३
तीव्र रोगों में स्वाभाविक भोजन २८५
तीव्र रोगों में उपवास या लंघन २८६
तीव्र रोगों में जल चिकित्सा या पानी का इलाज २८६
जल-स्नान व जल क्रियाएं २६०
गरम पानी के प्रयोग हानिकारक हैं २६२
गीली चादर का प्रयोग २६४
गीली चादर लगाने की तरकीब २६४
पसीने लाने वाला गरम स्नान २६५
छोटी गीली चादर का प्रयोग २६६
स्थानीय सूजन २६७
एनीमा या बस्ति क्रिया २६८

ठंडी गीली चादर के चमत्कारी गुण २९८
ठंडे जल के अन्य चमत्कार ३०१
रोगी की सेवा शुश्रूषा के नियम ३०३
तीव्र रोगों में रोगी के साहस दृढ़ता अटल विश्वास तथा धैर्य का भारी प्रभाव होता है ३०४
रोगी के घर वालों और इष्ट-मित्रों के विचारों व भावनाओं का उसके रोग पर भारी प्रभाव पड़ता है ३०८
तीव्र रोग चिकित्सा सार (ताजी हवा) ३१०
प्राकृतिक भोजन ३१०
जल के प्रयोग ३१०
औषधियां ३११
मालिश आदि ३११
मन का प्रभाव ३११

विचार और समृद्धि

अपराध का पाठ ३१३
यह संसार मन की अवस्थाओं का प्रतिबिंब है ३१६
अशोभनीय तथा अवांछनीय परिस्थितियां ३२१
विचारों की गुप्त क्रिया ३३५
स्वास्थ्य सफलता व शक्ति का रहस्य ३४७
अक्षय सुख प्राप्त करने के उपाय ३५४
सम्पत्ति, वैभव व धन-सम्पदा की प्राप्ति ३५९
स्वास्थ्य और सत्य दो राजा हैं ३६२
सुख-शांति कहां है ३६९
आध्यात्मिक शक्ति कैसे प्राप्त हो ३७१
पूर्ण सुख व शांति की अनुभूति ३७३
नि:स्वार्थ प्रेम की अनुभूति ३७५



बुढ़ापा और बीमारी से बचने के सरल उपाय

शरीर का निर्माण

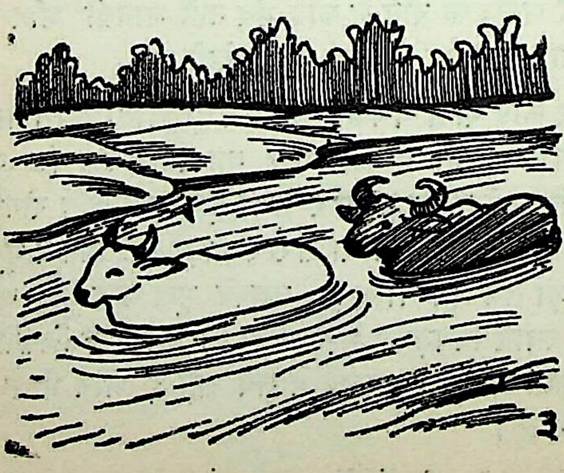
हमारा यह शरीर तीन मुख्य भागों से बना है, आत्मा, मन और यह हाड़ मांस का स्थूल शरीर। हर एक भाग का दूसरे भागों से गहरा सम्बन्ध है और एक भाग दूसरे से गहरे मिले हुए और जुड़े हुए हैं। अगर एक भाग को कष्ट होता है तो सारे शरीर को कष्ट होता है। एक भाग पर जो क्रिया होती है सारे शरीर पर उसका प्रभाव पड़ता है। चाहे आपके किसी भी स्थान पर सूजन हो चाहे रोग हृदय में, जिगर में, फेफड़ों व पेट में हो मस्तिष्क या गले में हो सारा शरीर ही रोगी समझा जायगा और स्थानीय चिकित्सा तभी सफल होगी जब सारा शरीर नीरोग बनाया जायगा इसलिये प्रकृति स्थानीय रोग और सारे शरीर के रोग में कोई भेद नहीं जानती और वह अधिक महत्व सारे शरीर की सफाई का ही देती है।

अगर कोई रोगी चेचक से बीमार हो जाता है तो यह एक सजा है जो प्रकृति दे रही है और जब वह रोगी इस दंड को भुगतकर अपने शरीर की गंदगी दूर कर लेता है. तब प्रकृति रोग को दूर कर देती है। ऐसे रोगी का सारा शरीर जाड़ा-सा लगकर धूजता है और बुखार बड़ा तेज हो जाता है, उसकी भूख बन्द हो जाती है और जीभ का स्वाद बिगड़कर मुंह कड़ुवा हो जाता है जिससे प्रकट होता है कि प्रकृति अंदरूनी सफाई में लग रही है और भोजन पचाने की क्रिया बन्द है।

इन तेज बीमारियों में शरीर में विजातीय द्रव्य का बड़ा ही जोरदार संघर्षण होता है, अंदरूनी गरमी बढ़कर बाहर निकलती है,

विजातीय द्रव्य खाल के छिद्र फोड़कर बाहर निकलता है। पहले लाल दानें बनते हैं, फिर पीली फुन्सियां-सी हो जाती हैं और चेचक खूब भर जाने पर सिर-दर्द, पीड़ाएं व बुखार जाते रहते हैं और बीमार सुधरने लगता है, परन्तु उसकी भूख फिर भी देर तक बन्द रहती है और स्वाद भी उस समय तक ठीक नहीं होता, जब तक प्रकृति अपनी सफाई व पुनर्निर्माण का काम खत्म नहीं कर देती। वास्तव में चेचक शरीर को एक कष्ट दायक पूरी सफाई की जोरदार क्रिया है और सही इलाज होने से ऐसे रोगी बहुत ही निरोग होकर उठते हैं। चेचक द्वारा शरीर अपनी बहुत-सी पुरानी खराबियां दूर कर लेता है, बिगड़े हुए कल-पुर्जे ठीक काम करने लगते हैं और मल के भार से लदा हुआ शरीर फूल की भांति सुन्दर और ताजा, काम करने के लायक बन जाता है क्योंकि वर्षों से सड़ने वाला गंदा जहरीला माद्दा खाल फोड़कर बाहर निकल जाता है।

इस प्रकार हम चेचक को घातक शत्रु न समझें बल्कि परम हितैषी मित्र समझें और उसका स्वागत करें, उसके लिए टीका



लगवाएं, क्योंकि तेज बीमारी बीमार न रहे शरीर को [illegible] ताजा नवीन बनाने के लिए ही होती है।

इन सिद्धान्तों को समझ लेने पर हमें दृढ़ चित्त से सदा प्रकृति की आवाज पर ध्यान देना चाहिए और फिर तेज बीमारियों के इलाज के लिए किसी दवाखाने या अस्पताल में जाने की कोई आवश्यकता ही नहीं है न किसी डाक्टर-वैद्य की खुशामद की ही जरूरत है, क्योंकि प्रकृति ही सब इलाज स्वयं ठीक-ठीक करेगी, उसके मार्ग पर चलकर कोई खतरा नहीं हो सकता जरूरत इस बात की है कि हम रोग के कारण समझ लें और यह कि वे प्रकृति के एक खेल हैं और शरीर की सफाई के लिए जरूरी हैं और दवा-दारू आदि के झगड़ों में कभी भी न पड़ना चाहिए वरना लाभ के बदले हानि ही होगी।

हमें प्राकृतिक के कार्यों में प्राकृतिक उपायों द्वारा सहायता करनी चाहिए। उसकी क्रियाओं को दवा दारू से दबाने की चेष्टा करना महामूर्खता है। इसी अन्धविश्वास के कारण रोग व अकाल मृत्यु बढ़ रहे हैं। आत्मा व मन भी शरीर स्थित होने से उसके ठीक या बे ठीक होने पर निर्भर हैं। रोगी मनुष्य कभी महामना या महात्मा बनकर कोई बड़ा कार्य नहीं कर सकता।

हमने बहुधा प्रत्यक्ष रूप से देखा है कि सभी तेज बीमारियों में प्राकृतिक उपचार करने वाले शीघ्र अच्छे हुए हैं, उनके शरीर पहले से बहुत अधिक निर्मल व ताजा बन गए हैं और बाद में कोई रोग उनको नहीं लगा। इससे बिल्कुल ठीक उल्टा हाल हम दवा और इंजेक्शनों और चीर फाड़ से अच्छे होने वाले रोगियों को देखते हैं। वे बहुत दिनों कष्ट उठाते हैं, चिकित्सक दवा आदि के प्रभाव से रोगों को अन्दर दबा देते हैं जिससे उनके शरीर पहले से खराब गंदे और पुराने रोगों के शिकार बन जाते हैं। वास्तव में तेज बीमारियों से पाठ पढ़ना चाहिए और भविष्य में विजातीय द्रव्य बनाने वाले पदार्थों से बचना चाहिए, ताकि रोगी होने की नौबत ही न आवे वरना फिर वही खराबी होगी और डाक्टर वैद्यों की खुशामद और दवा दारू के फंदे करने पड़ेंगे। वास्तव में मन और आत्मा के मंदिर इस शरीर

को पूर्णतया नीरोग रखने से ही सांसारिक व पारलौकिक कामनाएं पूर्ण हो सकती हैं।

हमने अपनी आदतों को बहुत ही बिगाड़ लिया है। सबसे अधिक तो देश में बढ़ते हुए दवाखानों और अस्पतालों ने संसार को अधिक रोगी और निकम्मा बना दिया है कि लोग बीमारियों का कारण तक समझने की कोशिश नहीं करते। फौरन जाकर दवा की खुराक ले आते हैं और रोग के लक्षण दबाकर मन में प्रसन्न होते हैं और रोगी अगर मर जाय तो दोष भगवान को देने लगते हैं इस प्रकार दवाइयों से छोटे-छोटे रोग दीर्घ रोग बनकर जीवन को दुखदाई बना देते हैं।

इस बात की आवश्यकता नहीं है कि हम आदतों के गुलाम बने रहें। आदतों को बजाय हमें आहार-विहार शरीर की मांगों के अनुसार करने चाहिएं। जब हमें भूख लगे तभी खाना चाहिए। इसी प्रकार विषय-भोग भी अत्यन्त इच्छा होने पर ही ऐसा करना चाहिए। अगर हम दोनों बातों में प्रकृति का विरोध करते हैं तो बड़ी हानि उठानी पड़ती है, अनाप-शनाप प्रकृति के विरुद्ध आहार से और अत्यधिक बढ़ी हुई काम-चेष्टाओं से शरीर का ऐसा नाश हो जाता है जो कि और किसी कारण से नहीं होता। हजारों लाखों स्त्री-पुरुष अत्यधिक विलासी, विषयी बनकर भरी जवानी में ही मर गए। हमारी वासनायें अत्यन्त प्रबल हो चली हैं। उनकी कोई मर्यादा ही नहीं है। यही कारण है कि अधिक वीर्य नाश होने से पागलपन व क्षय रोग इतने फैल रहे हैं। सभी मानते हैं कि ब्रह्मचर्य ही आरोग्य और दीर्घ जीवन का मूल है और इसके नाश के साथ आयु, आरोग्य व बल भी नष्ट हो जाते हैं, परन्तु ब्रह्मचर्य का साधन भी स्वाभाविक भोजन पर निर्भर है। प्रकृति विरुद्ध भोजन करके ब्रह्मचर्य साधन की चेष्टा ढोंग के सिवा कुछ भी नहीं है।

बाईबिल में लिखा है जब प्रभु ने आदम और ईव को ईदन के बाग में भेजा तो यह उपदेश दिया कि भोजन बड़ा ही महत्त्व रखता

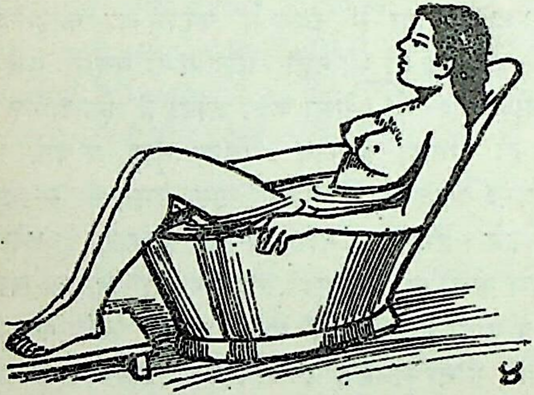
हैं, तुम्हें पृथ्वी को फली-फूली और पूर्ण रखना होगा और सृष्टि उत्पन्न करने के लिए ही मैथुन करना होगा।

प्रभु ने यह भी आदेश दिया है कि 'तुम्हें पृथ्वी पर उगने वाला हर एक कन्दमूल फल खाना चाहिए, हरे शाक, सात्विक अन्न, हर एक वे फल आदि खाने चाहिए, जिनमें कि बीज भी हो।'

प्रभु के इस उपदेश में आग से पकाने का कोई जिक्र न था, शायद आग उस समय थी भी नहीं और सभी मनुष्य ऐसे भोजन पर नीरोग दीर्घजीवी रहते थे। ऐसा कहा जाता है कि अग्नि के आविष्कार के साथ ही दुनियां में रोग, अकाल मृत्यु व पाप उत्पन्न हुए हैं। आज हमारी भोजन-प्रणाली को उस समय के सतयुगी आनन्द काल से मिलाइये। हमारा कैसा अधःपतन हो गया है और अग्नि की सहायता से हम कैसी खराब, मुर्दा, सार-रहित खुराक खाकर अल्पजीवी, रोगी व पापी हो गए हैं। मांस-मदिरा आदि का भी आग के कारण ही खाना पीना सम्भव हो सका है। हमारे पुराणों में लिखा है कि सतयुग में आयु हजार वर्ष की, त्रेता में ५०० वर्ष की, द्वापर २०० वर्ष और कलियुग में केवल १००.वर्ष आयु होती है।

परन्तु आज १०० वर्ष तक कितने भाग्यवान जीवित रहते हैं। अधिकांश तो ५० वर्ष के भी नहीं हो पाते। क्यों? इसलिए कि हमारे शरीर शराब व आग पके भोजन से दिनों-दिन खराब हो रहे हैं और हमें सच्चा आरोग्य और दीर्घायु का ज्ञान ही नहीं है। इसलिए आइये और दृढ़ चित्त होकर और दीर्घ जीवन के लिए कोशिश कीजिए। इसके लिए प्रचलित आदतों को छोड़कर स्वाभाविक, कच्चे, बिना पकाए फल, कन्द, शाक, कच्चे दूध, मेवे पर रहना शुरू करें, अर्थात् जो चीज जिस हालत में जमीन से पैदा हो वह उसी हालत में खाई जावे; कोई तबदीली न की जावे, ऐसा करने से शीघ्र शरीर में नया ताजा खून दौड़ने लगेगा। रोग, शोक, विकार भाग जाएंगे और एक अपूर्व आनन्द व सुख का अनुभव होने लगेगा, जो जीवन भार समान था वही आनन्दमय हो जाएगा।

अगर आप और भी शीघ्र शरीर की सफाई व कायाकल्प करना चाहते हैं तो आपको एक दिन उपवास एक दिन फलाहार (दो माह) करना चाहिए और इसके जो उत्तम परिणाम होंगे वे कहने में नहीं आ सकते। आरोग्य और अपूर्व दीर्घ होगी, नई जवानी मिलेगी।



४

यही बातें सादा खान-पान, सादा रहन-सहन, उपवास और फलाहार दोषों व मल-पदार्थों का शरीर से निकालना, हम अपनी संस्थाओं में प्रत्यक्ष क्रियाओं द्वारा किताबों द्वारा सिखाते हैं।

अगर हम संसार में रहते हुए भोजन में कुपथ्य करने से बचे रहें, फलों का सेवन यथाशक्ति करते रहें, भूख-प्यास के अनुसार खाना-पीना रखें, शुद्ध वायु सेवन व उचित व्यायाम करते रहें, कब्ज दूर करके आंतें साफ रक्खें, जल व मिट्टी से दूर न रहें तो आरोग्य हमारी मुट्ठी में रहेगा।

आरोग्य दृढ़ संकल्प, उचित साधना स्वाभाविक जीवन द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। यह न किसी डाक्टर की दवा या चीरफाड़ में है, न किसी वैद्यराज की पुड़िया या गोली या रस में है, न कोई यूनानी औषधि में है और न किसी मन्त्र विद्या जानने वाले की झाड़फूंकों

में है। इसीलिए आरोग्य व दीर्घ जीवन चाहने वालों! प्रकृति की शरण में आ जाओ फिर तुम्हें अन्यत्र भटकना नहीं पड़ेगा।

आयु का रहस्य

क्या वह घट बढ़ सकती है ?

वास्तव में आयु क्या है? यह वर्षों पर निर्भर नहीं है बल्कि शारीरिक योग्यता पर निर्भर है। बहुधा देखा जाता है कि आदमी जवानी में ही बूढ़ा सरीखा हो जाता है और दूसरा बड़ी आयु वाला होने पर भी जवान सरीखा दिखाई देता है।

वे सभी उपाय जिनसे जीवन-शक्ति बढ़ती है, जवानी कायम रखने वाले होते हैं और जो जीवन-शक्ति का नाश करने वाले हैं, वे जल्दी बुढ़ापा लाने वाले कहलाते हैं। दिन काम करने के लिए होता है, रात्रि सोने के लिए। यदि परिश्रम और विश्राम साथ-साथ बराबर चलते हैं तो आयु की हानि नहीं होती।

बात यह है कि निद्रावस्था में ही हमें पुनः जीवन-शक्ति प्राप्त होती है और हमें निद्रा की नितांत जरूरत है, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि जितना अधिक हम सोते हैं, उतनी ही जीवन शक्ति बढ़ती है, बल्कि अर्थ यह है कि दिन भर काम करते-करते हमारा शरीर थककर अपनी जितनी शक्ति खर्च करता है, उतनी शक्ति उसे पूरा आराम करके नींद लेकर पूरी करनी ही चाहिए। अन्यथा शक्ति खर्च होती रहेगी और पुनः प्राप्त न होगी और शक्ति का दीवाला निकल जाएगा और हम जल्दी बूढ़े होकर मर जाएंगे।

साधारणत नौजवान आदमी को ८ घण्टे सोना काफी होगा, बच्चों को १० घण्टे काफी है लेकिन जो घोर परिश्रम कर चुके हों, उन्हें १० घण्टे ही सोना ठीक है। उपवास करने वाले फलाहारी सिर्फ ६ घण्टे सो सकते हैं। निद्रा का यह नियम अवश्य पालन किया जाना चाहिए और नींद आने पर अवश्य सोजाना चाहिए। चाहे दिन हो

या रात—नींद न आती हो तो निद्रा लाने वाले प्रयोग वृथा हैं, परन्तु यह ध्यान रहे कि नींद को कभी भी किसी उपाय से रोकना बहुत ही घातक है और ऐसा करने वाले अपने पांव पर आप कुल्हाड़ी मारते हैं। यदि किसी के सामने ऐसे अवसर आ भी जाएं कि जागना ही पड़े तो उसे चाहिए कि वह हल्का आहार फल दूध आदि करे और ऐसा न हो तो दिन में नींद पूरी करे। चाय आदि टानिक पीकर निद्रा का विरोध करना मूर्खता है और ऐसे लोग शीघ्र बीमारियों के शिकार हो जाते हैं।

बुढ़ापा क्या है? जिस हालत में शरीर अपने अंदर इकट्ठे हुए विजातीय द्रव्य को निकालने में असमर्थ हो जाता है, उसी हालत को बुढ़ापा, दीर्घ रोग आदि कहते हैं और इसी सिद्धान्त के अनुसार अन्य रोगों की भांति बुढ़ापा भी लगातार विधि पूर्वक कुछ मास के स्वाभाविक भोजन (फल, शाक, मेवा, दूध, कन्द) द्वारा दूर किया जा सकता है।

हजारों-लाखों ऋषि, मुनि, योगी, तपस्वी बहुत बड़ी आयु वाले हो चुके हैं। कई-कई तो मृत्यु पर विजय प्राप्त कर चुके थे। सैंकड़ों हजारों वर्ष की आयु के प्रमाण हमारे इतिहास और पुराणों में मिलते हैं। सैंकड़ों वर्षों की आयु वाले तो कई आज भी हमारे देश में जिन्दा हैं। इतनी बड़ी आयु वाले यह ऋषि-मुनि लोग केवल कन्द, मूल, फलों व पत्तों या दूध पर रहते थे, जंगलों में रहकर तप और उपवास करते थे। यही उनके दीर्घ जीवन का रहस्य था।

इसके विपरीत शहरों में रहकर नाना प्रकार के पक्वान्न, मिठाइयां नमकीन पदार्थ, रोटी, दाल आदि खाने वाले लोग बहुत कम ऐसे देखे गए हैं जिन्होंने दीर्घ आयु पाई हो। राजा गोपीचन्द की माता ने गोपी चन्द को उपदेश दिया था कि बेटा तुम बहुत ही अल्पायु हो, यदि तुम विलासी जीवन, प्रकृति विरुद्ध आहार, ऐश आराम में शहर में रहोगे तो तुम्हारे पिता की भांति मृत्यु घसीट ले

जाएगी, इसलिए तुम जंगल में रहो, योग साधन करो, कन्द मूल फल खाओ, पृथ्वी पर सोओ और वस्त्रों का त्याग करो। इन उपायों से तुम मृत्यु को निश्चय जीत सकोगे। निदान गोपीचन्द ने ऐसा ही किया और मृत्यु पर विजय प्राप्त की।

संसार के किसी देश में ऐसे दीर्घ आयु वाले मनुष्य नहीं हुए, जैसे हमारे देश में। पर आज हमारे देश की औसत आयु सबसे अधिक गिरी हुई है। कुछ समय पहले ही हिन्दू व मुस्लिम राज्य के समय में हमारे देश में साधारण औसत आयु १०० वर्षों से अधिक थी और उसमें उनके सन्तान होती थी। सौ वर्ष के स्त्री-पुरुष जवानों के साथ खेतों में काम किया करते थे और दूसरे देखने वालों को बूढ़े और जवानों में कोई भेद मालूम नहीं देता था, क्योंकि उनके शरीरों पर बुढ़ापे के चिन्ह मौजूद न थे। उन लोगों के लिए पाबंदी थी कि वे कन्द, मूल, फल और हरे शाक खाते थे। आग से पके पदार्थ या मांस, मदिरा नशा, दवा छूते भी न थे। कभी-कभी कच्चा दूध या दही ले लिया करते।

कभी-कभी मेवेजात, सब तरह के शाक, फल और हरा कच्चा अन्न भी खाया करते थे। देखने वालों ने लिखा है कि उन्हें, कठिन परिश्रम करना पड़ता था, कपड़े कम पहनते थे और इन्हीं कारणों से वे कभी बीमार न होते थे। आज के सभ्य समाज में फैलने वाले रोगों में एक भी उनमें दिखाई नहीं देता था। वे सर्वदा नीरोग प्रसन्न रहते थे। एक विद्वान ने आंखों देखा वर्णन लिखा है कि इन प्रकृति के उपासक लोगों में दस वर्ष के समय में कभी उसने किसी आदमी को अजीर्ण, आंतों की बीमारी बद्धकोष्ठ, फोड़े-फुन्सी, क्षय, मधुमेह, पत्थरी, दमा आदि नहीं होते देखा इतना ही नहीं, उन्हें न कभी सर्दी जुकाम होती थी, न निमोनिया या जिगर के रोग। यह है हमारे प्राचीन भारतीयों के जीवन की झांकी।

वास्तव में स्वाभाविक आहार-विहार करने वाले लोगों से रोग

और अकाल मृत्यु बहुत ही डरते हैं, क्योंकि उनका शरीर निर्मल विजातीय द्रव्य से रहित होता है। पर खेद ! इसके विपरीत आज हम क्या देख रहे हैं। अग्नि का संस्कार किये बिना हम कोई चीज खाते ही नहीं, दूध को भी अटाकर उसका नाश करके ही पीना पसन्द करते हैं, जब तक भोजन में नमक मिर्च, मसाले और मीठा न हो, तब तक हमें अच्छा नहीं लगता। तेल और घी मिलाए बिना कोई चीज भी अच्छी नहीं समझी जाती।

बहुत-से लोग ऐसी झूठी और वाहियात दलीलें देते हैं कि देखो अमुक मनुष्य सब कुछ अनाप-शनाप खाता है, फिर भी कभी बीमार नहीं पड़ता। ऐसी ऊटपटांग बातों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए।

वास्तव में ऐसे उदाहरण बिरले होते हैं, जो सर्व साधारग के लिए लागू नहीं होते ९९ फी सदी लोग जो बदपरहेजियां करते हैं सदा बीमार और अल्पजीवी देखे गए हैं। हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि संसार में सबसे अधिक दीर्घजीवी हुए हैं, उन्हें दीर्घ जीवन के सभी रहस्य मालूम थे और वे यह भी स्पष्ट कह गए हैं कि आयु का घटाना या बढ़ाना हमारे अपने हाथ की बात है। ईश्वर हमें दीर्घजीवी या अल्पजीवी नहीं बनाते लिखा है—'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत' अर्थात् ब्रह्मचर्य और तपस्या (स्वाभाविक आहार) द्वारा देवी ने मृत्यु को जीत लिया था, और साथ ही यह भी लिखा है—'अभक्ष्य भक्षणात् चैव मृत्युः दहति अर्थात् अभक्षय का भक्षण करने से मृत्यु होती है। हमारे धर्म शास्त्र साफ-साफ बता रहे हैं कि कन्द मूल आदि का स्वाभाविक आहार ही दीर्घ जीवन का अमोद्य और अचूक उपाय है, अन्य कोई नहीं एकादशी के दिन अन्न खाना पाप हैं। इसी प्रकार अन्य कई व्रतों में फलाहार को प्रधान मानकर उन दिनों और चीजें खाना मना की गई हैं। जब तक हमारे पूर्वज फलाहारी रहे, आयु दीर्घ रही और जब कलियुग आ गया और लोग अनेक प्रकार के बनावटी, आग से पके भोजन करने लगे, तभी से हमारा पतन आरम्भ हुआ और आयु भी १०० वर्षों से घटकर ५० वर्ष की रह गई।

हमने अनेक रोगियों की, उनके खानपान आदि की खूब जांच करके यह पता लगाया है कि वे ही रोगी सदा बीमार, बूढ़े सरीखे नजर आए, जिनके शरीर में क्षार व विजातीय द्रव्य अधिक मात्रा में भरे हुए थे।

जल्दी बूढ़े होने के ये चिह्न हैं—नसों का मुरझाना. खाल पर झुरियां पड़ना, बाल सफेद होना, दांत गिर जाना, जोड़ों का कमजोर होना, कमर झुकना आदि इन चिह्नों वाले शरीर में क्षार की अधिकता पाई जाती है।

वास्तव में तो क्षार की अत्यधिक मौजूदगी मुख के द्वारा जानी जा सकती है। मसूढ़े फूलना, जीभ पर कांटे होना, दांतों में स्वाद आना, जीभ सफेद रहना ही बहुत अधिक क्षार या मैल शरीर में होना जाहिर करते हैं।

और इन्हीं चिन्हों से परीक्षा हो सकती है कि अमुक व्यक्ति कहां तक मलाच्छादित क्षारयुक्त है, और कहां तक उसके शरीर को बुढ़ापे ने घेर लिया है। वास्तव में वुढ़ापा बड़ा ही दु:खदायी है और सभी इससे बहुत घबराते हैं। बूढ़ों की इच्छाएं मर जाती हैं, थकान हर वक्त बनी रहती है, ताकत नष्ट हो जाती हैं, भोजन का स्वाद आनन्द जाता रहता है और कफ-खांसी रात, दिन तंग करती हैं। इसे हम बुढ़ापा कहते हैं।

हिम्मत, उत्साह, फुरती, शक्ति, आनन्द और काम शक्ति आदि जवानी के चिह्न हैं। और यदि हममें यह चिह्न नहीं हैं तो हम जवान होते हुए भी बूढ़े हैं। शरीर के अन्दर सदा ही पुराने परमाणु नष्ट होते रहते हैं उनके स्थान पर नए परमाणु बनते रहते हैं। बस ! यदि हम इन नए बनने वाले परमाणुओं को नष्ट होने से बचा सकें और उन्हें ताजा रख सकें तो हम बुढ़ापे को दूर रख सकते हैं।

योग साधन के ग्रंथों में बार-बार उपवास और फलाहार की महिमा गाई गई और इसी उपवास, फलाहार व प्राणायाम द्वारा योगी

लोग हजारों वर्ष जीते थे और सदा ही जवान बने रहते थे, वे कोई दवाइयां नहीं खाते थे।

वास्तव में कायाकल्प अथवा बूढ़े से जवान बनना किसी औषधि विशेष से कदापि सम्भव नहीं है और न यह थोड़े समय में सम्भव है, बल्कि यह हमारा निश्चित अनुभव पूर्ण मत है कि दीर्घ आयु चाहने वालों को पहले लम्बे उपवास विधि पूर्वक करने चाहिए और उपवास काल में केवल जल अथवा फलों का रस लेना चाहिए और कुछ नहीं। केवल जल पर रहने की हालत में सिर्फ ३० दिन और फलों के रस पर रहकर दो माह यह क्रम रखना उचित होगा, परन्तु हम पहले कह चुके हैं कि कायाकल्प का प्रधान साधन उपवास कोई तमाशा या खेल नहीं है। यह काम हर कोई बिना उचित देखरेख के स्वयं नहीं कर सकता। इसमें भारी जोखम हो सकती है, इसलिए सही तरीका यह है कि लम्बा उपवास करने से पहले उसके लिए पूरी तैयारी कर ली जावे और किसी अनुभवी विद्वान प्राकृतिक चिकित्सक की पूरी निगरानी, देखरेख व मौजूदगी में यह प्रयोग किया जावे। यह काम उस चिकित्सक का है कि वह देख ले कि साधक इस भार को सहन कर सकेगा या नहीं और इस पर भी बीच में यदि कोई भारी उपद्रव होने लगे तो उसका प्रबन्ध करना आवश्यक होगा। बहुधा उपवास काल में ऐसे सङ्कट उपस्थित हो जाते हैं कि साधक घबराकर प्रयोग छोड़ देते हैं और जरा-से कुपथ्य या लापरवाही से प्राणों की हानि भी हो जाती है। छोटे-छोटे उपवास भी बिना अवसर प्राप्त हुए बिना अनुभवी चिकित्सक की सलाह के नहीं करने चाहिए, क्योंकि इसमें लाभ भी और हानि भी हो सकती है। वैसे विधिपूर्वक नियमित उपवास और फलाहार से कायाकल्प सिद्ध हो चुके हैं और बहुत से लोगों ने फिर से जवानी पा ली है, जिसे देखकर उनके इष्ट मित्रों व घर वालों को महान् आश्चर्य और हर्ष हुआ है। इन्हीं उपायों द्वारा आयु-काल को भी बहुत अधिक बढ़ाया जा सकता है।

हमारे धर्म-शास्त्रों में अनेक व्रत व उपवासों की महिमा गाई गई

है और जो लोग सदा व्रत, उपवास नियमपूर्वक करते हैं वे निरोग और दीर्घजीवी देखे गए हैं।

वास्तव में बहुत अधिक समय तक जवान बने रहना बुढ़ापे को दूर करना आदि ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर आजकल के लोग अधिक ध्यान नहीं देते, क्योंकि उनका ऐसा विश्वास है कि ईश्वर ने जितनी आयु लिखदी है उसमें जरा भी कमी वेशी नहीं की जा सकती, परन्तु हमने हजारों बार परीक्षा द्वारा यह देख लिया है कि इस शरीर रूपी मशीन के स्वामी हम ही हैं और यदि हम स्वाभाविक कच्चे आहार द्वारा इस शरीर को साफ-सुथरा विकार-रहित रखें तो हम बुढ़ापे को बहुत समय तक रोक सकेंगे। एक बड़े विद्वान ने कहा है कि 'स्वाभाविक मृत्यु बड़ी देर से हुआ करती है और जितनी अकाल मृत्यु होती है, वह सब शरीर के जीर्ण मलाच्छादित गंदा होने से होती है। भगवद्गीता में भगवान् ने साफ कहा है—

'जैसे हम पुराने कपड़े फेंककर नए पहनते हैं, वैसे यह आत्मा पुराने जीर्ण शरीर को छोड़कर नए में प्रवेश करता है। इसका अर्थ यह है कि जब तक शरीर जीर्ण नहीं होता जवान व नया रहता है, प्राणों का अन्त नहीं होता, जब तक कि कोई खास कारण न हो। अगर हम यह मान लेते हैं कि रोग विजातीय द्रव्य की मौजूदगी का नाम है और शरीर में क्षार व गंदगी होने से ही बुढ़ापा आता है तो यह भी मानना पड़ेगा कि जिस मनुष्य का शरीर क्षार रहित निर्मल है, वही निरोग और जवान है। चाहे उसकी आयु इस समय कितनी ही बड़ी हो और ऐसे लोगों की मृत्यु बहुत ही बड़ी उम्र पाकर होगी। इससे यह सिद्धांत निकला कि बुढ़ापा शरीर के मैले गंदे होने से आता है और यह क्षार व मल-पदार्थ केवल प्रकृति विरुद्ध, आग से पके खराब भोजन से ही उत्पन्न होते हैं और यह भी कि भोजन सुधार करना हमारे हाथ की बात है। इसीलिए हम बार-बार जोर देकर कहते हैं कि रोग और अकाल मृत्यु ईश्वरीय कोप नहीं; बल्कि हमारे वश में है और हमारे नैसर्गिक आहार के साथ ही सब रोग नष्ट किये

जा सकते हैं। बराबर लगातार कन्द-मूल-फल के आहार से हम बुढ़ापे से दूर रहकर बहुत ही बड़ी उम्र तक जी सकते हैं।

वास्तव में आज जो हीन-दशा हम बूढ़े लोगों की देख रहे हैं, उसका मूल कारण यही है कि खराब खान-पान द्वारा उनके शरीर का हर एक भाग मैल व गन्दगी से बहुत ज्यादा भर गया है और इसीलिए शरीररूपी मशीन जर्जर होकर निकम्मी व पुरानी हो गई है। इन लोगों की दयनीय दशा देखकर हर एक मनुष्य का प्रधान कर्त्तव्य है कि वह अपना आहार जहां तक हो सके, प्रकृति के अनुकूल सात्विक उत्तेजना-रहित बनावे, ताकि शरीर में गन्दगी न भरे।



बहुत-से लोग शायद कह उठेंगे कि कई लोगों ने अपनें शरीर में बन्दर की गिल्टियां लगवाकर फिर से जवानी प्राप्त कर ली और कहते हैं धातु दवाइयों से भी फिर जवानी लाई जा सकती है, परन्तु ऊपर बताये हुए कारणों पर ध्यान देनें से पता चलेगा कि इन उपायों द्वारा यौवन प्राप्त करना कहां तक संभव है और कितनों नें इन उपायों से पुनर्यौवन प्राप्त किया है।

हो सकता है कि लाखों रुपया खर्च करने पर शरीर में बंदर की

गिल्टियां लगाई जा सके या कुछ काल को शक्ति आ जाए पर वह चिरस्थाई नहीं है। क्योंकि गिल्टियां चाहे ताजा हों, परन्तु शरीर के हाड़-मांस रक्त जब तक ताजा व नए नहीं होते, वे गिल्टियां कब तक ताजा बनी रहेंगी ?

रहा धातु दवा का सवाल, उसका उत्तर भी स्पष्ट है। औषधियां क्षणिक शक्ति व उत्तेजना दे सकती हैं। स्थायी यौवन उचित आहार द्वारा ही प्राप्त होता है।

बस, कायाकल्प का रहस्य यही है। उपवास द्वारा शरीर की शुद्धि हो, लगातार फलाहार द्वारा पुराना रक्त मांस बदल दिया जावे और नवीन रक्त व मांस बन जाए, शरीर की नस-नस शुद्ध विकार-रहित बने और साथ ही विचार-शक्ति नवीन व प्रबल रहे, शुद्ध खुली हवा में खूब नैसर्गिक व्यायाम किया जाए और कपड़े जहां तक हो सके कम पहने जावें और शहरों की गन्दी गलियों से बाहर जङ्गल या बाग में रहकर ब्रह्मचर्य का भी पालन किया जाए। जो कोई भी ६ या १२ मास तक इन नियमों का विधिपूर्वक पालन कर लेगा उसे नई जवानी, नया शरीर, बड़ी उम्र जरूर इनाम में मिलेंगे। इसमें कोई शक या सन्देह की गुंजाइश नहीं है।

चार प्रकार की घोर विपत्तियां

आज हम लोग जन्म से लेकर मृत्यु तक चार विष-चितों द्वारा सताये जा रहे है, कोई भी स्त्री पुरुष बालक ऐसा नहीं है, जिसे ये चारों राक्षस घेरे न खड़े हों, (१) थकावट (२) रोग (३) बुढ़ापा और (४) ये सभी प्राणियों को घोर दुःख दे रहे हैं और अवसर पाते ही सबको अपना शिकार बना डालते है।

अब इन सब कष्टों का कारण क्या है ? वही हमारा प्रकृति विरुद्ध खान-पान यदि रात्रि में सोकर प्रातः बिस्तर से प्रसन्नचित हलके उत्साह व शक्ति युक्त होकर नहीं उठते तो जानिये कि आपका शरीर

गन्दा मैल से भरा होने लगा है और यहीं से आपकी आपत्ति शुरू हो गई है अर्थात् थकान रूपी पहली आपत्ति के आप शिकार हो चूके हैं।

आखिर, यह थकान क्या बला है ? थकान होने पर अंगड़ाई सुस्ती, बदन तोड़ना उबासी लेना आदि लक्षण आरम्भ हो जाते हैं और आश्चर्य तो यह है कि बिना कठिन परिश्रम के भी लोग कैसे थके-हारे मालुम देते हैं, वे सोचते हैं कि आखिर यह थकावट क्यों हुई पर उन्हें इसका मूल कारण मालूम ही नही होता, यह स्पष्ट है कि जब एक मनुष्य जितना काम करता है उतना आराम करले तो फिर थकावट का अर्थ क्या हो सकता है यही कि उसको शरीर रूपी मशीन को ठीक-ठीक चलाने के लिए उचित व जरूरी खुराक नहीं मिली। इसके सिवा उसने ऐसी चीजें खाई है जिनसे मलमूत्र अधिक बना शुद्ध रक्त कम बना और शरीर की जीवन-शक्ति अधिक खर्च हुई यही खराबी की जड़ है।

चाहे आप इसे कुछ भी कहें। थकावट, मल पदार्थों के, गन्दगी के पैदा होने से होती है और वह बिना पचे प्रकृति विरुद्ध पदार्थों की सड़क से उत्पन्न होती है और वह मल पदार्थ जरूरत से ज्यादा बन कर शरीर के सब हिस्सों को बेकार करके थका देते हैं। इसलिए होशियार रहिये प्रातःकाल का आलस्य, अगड़ाई, थकावट यह जाहिर करते है कि आपका शरीर विनाश पथ की पहली मंजिल पर पहुच चुका है, आपकी शरीर रूपी मशीन में जहर भरने लगा है और अगर आप इसका प्रबन्ध नहीं करते हैं तो बाकी तीनों राक्षस बुढ़ापा और अकाल मृत्यु आपको अपना शिकार बनाने के लिए तैयार हो रहे हैं।

यहां पर हम ऐसे सौदागर का जिक्र कर रहे हैं जो अनाज खरीदा करता था, घूम फिर कर उस व्यापार से काफी रुपया कमाता था।

खराब खान-पान से उसका शरीर थक गया, उसे आराम कुर्सी से उठाना कठिन हो गया और उसका इस थकावट से बहुत से धन का नुकसान हो गया क्योंकि वह बाज़ार में जाकर क्रय-विक्रय नहीं

कर सकता था, लाचार होकर हानि सह रहा था। आखिरकार वह आदमी बीमार पड़ गया, ऐसा जान पड़ा मानो वह बचेगा ही नहीं। परन्तु उसका भाग्य बड़ा अच्छा था कि उसकी भूख बिलकुल बन्द हो गई थी पेट ने जबाब दे दिया था। कुछ भी खाना पसन्द नहीं करता था इस प्रकार एक महीने तक उसने अपने थके हुए पेट को खूब आराम दिया और उसकी जठराग्नि ने इस अवसर में उसके तमाम विकार व दोषों को पचाकर बाहर निकाल दिया। उसका शरीर नीरोग, स्वच्छ, होकर फिर से काम करने लायक हो गया और वह खूब कमाने लगा, अब उसकी थकान जाती रही और अपना व्यापार फुर्ती से करता है। वास्तव में जो लोग थके से रहते हैं वे किसी भी कार्य में सफल नहीं होते और उनका जीवन दुखी और भार स्वरूप हो जाता है।

इस प्रकार एक मनुष्य शरीर से हीन था। वह अपने दफ्तर का काम ठीक-ठीक नहीं कर सकता था और इसीलिए उसे धन की हानि उठानी, पड़ती थी और उसे घाटा रहता था। उसकी स्त्री जो दुबली-पतली थी वह भी अक्सर प्रदर, सिर दर्द आदि से दुखी रहती थी। उसने अपने भोजन को स्वाभाविक बना लिया, इसी लिए उसके रोग भी जाते रहे और उसे नौकरानी की जरूरत नहीं रही।

उस उक्त स्त्री को भोजन विषयक अनुभव हो चुका तो उसने अपने मोटे फफ्फस पति को भी स्वाभाविक भोजन पर रखना आरम्भ किया और कुछ ही महीने में पतिदेव की मोटी तोंद सूख गई, बादी जाती रही, शरीर में फुर्ती आ गई और व्यापार में उत्साह व फुर्ती होने से उसकी आमदनी भी बढ़ गई।

वास्तव में आज हम अपने व्यापार व अन्य समाजिक कार्यों में असफल इसीलिए हो रहे हैं कि हमारे शरीर मलग्रसित व गन्दे हैं। हममें पूर्ण उत्साह व फुरती नहीं है और इसका मूल कारण यह है कि हम गरिष्ठ, हानिकर, प्रकृति-विरुद्ध, मुर्दा, सारहीन पदार्थ खाने के आदी हो गये हैं, पूरी तरह न पचकर हमारे सभी रोगों व अकाल मृत्यु व दुःख-दारिद्र्य का कारण बन जाते हैं।

ज्यों-ज्यों थकावट बढ़ती जाती है त्यों-त्यों रोग, बुढ़ापा, अकाल मृत्यु भी निकट आते जाते हैं, क्योंकि इन सबका एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है।

शायद आप शारीरिक या मानसिक परिश्रम से होने वाली थकावट को ही यह थकावट समझते होंगे। पर ऐसा नहीं है। परिश्रम से पैदा हुई थकावट क्षणिक होती है और वह विश्राम व मनोरंजन द्वारा शीघ्र दूर हो जाती है, पर प्रकृति विरुद्ध आहार द्वारा होने वाली स्थाई थकावट उपवास व फलाहार से ही दूर होगी।

भोजन से हमारे शरीर को बल, स्फूर्ति और उत्साह मिलते हैं पर आज हम लोग भोजन करके इतने थक क्यों जाते हैं? इसीलिए कि हम ऐसा भोजन करते हैं जिसे जठराग्नि पचा नहीं सकती जो मेदे व आंतों के लिए भार स्वरूप है और जिससे शरीर को उचित मात्रा में पोषण नहीं मिलता और जीवन शक्ति इसको पचाने में अधिक खर्च होती है और इसीलिए आलस्य व निद्रा आ घेरते हैं। सभी जानते हैं कि पेट भरा होने पर कोई भी शारीरिक या मानसिक परिश्रम ठीक नहीं हो पाता और न कोई दौड़ धूप ही हो सकती है।

अकसर देखा गया है कि जो पहलवान संजीदा थे वे कुश्ती के पहले दो तीन समय बहुत ही हल्का भोजन करते थे पेट खाली रखते थे क्योंकि उनका ऐसा कहना था कि पेट भरने पर कुश्ती जीतना कठिन हो जाता है।

तैराकी में, दौड़ों में, पैदल चलने में, मानसिक व शारीरिक परिश्रम में अनेक बार हमारा अनुभव हो चुका है कि जो लोग फलाहारी शाकाहारी थे वे सबसे अधिक फुर्तीले व उत्साह युक्त थे और जिन लोगों के आहार गरिष्ठ, प्रकृति विरुद्ध थे वे सदा सुस्त पिछड़े हुए रहते थे।

बाद में उन लोगों ने स्वाभाविक आहार के प्रयोग आरम्भ किए कुछ ही दिनों में ऐसा परिवर्तन हो गया कि जो तोंद वाले खूब मोटे लोग थे उनका वजन खूब घटकर सम हो गया और जो लोग अति दुबले और पतले-कमजोर थे उनमें नवीन रक्त-संचार होकर उनका वजन बढ़ गया।

वास्तव में स्वाभाविक आहार में सभी गुण हैं, इससे सभी तरह के विकार दूर होते हैं, इससे आदीपन भी दूर होता है तो दुबलापन भी। वही भोजन वजन घटा भी देता है और वही बढ़ा देता है।

मनुष्य जाति को भक्षण करने वाले दूसरे भयानक राक्षस का का नाम रोग है। इसके अनेक मुख हैं और थकावट, सुस्ती के आते ही इसकी वारी आ जाती है, क्योंकि थकावट तभी होती है जब शरीर की जठराग्नि धीमी पड़कर गंदा हो जाती है और जो शरीर जहरीले पदार्थों से भर जाते हैं रोग उन्हीं पर आक्रमण कर सकते हैं इसलिये रोगों के कारणों को ही दूर करना बुद्धिमानी है क्योंकि रोगों के आक्रमण होने के बाद उसको दूर करने के उपाय करना वैसा ही है, जैसा किसी देश पर हमले हो जाने के बाद वहां की सरकार उस देश की रक्षा करने के उपाय करे। इसलिये हम लोग औषधियों व चीरफाड़ के बजाय स्वाभाविक रहन-सहन को ही महत्व देते हैं।

औषधि-विज्ञान की भांति प्राकृतिक चिकित्सा जनता को अंधेरे में नहीं रखती। पहले रोगों से रक्षा के उपाय न बताकर रोग-चिकित्सा करती है। उस समय जब कि घर में आग लग चुकी हो पानी से उसे कहां तक बुझाया जा सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा पहले से सभी रोगों से बचने के अचूक उपाय बताती है और चिकित्सा में भी वे ही नियम लागू किये जाते हैं।

जिस प्रकार युद्ध तभी आरम्भ होता है जब कि देशों में दीर्घ-काल से दुश्मनी चली आती हो, अकारण व अचानक कोई भी देश

किसी पर हमला नहीं करता, इसी प्रकार चाहे प्रकट में रोग का आगमन कैसा हो सहसा अकस्मात् मालूम देता हो तो भी रोग कभी अकारण अचानक किसी पर आक्रमण नहीं करता, बल्कि उसके उत्पन्न होने कारण शरीर में बहुत पहले से मौजूद होते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा साफ-साफ बताती है कि रोगों के पूर्व लक्षण जैसे सिर दर्द, भूख बन्द होना, जुकाम, हाथ पांव दुखना, कहीं दर्द होना, कब्ज, छाले होना खुजली-खांसी आदि उत्पन्न होते हों उचित उपाय आरम्भ करदेना चाहिए अन्यथा लापरवाही और बदपरहेजी से मनुष्यों के लिये यह घोर कष्ट दायक व मृत्यु स्वरूप हो जाते हैं। हम लोगों को याद रखना चाहिए कि रोगों के चाहे कितने ही नाम रखे जाएं, परन्तु कारण सभी का एक है और इलाज भी एक ही होना चाहिए। परन्तु आज लोग रोगों के लक्षणों पर निर्भर रह कर मिथ्या उपायों से, दवा, चीर-फाड़, इंजेक्शन आदि से उन्हें दबाने व मिटाने का असफल प्रयत्न कर रहे हैं। मूल कारण को नष्ट करने की कोशिश नहीं करते। जड़ के नष्ट होने पर भी कभी शाखायें व पत्ते जिंदा रह सकते हैं?

किसी विद्वान ने ठीक कहा है। "मनुष्य अपने कर्मों से ही मरता और जीता है।" आए दिन निमोनिया, मोतीझारा आदि रोगों में रोगियों के मरने पर घर वाले विलाप करके रोते हैं कि हाय राम अचानक ही हमारे आदमी को उठा लिया। यह बिलकुल हट्ठा कट्ठा था, पर उन्हें यह क्या मालूम था कि मरने वाले से ईश्वर की दुश्मनी नहीं थी बल्कि उसने दीर्घकाल तक प्रकृति विरुद्ध आहार द्वारा अपने शरीर को मल व दूषित जहरीले पदार्थों से भर लिया था और यह कि उसको प्रबल जठराग्नि नमोनिया द्वारा उसके शरीर को साफ करके फिर से काम करने योग्य बनाना चाहती थी, परन्तु उसके उद्देश्य को न समझ कर घर वालों ने अज्ञानवश उसे अनेक दवाइयां खिलाई, बिना भूख खाने को मजबूर किया, पानी और हवा से दूर रखा, इसीलिये वह मर गया। अगर उसे प्रकृति द्वारा

दी गई सजा को प्रकृति की इच्छानुसार भुगतने दिया जाता तो कभी उसकी मृत्यु न होती।

पर इन बातों को समझने वाले कितने हैं? वे तो दवाखानों और अस्पतालों से घिरे हुए हैं। वे रात दिन जो जी आया खाया करते हैं और इसीलिए रोग अन्दर ही अन्दर बढ़कर अवसर पाते ही आक्रमण कर देता है और अपना काम पूरा करके ही हटता है।

तेज बीमारियों को शत्रु व हानिकर लक्षण न समझकर इन्हें अगर हम मित्र व हितैषी समझने लग जायं और दवाइयां खाने के बजाय अगर हम उपवास, फलाहार आदि द्वारा उनको मिटाने का यत्न करेंगे तो दुनियां बहुत अधिक सुखी हो जायगी और इन रोगों से शरीर को हानि पहुंचकर शरीर स्वच्छ व नवीन बन जाय, पर हम तो रोग के लक्षण उत्पन्न होते ही अन्धे होकर अत्तार की दुकान या दवाखानों में दौड़कर जाते हैं मानों आरोग्य दवाइयों की शीशीयों व पुड़ियों में तैयार रखा है। ऐसे उपायों से भी अधिक शरीर का कचरा, शरीर में वापस दबाया जाकर पहले से सड़न उत्पन्न करता है और रोज-रोज के खराब भोजन से पैदा होने वाले मल-पदार्थों में मिलकर दीर्घ रोग पैदा हो जाते हैं, जिनसे रोगी धीरे-धीरे अनिच्छा पूर्वक श्मशान भूमि की ओर बढ़ता रहता है। और शीघ्र ही कभी भी न जाने वाला घोर दुखदाई बुढ़ापा आ घेरता है और इस अवस्था के कष्टों और दुखों का वर्णन करना हमारी शक्ति से बाहर है और यह किसी से छिपी हुई बात नहीं है।

परन्तु बहुत से लोग तो ऐसे भाग्यवान होते हैं जो बीमारियों व बुढ़ापे के आगमन से पहले पहल बाल्यावस्था में ही मर जाते हैं जिनकी संख्या हमारे देश में कई लाख है। और कई लाख तो बुढ़ापे के दुख देखने से पहले भरी जवानी में ही अपनी विधवा स्त्रियों व अनाथ बच्चों को सदा के लिए रोता छोड़कर मृत्यु की

गोद में चले जाते हैं और घोर दुख का कारण अज्ञान केवल अज्ञान और आपकी दवाइयों व चीर फाड़ हैं। जो लोग नई बीमारियों को तेज दवाइयों व चीर फाड़ से दबाने में सफल हो जाते हैं वे पुरानी दीर्घ बीमारियों अथवा अंग भंग के कारण उम्र भर कष्टमय जीवन बिताते हैं, ऐसे लोगों का जीवन भार स्वरूप होता है।

प्रकृति कभी भूल नहीं करती, इसलिए जब थकावट आ घेरे तो उसके कारणों को दूर करना चाहिए केवल आराम करके नहीं, बल्कि उपवास, फलहार द्वारा शरीर को सच्चा आराम देना चाहिए और कुपथ्य से बचना चाहिए।

हमको पुनः दोहराना पड़ेगा कि अपना आरोग्य व सुख चाहने वालों को कुपथ्य खराब भोजन से सख्त परहेज करना चाहिए, लोगों की देखा-देखी सब कुछ न खाना चाहिए और खुली हवा में व्यायाम करना, उपवास और फलाहार द्वारा पुराने संचित मल को शरीर से निकालते रहना चाहिए ताकि रोगों के अपार कष्ट उठाने की नौबत न आवे।

वास्तव में दवा से अधिक प्रचार ने तो दुनियां को इतना खराब कर डाला है कि प्रकृति के सभी कार्यों में तुरन्त विघ्न डाल दिया जाता है। रोगों के लक्षण उत्पन्न होते ही दवा के जरिये उन्हें दबा दिया जाता है और शरीर की जीवन शक्ति को इस प्रकार सदा के लिए कमजोर बनाया जाता है।

अब हम चौथे राक्षस मृत्यु का जिक्र करेंगे। बुढ़ापे के बाद हीं बहुधा मृत्यु का आक्रमण हुआ करता है, परन्तु शरीर के पहले ही अधिक बिगड़ जाने से या तेज बीमारियों से झूठे इलाज से भी बहुत-से मारे जाते हैं।

हमें कई दफा आश्चर्य होता है कि जो लोग हट्टे-कट्टे तन्दुरुस्त नजर आते हैं, जिनमें चर्बी भी काफी होती है, वे अकस्मात् हृदय की

गति रुक जाने से मर जाते हैं। ऐसे लोगों की मृत्यु को जनसाधारण बड़े आश्चर्य की बात मानते हैं। अमुक आदमी तगड़ा था। तीन दिन के बुखार में मर गया। अमुक स्त्री शरीर से अच्छी थी, एक ही दौरे में प्राणान्त हो गया। अमुक बच्चा पाड़े सरीखा मोटा, फूले हुए गालों वाला था, दो दिन में खेल गया। ईश्वर की मरजी ऐसी ही थी आदि बातें रोज हमारे सामने हुआ करती हैं और ईश्वर को उनके लिए दोषी ठहराया जाकर उसके कारणों की खोज करने की कोई कोशिश नहीं की जाती। वास्तव में लोगों को मालूम भी क्या है ? हम लोग रोग की असलियत को तो समझते नहीं और यह भी नहीं जानते कि रोग अचानक कभी नहीं आते, कुपथ्य से धीरे-धीरे अन्दर बढ़ते हैं और प्रकृति विरुद्ध जीवन तथा औषधि सेवन ही झगड़े की जड़ है।

आरोग्य की रक्षा चिकित्सा से अच्छी है

शायद ही कोई भाग्यवान हम में ऐसा होगा जिसे रोगों व अकाल मृत्यु का भय न सता रहा हो, परन्तु खेद है कि हम इस विषय में पहले से कोई उपाय नहीं करते।

हम आए दिन अनेक व्याधियों व अकाल मृत्यु, बुढ़ापा आदि महान कष्टों को आंखों देखकर भी उनका प्रतीकार नहीं करना चाहते यह जानते हुए भी कि रोगों ने अपना घर हमारे शरीर में करना शुरू कर दिया है और जल्दी हम पर पूर्ण अधिकार जमा लेंगे।

वास्तव में रोगों से डरते रहना बुद्धिमानी नहीं है मूर्खता है। चाहिए यह कि हम उन बदपरहेजियों व प्रकृति विरुद्ध आदतों से डरें, जिनके कारण हमें रोगों का शिकार होना पड़ता है परन्तु हम तो यह धारण लिए बैठे हैं कि खूब मन माने ढंग से खानपान करते रहें। बीमार होने पर दवा-दारू या चीर-फाड़ से ठीक हो जायेंगे। यह घातक भूल है।

हम लोग प्लेग के चूहों से, मलेरिया के मच्छरों से, क्षय के कीड़ों

से, चेचक व कुष्ठ के घावों से और हैजे के कीटाणुओं से डरते हैं, परन्तु मूल कारणों से, खराब खानपान से, कब्ज से, शरीर की गन्दगी से और सबसे भयानक सत्यानाशी दवा रूपी जहर से नहीं डरते। उसे हर एक सूरत में झट से पेट में उंडेलना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इन्हीं अंध-विश्वासों के कारण आज हमारे औषधालयों और अस्पतालों पर रोगियों की जड़ इस प्रकार लगी रहती है, जैसे किसी सदावर्त या खैरात की जगह पर भिखमंगों की! लोग रोगों के इलाज के लिए डाक्टर-वैद्यों के पास रात-दिन निरर्थक भटकते फिरते हैं। जिस प्रकार पागल कुत्ता विषाक्त होने से इधर-उधर भागता फिरता है और अन्त में निराश व दुःखी होकर प्राणों का त्याग कर डालता है, उसी प्रकार दवा खाकर रोगी अपने हाथों सर्वनाश कर रहे हैं।

इधर हमारे चिकित्सकों का हाल सुन लीजिये। मुश्किल से १०० में से ५ को चिकित्सा-शास्त्र का पूरा ज्ञान होता है और उन ५ में से एक सच्चा, स्वार्थ त्यागी व रोगी का हित चाहनें वाला होता है। अन्यथा साधारण नाड़ी देखकर दवा का नुस्खा लिख देना ही वैद्यलोग अपना कर्त्तव्य समझते हैं और डाक्टर लोग साधारण से फोड़ेफुंसी में भी चीर-फाड़ करना धर्म समझते हैं। यद्यपि असली मर्म, रोगों के मूल कारण, विजातीय द्रव्य के भेद को समझ लेने पर डाक्टर को न चीरफाड़ की आवश्यकता है और न वैद्यराज या उनकी दवाइयों की।

हमने बहुधा ऐसे रोगियों को ठीक किया है जो अनेक धुरन्धर डाक्टर-वैद्यों की बड़ी-बड़ी कीमती, अच्छी पेटेन्ट दवा खाकर निराश हो चुके थे। वे ही साधारण स्वाभाविक आहार, फलाहार, उपवास, एनीमा मिट्टी, जल, हवा के प्रयोगों से बिलकुल अच्छे हो गए। बहुतसे बहमी भ्रमयुक्त रोगी भोजन-सुधार से अपना बहम दूर कर चुके हैं। चाहे कितनी ही दवा लीजिए, पहाड़ पर चले जाइये, इंजेक्शन लगवाइये, परंतु जब तक फलाहार आदि द्वारा शरीर से क्षार, मल,

जहरीले पदार्थ आप साफ नहीं करेंगे,आप नीरोग नहीं रह सकते और समय आने पर रोग अवश्य आक्रमण कर ही देंगे।

यही आरोग्य रक्षा की समस्या है अर्थात् उपवास, फलाहार आदि से शरीर को साफ रखना, सब रोगों के मूल कारण खराब व गन्दे भोजन से परहेज करना। दवाइयों के आधार पर रोगों या अकाल मृत्यु से बचे रहने की आशा करना ऐसा ही व्यर्थ है जैसे कि अनेक छिद्रों वाली छतरी धारण करके मूसलाधार वर्षा से रक्षा की आशा करना है।

बाहर से लकड़ी ठीक दिखाई दे रही है मगर उसके अन्दर तो घुन दीवल लग चुकी है और उसके अंदर से लकड़ी को खाना आरम्भ कर दिया है और एक समय ऐसा आयेगा कि लकड़ी गलकर उसका नाश हो जायगा। यही हाल शरीर का है, प्रकृति विरुद्ध भोजन, खराब खान-पान से शरीर में जहर पैदा होने लगता है और अंदर ही अंदर सड़कर सारे शरीर को नष्ट करने लगता है और बरसों यह क्रम चलता रहता है बाहर से रोग के लक्षण प्रकट नहीं होते पर शरीर जो पहले से जर्जर हो चुका है जरा से चक्के से चूर-चूर नष्ट हो जाता है और तब हमारी आंखें खुलती हैं। लोग इन बातों को न समझ कर दवाखानों व हस्पतालों का गश्त लगाते रहते हैं और रोगों के कारणों न वे समझते हैं और न उनके चिकित्सक ही उन्हें समझाते हैं।

हमारा उद्देश्य केवल यह है कि हम संसार के सभी जरूरी कार्यों को करते रहें, परन्तु सदा इस बात का ध्यान रखा जावे कि हम उन कारणों को जान लें, जिनसे हमारा शरीर बिगड़ता है, जिनसे हम रोगी हो जाते हैं और जब हमें आरोग्य दायक स्वाभाविक भोजन का ज्ञान हो जावे तो हम उन पदार्थों को यथाशक्ति खाना छोड़ दें, क्योंकि अगर हम जानते हुए भी प्रकृति विरुद्ध खाते रहेंगे तो अनिवार्य रूप से हमें प्रकृति दण्ड देगी, रोग आ घेरगा।

एक बार आप स्वाभाविक भोजन पर रहकर देखिये, आपका जीवन, आपके विचार, आपकी परिस्थिति में कितना उत्तम परिवर्तन हो जाता है आपके मन से डर व चिन्ताएं दूर हो जायेंगी। शरीर विजातिय द्रव्य से भार से रहित हल्का, फुर्तीला व नीरोग होने लगेगा और संसार आनन्दमय जान पड़ेगा।

पहले जहां आप थके से रहते थे, अब आप उत्साहयुक्त रहेंगे और स्वभाव में चिड़चिड़ापन के बजाय नम्रता आ जायेगी तथा कार्य-शक्ति असाधारण हो जायेगी। यदि हमारा आहार-बिहार स्वाभाविक हो जाय तो संसार से चिन्ता बिल्कुल उठ जाय, क्योंकि रोगों की भांति चिन्ता व उदासी भी मल-ग्रसित शरीर में ही उत्पन्न होती है। जब यही बात है तो फिर क्या शोक, पाप, थकान, रोग, बुढ़ापा व अकाल मृत्यु को आप नहीं रोक सकते।

एक मनुष्य की कथा इसी इस प्रकार है कि वह बड़ा ही खराब व क्रोधी स्वभाव का मनुष्य था। आवेश में वह आपे से बाहर हो जाया करता था और सभी उससे अप्रसन्न रहा करते थे। अन्त में उसकी हालत और भी खराव हो गई और काम धन्धे से वह अयोग्य होकर घर आ गया, उसका एक ओर का अंग भी खराब संज्ञाहीन गया था।

कई उपचारों से जब वह निराश हो चुका तो उसे आयुर्वेद और ऐलोपैथी से घृणा हो गई और उसने प्रकृति माता के रहस्यों की खोज आरम्भ की। उसने खुली हवा में जंगल में थोड़े कपड़ों सहित घूमना वसैर करना आरम्भ कर दिया और भोजन को सात्विक स्वाभाविक बनाया। इन प्रयोगों से विजातीय द्रव्य बनना बन्द हो गया जो उसके रोग व कष्ट का मूल कारण था, उसके बेकार अंग में शक्ति आने लगी और लगभग एक वर्ष बाद वह मनुष्य नीरोग व शान्त स्वभाव का हो गया।

वह फिर काम पर आ गया और उसके साथी जो उससे अप्रसन्न

रहते थे, अब उससे प्रसन्न रहने लगे, क्योंकि उसका स्वभाव बिलकुल

बदल चुका था और उसने अपने सहयोगियों से यह कर क्षमा मांग ली कि पहले मैं रोगी विकार युक्त था और मेरा स्वभाव इसीलिए खराब था। अब मैं नीरोग स्वस्थ हूं और स्वभाव भी शान्त हो गया है। अगर वह मनुष्य पहले से ही यह जान जाता है कि मेरा शरीर मल ग्रसित, गंदा है और यह जानकर स्वाभाविक आहार द्वारा शरीर शुद्ध कर लेता तो उसे इतना कष्ट और इतनी हानि नहीं उठानी पड़ती और हम यह जानते हैं कि दुनियां में हमारे घर व समाज में, न जाने इन कारणों से कितनी हानियां हो रही हैं।

हमारी चिन्ताओं, कष्टों व रोगों की किसे परवाह ? और यदि परवाह भी हो तो दूसरे क्या कर सकते हैं, क्योंकि वे सब मल ग्रसित चिंता और व्याधियों से घिरे हुए हैं और उनके पास उन्हें मिटाने का कोई साधन नहीं है, वे केवल इन्हें ईश्वर की इच्छा समझकर चुप रह जाते हैं।

ईश्वर हमारे देश में वह शुभ दिन शीघ्र लावे, जब कि स्त्री-पुरुष व बच्चे सभी को यह अनुभव होने लगे कि रोग ग्रसित होना पाप है और यह कि रोग उन्हीं के खराब खानपान से होता है और उचित उपायों से (दवा, चीर-फाड़ से नहीं) दूर भी हो सकता है। व्याधि से पीड़ित प्राणियों को आरोग्य प्रदान करना कितना भारी परोपकार है कितनी बड़ी सेवा है ! परन्तु यह कितनी बड़ी सेवा, कैसा उपकार हो, अगर हजारों-लाखों मनुष्यों को हम स्वस्थ, नीरोग रहने के उपाय बतायें आरोग्य की शिक्षा देवें, ताकि वे अपनी आदतें सुधार कर भविष्य में सभी रोगों व अकाल मृत्यु से बचे रहें। चिकित्सा से स्वास्थ्य रक्षा बहुत अधिक सरल और महत्वपूर्ण है।

हजारों रोगी हमारे हाथों ठीक हो चुके हैं और हजारों दूसरी जगह स्वास्थ्य लाभ कर चुके हैं और आज भी आरोग्य हैं। यह रोगी पुराने थे और अनेक औषधियां खाकर निराश हो चुके थे। केवल उपवास, फलाहार, एनीमा, जल, मिट्टी, हवा आदि से उनके शरीर विकार रहित हो गए और संसार में कुछ देखने लायक हुए।

उन लोगों का आनन्द से समय कट रहा है, क्योंकि उन्होंने हानिकर पदार्थ, कढ़ाई में तली चीजें, दवाइयां अचार, मुरब्बे, नशा, तेज मशाले, मैंदा-मिठाई आदि व बासी चीजें खाना बिल्कुल छोड़ दिया है और हरे शाक, कंद-मूल, फल, दूध, कुछ रोटी आदि पर आनन्द से गुजारा कर रहे हैं और जीवन में बजाय दुख के सुख अनुभव कर रहे हैं।

अगर स्वाभाविक भोजन बीमारों को आरोग्य बना सकता है तो क्या उसके द्वारा हम सदा ही रोगों से नहीं बचे रहेंगे ?

रोज-रोज की बदखर्ची दिवाला निकलवा देती है और आमद के अनुसार खर्च करने वाले धनाभाव के कारण दुख नहीं उठा सकता, इसी प्रकार शरीर में रोज एक प्रकार की क्रिया होती रहती है, भोजन पचाने की, मल-पदार्थ बाहर फेंकने आदि की क्रियाएं रात-दिन होती रहती हैं और उनमें शरीर की जीवन शक्ति खर्च होती रहती है। अब अगर हम स्वाभाविक आहार द्वारा इस जीवन शक्ति की कमी को पूरा नहीं करेंगे तो उसका दिवाला निकल जायगा, मगर यह याद रहे आज जो खुराक हम खा रहे हैं वह लगभग मुर्दा, निस्सार आग से पकी हुई है और उनसे हमारे शरीर की आवश्यकताएं पूरी नहीं होतीं और जीवन-शक्ति खर्च अधिक हो जाती है।

मैदा की रोटी व मैदा की चीजें व हलुआ, पूड़ी आदि गरिष्ठ भोजन खाकर हम अपने शरीर के साथ कैसा घोर अन्याय कर रहे हैं, क्योंकि ये पदार्थ अत्यन्त रोग कारक हैं। वास्तव में गुण व आरोग्य केवल हरे कच्चे अन्न में होता है, परन्तु हम प्रकृति को मूर्ख समझ कर उसी अन्न को सुखा कर बारीक पीस छान कर के कई चीजें मिलाकर खाते हैं और यह समझ रहे हैं कि वह शीघ्र पच जायगा

इसलिये अगर हमें अपने स्वास्थ्य की कुछ भी परवाह है तो हमें यह नियम बनाना ही होगा कि हम अन्न, फल, शाक दूध आदि सभी पदार्थों

को उसी हालत में खावें जिसमें वे उगते हैं या लगते हैं और उनमें कोई परिवर्तन न करें, क्योंकि कच्ची हालत में ही उनमें ज़ोवन, ताजगी और पोषक तत्त्व रहते हैं। यही आरोग्य का रहस्य है साथ ही हमें कुछ और नियम भी पालने चाहिए जो कि तन्दुरुस्ती व बड़ी उम्र के लिए जरूरी वे हैं—अधिक जागना, तम्बाकू से परहेज, शराब व दवा का त्याग और अत्यधिक विषय-भोगों से बचना आदि।

मैं यह साफ बता देना चाहता हूं कि ऊपर लिखे कारण नींद रोकना घोर परिश्रम करके भी आराम न करना तम्बाकू,शराब व दवा लेना व अधिक विषय-भोग करना—ये सब हमारे प्राणों, दीर्घ आयु का नाश करने वाले हैं—और शरीर का पतन कर डालते हैं। परन्तु सबसे अधिक हानिकर तो हमारे खराब गरिष्ट, प्रकृति विरुद्ध पदार्थ हैं जिन्हें दुनिया खाकर अपने हाथों, रोगों व अकाल मृत्यु को न्यौता दे रही है।

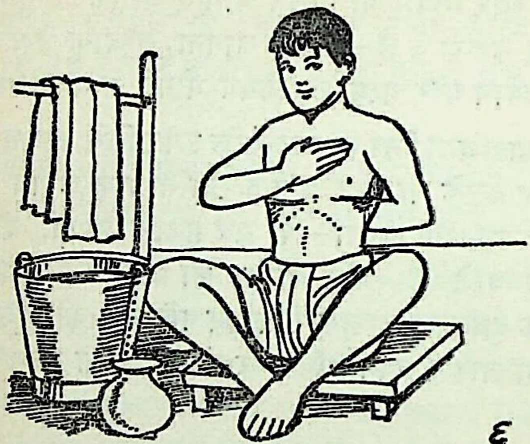
अगर आप स्वाभाविक सात्विक आहार पर रहते आ रहे हैं तो आपको अन्य नियमों की अवहेलना इतनी कष्टप्रद नहीं हो सकती, क्योंकि स्वाभाविक भोजन पर रहते हुए आपको किसी भी नशे या दवा की जरूरत ही नही पड़ सकती न आप अधिक कामी विलासप्रिय बन सकते हैं। और न नींद आप के लिए इतनी आवश्यक या कष्टदायक बन सकती है।

जिस प्रकार भगवान को याद करते हुए संसारी माया आहार पर रहते हुए रोग बुढ़ापा अकाल मृत्यु या पाप आदि का कोई असर नहीं हो सकता।

ऐसा स्वाभाविक जीवन स्वर्गतुल्य व आनन्दमय और ऐसे प्राणी रोग व मृत्यु से नहीं घबराते सदा प्रसन्न हंसते हुए रहते हैं।

भय से पाचन शक्ति नष्ट हो जाती है और शरीर को बड़ा धक्का पहुंचता है। ऐसा अनेक प्रयोगों व प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है।

इसलिये भय व चिंता आदि विकारों से सदा बचा रहना चाहिये और यह तभी सम्भव है जब हमारा आहार स्वाभाविक हो, हृदय बलवान व विकार रहित हो और शुद्ध हो। अन्यथा असम्भव है।



६

यह भूल है कि भय बाहर से आता है। भय अन्दर से उत्पन्न होता है और भारी मीठे प्रकृति विरुद्ध पदार्थ खाने से भय रूपी भूत किसी भी समय उपस्थित होकर हमें हानि पहुंचा सकता है इसलिए हमें भय के कारणों को दूर करना चाहिए।

भय की भांति चिंता भी मल जन्य विकार है और अन्दर से उत्पन्न होती है। चिंता शरीर का भारी नाश करती है और यदि चिन्ता का मूल कारण दूर न होगा तो वह बराबर बनी रहकर शरीर को नष्ट कर देगी। शरीर की अन्दरूनी सफाई के साथ-साथ चिंता अवश्य गायब हो जायगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

चिंता करने वाले लोग खराब खान-पान करते हैं। उनका शरीर अत्यन्त मलग्रसित व जीर्ण समझना चाहिए। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामने आए हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि चिन्ता-रहित व्यक्ति को प्रसन्न बनाया जा चुका है।

आइए, हम सभी रोग व विकारों के मूल कारणों को दूर करने

का प्रयत्न करें पर यह तभी सम्भव है जब हमारे समाज में स्वास्थ्य की ओर अधिक ध्यान दिया जाय और इस ओर पूर्ण प्रयत्न किये जाएं।

खैराती दवाखाने या अस्पताल खोलकर आप संसार का उपकार नहीं कर सकते जैसा आप स्वास्थ्य प्रचार द्वारा कर सकते हैं। एक बार जब रोग शरीर पर अधिकार जमा लेता है तब उसका निकलना बड़ा ही कठिन हो जाता है और उसमें कितना खर्चा कितनी हानि उठानी पड़ती है उसका अनुमान लगाना कठिन है।

थोड़े-से आरोग्य विषयक ज्ञान, थोड़े भोजन सुधार द्वारा सभी रोगों से हम बचे रह सकते हैं! पर हम इस ओर सोये हुए हैं। धनी लोग दवाखाने खुलवा कर मुफ्त दवा बांटना ही परमार्थ परोपकार समझते हैं पर उन्हें यह नहीं मालूम कि ऐसा करके वे संसार को और भी अधिक गुलाम व रोगी बना रहे हैं और जनता सिवा दवाखाने के आरोग्य रक्षा के लिए कुछ नहीं करती।

आए दिन हम सैकड़ों दीर्घ रोगियों को देखते हैं, उनका परिवार उनके रोगी होने से कितना दुखी रहता है। रात दिन इलाज में रुपया पानी की तरह बहाया जाता है। स्याने, भोपे, वैद्य डाक्टरों की भरमार रहती है परन्तु फिर भी रोगी अच्छे नहीं होते और होते भी हैं तो बहुत धन खर्च करके बड़ी भारी कठिनाइयों से। ऐसा क्यों होता है? इसीलिए कि हम लोग पहले अपने स्वास्थ्य की कोई परवाह नहीं करते। आरोग्य एक तुच्छ वस्तु समझते हैं। रात-दिन कमाई-कमाई, गृहस्थ के धन्धों में, समाज के कार्यों में फंसे रहते हैं। पर आरोग्य को बनाये रखने के उपाय नहीं करते। और उपाय करें भी तो क्या करें, हमें मालूम नहीं कि क्या खाना चाहिए, किन चीजों से परहेज रखना चाहिए एवं रोगों से बचने के लिए किन-किन उपायों से काम लिया जावे।

हम जानते हैं कि रोगों के आक्रमण से बचने के लिए टीका-इंज-

क्शन लगवाना, चूहे और मच्छरों के प्राण हरण करना, शहर की गलियों को साफ रखना और एहतियात के लिए दवाइयां खाते रहना। परन्तु अफसोस हम कितनी भूलें कर रहे हैं, टीका इंजेक्शन रोगों से हमें न बचाकर अधिक रोगी बना रहे हैं और चूहे व मच्छर मार कर शायद ही कोई नीरोग रहा हो।

हम अपनी खराब आदतों को नहीं छोड़ते अनाप शनाप खाते रहते हैं, भूख बन्द होती है तो चूर्ण खाकर झूठी भूख लगाते हैं। दस्त नहीं होता तो तम्बाकू पीते हैं और ताकत के लिए मछली का तेल पीते हैं।

क्या यह उपाय ठीक है ? नहीं। आप जानवरों के जीवन पर दृष्टि डालिये। वे क्यों नीरोग रहते हैं ? इसीलिए कि वे स्वाभाविक आहार पर रहते हैं उनका रहन-सहन नैसर्गिक है और वे कोई भी दवा-दारू नहीं लेते जब तक हम उन्हें मजबूर न करें। अब आप आरोग्य रक्षा का रहस्य समझें।

क्या आप स्वयं अपनी व्याधियां मिटा सकते हैं ?

यद्यपि सौ फीसदी रोगों को स्वयं दूर कर लेना हर एक मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है जब तक कि वह स्वयं उसका ज्ञान प्राप्त न करले फिर भी यदि लोग आरोग्य विषयक ज्ञान प्राप्त करके अपने रोगों को स्वयं ठीक करने लग जायें तो संसार का शोक व दु:ख बहुत कम हो सकता है। अनेक प्रकार के व्यायाम, आसन, सूर्य नमस्कार, घूमना, खेल-कूद आदि प्रचलित है और उनके विशेषज्ञ अपने अपने ढंग की काफी तारीफ किया करते हैं जिससे अनेक लोग भ्रम में पड़ जाते हैं और उनका पूरा उपयोग नहीं कर सकते फिर भी आरोग्य प्राप्त करने के यह उत्तम साधन हैं और दवा व चीर-फाड़ से तो बहुत ही उत्तम है।

प्राकृतिक चिकित्सा भवन, व्यायाए शालाएं आदि में अनेक उत्तम मार्ग स्वास्थ्य प्राप्त करने के सिखाये जाते हैं जिनके द्वारा शरीर में विजातीय द्रव्य पैदा होने से रोका जा सकता है और इसीलिए ऐसी संस्थाएं जनता के लिए अधिक उपयोगी हैं जैसा कि हम बार-बार कह चुके हैं, मैदा, सफेद चीनी, रोटी, नमक, तेल, मसाले आदि पदार्थ शरीर को गन्दा कर डालते हैं और उन्हें पचाने के लिए कठोर परिश्रम की तथा साथ-साथ खटाई भी खाना जरूरी है अन्यथा वे आंतों में सड़ने लग जाते हैं। लगभग ९९ फीसदी लोग रोटी-दाल खाते हैं और उनमें से ९० फीसदी लोगों को वह पूरी तौर पर हजम नहीं होती और उनके पेट व आंतों में बिना पचे भाग हमेशा सड़कर मैल (जहर) पैदा होता रहता है।

इसलिए जिन्हें अपना स्वास्थ्य बनाये रखने की इच्छा हो, उन्हें चाहिए कि इन चीजों के साथ-साथ रसदार फल भी लें और समय-समय पर उपवास करते रहें अथवा एक समय दाल-रोटी और दूसरे समय हरी तरकारी व फल आदि लेते रहें। मांस, मछली, अण्डे, चाय, शराब आदि जहरीली वस्तुओं से बचना ही उत्तम है, परन्तु सदा के लिए तो दूर रहा एक वक्त भी रोटी-दाल छोड़ने की बात सुनते ही हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं और समाज चाहे कितना भी रोग में फंसा रहे, पर दाल-रोटी के बजाय शाक, फल, दूध आदि ले आना हरगिज पसन्द नहीं करेगा।

अनेक बच्चों को देखा गया है कि वे रोटी के बजाय फल, कच्चे शाक, दूध अधिक पसन्द करते हैं, पर उनके माता-पिता उन्हें पीटकर जबरन दाल-रोटी खिलाते हैं। उनकी धारणा होती है कि अन्न के बिना वे जीवित नहीं रह सकते।

यह निश्चय समझिये कि हमारी रोटी हमारा जीवन नहीं है। उसके बिना भी हम रह सकते हैं। वही रोटी बारीक चक्की के आटे की या मैदा की हो तो वह निश्चय ही हमारे लिए प्राणघातक

है, क्योंकि अन्न को जितना सुखायेंगे, बारीक पीसेंगे, छानेंगे, सेकेंगे, नमक-मसाले मिलावेंगे, उतना ही अधिक वह गरिष्ठ, हानिकर हो जायेगा और वह पूरा हजम न होकर पेट में सड़ेगा और अधिकांश रोगों व अकाल मृत्यु का कारण बन जायगा।

रोटी हमेशा गेहूं, जौ, बाजरे, मोटे आटे की, बिना छने चोकरदार आटे की होनी चाहिए, वह भी शारीरिक परिश्रम करने वाले ही पचा सकते हैं। दिमागी काम वालों के लिए तो रोटी अधिकांश रोगों का कारण हो जाती है।

जुकाम क्या है? चीनी, रोटी, नमक, दाल, मसाले खाकर लोग उन्हें पचा नहीं सकते और वे मल-पदार्थ पेट में से सारे शरीर में फैलकर खून को खराब कर देते हैं। उसी मल को शरीर जुकाम आदि के जरिये नाक व मुंह होकर बाहर निकालता है। जुकाम से सिद्ध होता है कि शरीर मल से भर गया है और इसलिये शरीर मल को फेंककर अंदरूनी सफाई कर रहा है। इसको रोकने या मिटाने के लिए प्रकृति विरुद्ध दवा खाना महा मूर्खता है; बल्कि चाहिए यह कि जुकाम जिन कारणों अन्न, मसाले, मीठा आदि से हुआ है, उनको खाना छोड़ दिया जावे।

जुकाम को दवाइयों से दबाना अथवा पहाड़ पर जाना व्यर्थ है। उपवास, फलाहार या एनीमा व हलके भोजन से सब प्रकार के जुकाम-नजला अवश्य मिट जायेंगे। इसी प्रकार दमा के दौरे मिटाने के लिए दवा, इंजेक्शन आदि की शरण लेना ऐसा ही व्यर्थ व हानिकर प्रयास है, जैसे कि कोई मूर्ख पाप करके सुखी रहना चाहे। हो सकता है कि कहीं-कहीं को जलवायु में रहने से दमा के दौरे रोके जा सकें, पर स्थाई आराम तभी होगा जब कि लोग उसके मूल कारणों को जानकर विष (मल) उत्पन्न करने वाले पदार्थ खाना छोड़ दें, एनीमा, उपवास, फलाहार द्वारा आंतों को शुद्ध कर

लें, दवा रूपी ज़हर न खावें अन्यथा उनके रोग जड़ से नहीं मिट सकते।

कितनी भूल है कि लोग धातु-दवा, जड़ी-बूटी, अंग्रेजी दवा, इन्जेक्शन आदि दमा व पुराने बुखार को दूर करने के लिए सेवन करते हैं और शरीर में भरे हुए दीर्घकालीन मल, कफ को स्वाभाविक उपायों से नहीं मिटाते।

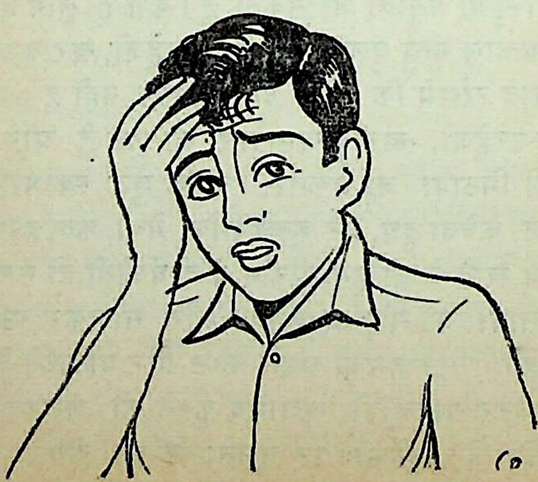
यद्यपि पुराने जुकाम को मिटाने में कुछ समय लगता है, पर बहुत पुराने दमा का इलाज भी पूर्ण सफलता के साथ बिना दवा खाये केवल एनीमा, (वस्ति-क्रिया) उपवास, फलाहार, सात्विक भोजन, शुद्ध वायु सेवन से स्थाई रूप से हो चुका है और लाखों इस नारकीय दुःख से मुक्त हो चुके हैं। इसलिए समय न खोकर जल्दी से जल्दी दवादारू के झगड़ों से बचिये और प्रकृति के अचूक निर्दोष उपचारों द्वारा अपनी व्याधियां आप मिटाने की चेष्टा कीजिए। कितना अन्धेर है, कैसी घोर कष्टमय स्थिति है। दमा के व सभी तरह के दुःखी रोगी अगर इन सीधे-साधे नैसर्गिक उपचारों को जाए न जायं तो उनका जीवन कैसा सुखी बनाया जा सकता है। कैसे हैं. लोग जो अपने हाथों रोग और अकाल मृत्यु बुलाते हैं ? बद-परहेजी, खराब खान-पान से। इसलिए याद रखिये कि रोग दैवी विपत्ति नहीं है। हमारे अज्ञान, हमारी बद-परहेजी, खराब खानपान का फल है और उसको दवा-दारू से नहीं मिटाया जा सकता; बल्कि शुद्ध स्वाभाविक सात्विक भोजन, फल, कच्चा दूध, हरे कच्चे शाक, मेवा, कंद, हरा कच्चा अन्न आदि पदार्थ खाने से ही हम नीरोग व दीर्घजीवी हो सकते हैं। यही सबक हम लोगों को सीखना चाहिए और सीखकर उस पर अमल करना चाहिए, फिर हमको अपने कष्ट और पीड़ाओं के लिए वैद्य-राज व डाक्टर साहब की खुशामद करने की जरूरत नहीं रहेगी, केवल प्रकृति के नियमों पर चलना काफी होगा। हजारों बार अनेक प्रकार के अनुभवों से सिद्ध हो चुका है कि बड़े से बड़े नए-पुराने रोग बिना किसी दवा के सेवन किये, बिना चीर-फाड़ कराये,

केवल वस्ति-क्रिया, उपवास, फलाहार, हवा स्नान, धूप स्नान व मिट्टी की पट्टियों से हमेशा के लिए ठीक हो गये हैं और ऐसे लोग आज भी हृदय से प्राकृतिक चिकित्सा के कृतज्ञ और भक्त बने हुए हैं।

भोजन और आरोग्य

रोगों की चिकित्सा व दीर्घ-जीवन प्राप्ति के लिए सबसे अधिक आवश्यकता भोजन-सुधार की है, परन्तु भोजन रोग को दूर करता है—यह बात नहीं है। रोग को तो शरीर ही स्वयं अपनी जीवनी-शक्ति द्वारा ठीक करता है, यद्यपि सभी रोग प्रकृति विरुद्ध भोजन करने से होते हैं फिर भी भोजन को स्वाभाविक बनाने से शरीर को अपने सुधार में भारी मदद मिलती है।

जन साधारण में आहार के विषय में बहुत भ्रम और अंधविश्वास फैला है। यदि हम आहार छोड़ दें तो हमारी मृत्यु हो जायगी, परन्तु इतनी जल्दी नहीं जैसा कि लोगों का ख्याल है। भोजन न मिलने पर अग्नि पहले दोषों को, (मल-पदार्थों) खाने लगती है और



दोषों को पचा चुकने के बाद धातुओं को खाती है, परन्तु लगभग सभी मनुष्यों के शरीर दोषों से खूब भरे हुए रहते हैं। यहां तक

कि बहुत समय तक आहार न मिलने पर भी लोग जीवित रह सकते हैं। ढाई-तीन महीने तो हमारे यहां कई रोगी बिना खाए रह जाते। हैं मोटे आदमी तीन मास तक फलों के रस पर रह जाते हैं और दुबले-पतले महीने-बीस दिन तक रह जाते हैं, अलबत्ता वे फलों का रस अवश्य लेते रहते हैं। जनता के कैसे झूठे विचार हैं कि अन्न बिना प्राण नहीं रह सकते।

वास्तव में भोजन के रहस्य व उसके महत्व को न समझने ने ही लोग अनेक व्याधियों से ग्रसित होकर कष्ट पा रहे हैं। जैसे कि धूप व हवा के गुणों को न समझने से हमारे शरीर निकम्मे बन गए हैं।

इसी प्रकार लोग आराम और मेहनत को सही-सही नहीं समझते। आवश्यकता व मर्यादा से अधिक ये दोनों ही शरीर का नाश करते हैं और उसका लोप भी हानिकर है।

दोनों समय दाल, रोटी, मिठाई, नमकीन, मसाले आदि जो कुछ मिल जाय, उसे खा लेना—यही हम लोग समझे हुए हैं। इस बात को जानने की कोशिश कोई नहीं करता कि आया जो खुराक रोज हम खाते हैं, उससे शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है या नहीं और शरीर उसे भली-भांति पचा सकता है या नहीं। यदि हमारी खुराक में ये दोनों बातें व दोनों गुण नहीं हैं, तो वह खुराक खुराक नहीं कही जा सकती।

उदाहरण के लिए बिना भूख लगे जो खराक खाई जाए, वह खुराक नहीं है और उससे शरीर को कोई लाभ न होगा। वह मेदे पर भार-स्वरूप हो जायगी और पाचक अङ्ग को थकाकर वह खुराक रोग व पीड़ा का कारण बन जायगी।

कई लोग किसी विशेष आहार पर रखकर रोगों को दूर करते हैं, पर सभी रोगों के लिए ऐसा नहीं होता और केवल एक वस्तु पर रखना बहुधा हानिकर हो सकता है। शरीर की जो आवश्यकताएं

हैं उन्हें वही जानता है और सब बातें अन्तःकरण स्वयं साफ बता देता है। हमें शरीर को सभी प्रकार के गुणों वाली, जीवित व स्वाभाविक खुराक देनी चाहिए, फिर शरीर अपनी देखरेख स्वयं कर सकेगा।

शरीर की आंतरिक इच्छा साफ बता देती है कि शरीर के भिन्न-भिन्न परमाणुओं के लिए अमुक आहार इस समय चाहिए और उसकी पहचान जिव्हा, मन आदि के द्वारा भली-भांति हो सकती है। आंतें अपना भोजन आप मांग लेती हैं। एक प्रसिद्ध डाक्टर का कथन है कि लगभग सभी रोग, जिनसे मनुष्य पीड़ित है, वे भोजन की अपूर्णता से होते हैं, कम मात्रा में खुराक पहुंचने से नहीं; बल्कि ये खुराक खाने से जिनमें शरीर के लिए आवश्यक व पोषक गुण की कमी या अभाव है।

जानवरों पर ऐसे प्रयोग करके देखे जा चुके हैं कि पहले उन्हें ऐसी चीजों पर रखा गया जिनमें उनके शरीर के लिए पोषक गुणों की कमी थी और वे बीमार हो गए। बाद में उन्हीं जानवरों के गुण व पौष्टिक तत्व वाले पदार्थ खिलाये गए और वे बिल्कुल ठीक व तंदुरुस्त हो गए।

तन्दुरुस्ती की हालत में खुराक यही काम करेगी कि शरीर के पाचक अङ्गों की जरूरतों को पूरा करे और पोषण भी हो जाए, परन्तु बीमारी की हालत में आहार का महत्व और कार्य बहुत बढ़ जाते हैं।

हमारे समाज में लोग बिल्कुल नहीं समझते कि भोजन ही अमृत और भोजन ही विष हो सकता है—यदि उसका वास्तविक ज्ञान न हो।

बासी पदार्थ या बहुत दिनों के पुराने पदार्थ खाने वालों में रोग बहुत जल्दी फैलते हैं और जिन्हें दूध, हरे शाक, फल आदि ताजा भोजन नसीब नहीं होता, उन्हें बेरी-बेरी आदि रोग आ घेरते हैं।

पिछले महायुद्ध में एक जर्मन जहाज को समुद्र में कई दिनों तक किनारे से दूर संयोगवश रहना पड़ा था। उसमें ताजा सामान फल, शाक, मक्खन आदि तो बड़े अफसरों को मिलता था और मल्लाह

आदि नीची श्रेणी के मनुष्यों को सुखाये हुए साग पात, नमकीन, मांस मैदा की चीजें, विस्कुट, रोटी आदि तथा पालिश किये हुए चावल, पुरानी खाद्य सामग्री आदि सारहीन पदार्थ खाने पड़े।

कुछ दिन ता बेचारे आदमी ठीक रहे, पर शीघ्र ही ऐसी खुराक खाने से वे लोग सुस्त, कमजोर, ठस दिमाग, झगड़ालू, थके मांदे से हो गए। उचित पोषण के अभाव में उनके पांव व टखने सूज गए, दिल कमजोर हो गया, उनके गुर्दे खराब हो चले, बीमारियों ने आ घेरा और चलने-फिरने के अयोग्य हो गए। अन्त में जहाज वालों ने शत्रु को आत्म-समर्पण कर दिया। एक अनुभवी विद्वान् डाक्टर ने जांच करके पता चला लिया कि अवश्य ही इन लोगों ने कई दिन खराब खुराक खाई होगी और कारण भी वास्तव में यही था कि उन लोगों को आग से पकी हुई, कई दिन की बासी, नष्ट की हुई मुर्दा खुराक खानी पड़ी थी और यह कि आरोग्य व जीवन दायक ताजा फल हरे, शाक, कच्चा अन्न, दूध आदि खाने को नहीं मिल सका था।

उक्त डाक्टर की राय से शीघ्र उन लोगों को तीन-चार दिन तक ताजे फलों का रस खूब पिलाया गया और फिर चार-पांच दिन हरी तरकारियों का रस निकालकर कच्चा ही पिलाया गया। उसके बाद फल व हरे शाक दूध आदि प्राणदायक पदार्थ खाने को दिये गए। परिणाम यह हुआ कि वे सभी लोग हट्टे-कट्टे व तन्दुरुस्त हो गए और खराब प्रकृति विरुद्ध भोजन से उत्पन्न हुए सभी रोग जाते रहे।

अब आप समझे कि आरोग्य रक्षा व रोगों की चिकित्सा में स्वाभाविक आहार का कितना महत्व है और प्रचलित दवाइयां कितनी अनावश्यक व निरर्थक हैं? शरीर को स्वाभाविक, ताजा और जिन्दा खुराक चाहिए तभी वह ठीक रह सकता है। इसके विपरीत प्रकृति विरुद्ध बासी पकाई हुई खुराक से अवश्य वह बीमार होगा। इस नियम को कोई दवा नहीं बदल सकती, चाहे वह कैसी ही कीमती हो। प्रकृति की यह इच्छा है कि खुराक जहां तक हो ताजा ही खानी

चाहिए। फल, शाक, कन्द, दूध, मेवा, कच्चा अन्न ताजा व असली खुराक कहे जा सकते हैं, परन्तु मेवा, अन्न आदि कुछ काल तक रह भी सकते हैं—यदि उनके गुण नष्ट न किये जावें, परन्तु मनुष्य अपनी बुद्धि से स्वाभाविक पदार्थों को सुखाकर, गलाकर, आग से सेंककर, मसाले मिलाकर, मीठा डालकर उनके गुण नष्ट कर डालता है और फिर वे चीजें केवल स्वाद के लिए योग्य रह जाती हैं शरीर के लिए बेकार हैं।

कढ़ाही में तले पदार्थ, हलवाई की मिठाइयां, बिस्कुट, आचार, मुरब्बे आदि बड़ी ही हानिकर व आरोग्य-नाशक वस्तुएं होती हैं।

इसलिए अपने आरोग्य और दीर्घ जीवन की रक्षा के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि यह ध्यान रखा जाए कि जो खुराक खावें वह असली खुराक हो, केवल स्वाद के लिए न खावें, साथ ही उसमें उचित मात्रा में लवण, पोषक तत्व आदि स्वाभाविक अवस्था में मौजूद हों। भोजन उतना ही किया जावे कि भूख शान्त हो जावे, खूब पेट भरकर भोजन न करें और यथाशक्ति खूब चबा-चबाकर खाना ठीक है।

यदि भोजन स्वाभाविक ताजा है तो फिर हमें बहुत थोड़े-से भोजन से पूरा पोषण मिल सकेगा और हममें अधिक बल व उत्साह बढ़ता चला जावेगा।

यदि परिस्थितियों के वश हमें दाल, रोटी, भात, मिठाई, नमकीन आदि पदार्थ खाने पड़ें तो हमें उनके साथ-साथ हरे शाक, ताजा फल, दूध आदि मिकदार में अवश्य खाने चाहिए, अन्यथा केवल अन्न आदि से मल पदार्थ खूब बनेंगे और हमारा शरीर रोगी व अल्पजीवी हो जाएगा।

अन्न आदि अकेले खाने से आंतों में सड़न उत्पन्न कर देते हैं और अनेक रोगों के कारण बन जाते हैं इसलिए फल व हरे शाक अवश्य थाली में होने चाहिए, ताकि सडन उत्पन्न न हो, रोटी चोकरदार मोटे आटे की होनी चाहिए और सूखी ठीक है, बारीक आटे की चुपड़ी

रोटी बड़ी ही गरिष्ठ, हानिकर और रोग पैदा करने वाली है और पेट में जाकर बैठ जाती है।

यदि रोग मल पदार्थों के उत्पन्न होने से ही होते हैं और मलपदार्थ केवल विरुद्ध भोजन से ही बन सकते हैं तो क्या यह सच नहीं कि खुराक ही रोगों की जड़ है? बस अगर आप पथ्य-कुपथ्य का रहस्य समझ गए तो आरोग्य रक्षा और रोगों के इलाज में आप सफल हो सकेंगे अन्यथा नहीं।

यद्यपि अधिक भोजन से मल-पदार्थ बनते हैं पर यदि खुराक असली स्वाभाविक होगी तो आप आवश्यकता से अधिक खा ही न सकेंगे। यह तो नाना भांति की तरकारियां, आचार-मुरब्बे, नमकीन चाट आदि ही हैं जिनको देखकर झूठी भूख जागती है और हम लोग इन्हें आवश्यकता से अधिक खा डालते हैं। फल, हरे शाक, कच्चा अन्न, दूध आदि तो आवश्यकतानुसार ही खाने में आवेंगे।

आपको आश्चर्य होगा कि स्वाभाविक भोजन थोड़ा ही काफी होगा और उचित पोषण मिलेगा और अस्वाभाविक भोजन पाचन शक्ति के लिए भार स्वरूप होगा तथा उसका अधिकांश भाग मल, मूत्र, कफ आदि बन जाएगा, पाचन शक्ति अधिक खर्च होगी और शरीर को पोषण कम मिलेगा।

स्वाभाविक आहार पर रहते हुए तीसरे पहर भूख भी कम लगेगी, क्योंकि दोनों समय के आहार से आवश्यक पोषण शरीर को मिल जाएगा।

मांस, अंडे, मछली आदि बड़े गरिष्ठ व हानिकर पदार्थ हैं, इनका सेवन मना है। अनाज आदि खाद्य-पदार्थों को जितना पड़ा रखेंगे, सुखाएंगे, पीसेंगे, उबालेंगे, सेकेंगे, कढ़ाही में तलेंगे, घी, मसाले, मीठा मिलायेंगे उतना ही वह हानिकर व गरिष्ठ रोगकारक बन जायेंगे। संयोग विरुद्ध पदार्थों को कभी एक साथ एक बार नहीं खाना चाहिए

जैसे मिठाई, अनाज आदि एक साथ खाने से आंतों में सड़न उत्पन्न हो जाती है।

यदि हम प्रकृति विरुद्ध अनाप-शनाप बिना भूख जो चाहा खाते रहेंगे तो हमारे शरीर में मल-पदार्थ अवश्य ही बनते रहेंगे और चूंकि मल-पदार्थ शरीर के लिए घातक होते हैं और आवश्यक हैं इसलिए शरीर अवश्य उन्हें बाहर फेंकने की चेष्टा करेगा और इसमें काफी जीवन शक्ति खर्च करनी पड़ेगी। धीरे-धीरे दीर्घकाल तक खराब भोजन खाते रहने से शरीर काफी मात्रा में मल-पदार्थों से भर जाता है पर हम इस ओर निश्चित रहते हैं और जब कभी तेज बीमारी के द्वारा शरीर इन मल-पदार्थों को फेंकना चाहता है तो दवारूपी जहर से हम उन तीव्र रोगों को अन्दर दबा देते हैं।

यदि लोग पहले ही बचपन से भोजन का सच्चा ज्ञान प्राप्त कर लें और साथ ही आहार को यथाशक्ति सादा स्वाभाविक ताजा ही किया करें और मजबूर होकर भी बिना भूख तथा खराब भोजन न करें तो दुनिया से रोग समूह बहुत कुछ कम हो जाएंगे।

इसीलिए हम फिर कहते हैं कि प्रकृति विरुद्ध भोजन ही हमारे सब रोगों का, अकाल मृत्यु का, पापों का व शोक तथा पीड़ाओं का एक मात्र व प्रधान कारण है और उसके लिए हम ही जिम्मेदार हैं।

जिंदा और मुर्दा खुराक

जिन्दा अथवा जीवित वस्तु ही जीवन प्रदान कर सकती हैं—ऐसा प्रकृति का नियम है। हर एक भोज्य-पदार्थ के विषय में भी यही नियम लागू होता है।

अगर आज हम अपनी थाली या मेज पर रोजाना खाई जाने वाली खुराक की जांच करेंगे तो निश्चय हो जाएगा कि उनमें ८० या ९० फीसदी मुर्दा खुराक है। इसकी पहचान यह है कि आप उस अनाज को जमीन में बोवें वह न उगेगा क्योंकि उसके प्राण नष्ट हो चुके हैं।

मनुष्य सृष्टि के सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है, इसलिए ईश्वर ने सबसे ऊंचे दर्जे का आहार मेवा, फल, शाक, कन्दमूल, हरा कच्चा अन्न, दूध आदि पदार्थ उसके लिए बनाये हैं। कहा जाता है कि आदम इस भोजन पर दृढ़ रहा, परन्तु इस स्वाभाविक भोजन को छोड़कर अभक्ष्य करने लगी और परिणाम में बीमार रहने लगी। स्वयं हमारे पाप ही हमारे लिए दण्ड स्वरूप बन जाते हैं।

मुर्दा भोजन से कभी प्राण स्थित नहीं रह सकते। यह रसायन-शालाओं के प्रयोगों से भली-भांति सिद्ध हो चका है। हम थोड़ी-बहुत मात्रा में जीवित भोजन तैयार करते हैं, इसलिए अपने जीवन को कायम रखने में समर्थ हो रहे हैं।

यद्यपि हमारी थाली में कुछ न कुछ फल, मेवा, हरा शाक, कच्चा दूध आदि जीवित पदार्थ कुछ मात्रा में रहते हैं, परन्तु सर्व साधारण



इतनी अधिक मात्रा में मुर्दा खुराक खाते हैं कि उनको पोषण तो बहुत कम मिलता है और मल-मूत्र बहुत अधिक बनता है और अधिकांश पदार्थ बेकार चले जाते हैं। इतना होने पर भी यह ठीक न होगा कि सदा से पके हुए अन्न आदि खाने वाले लोग एकदम उन्हें

छोड़कर कच्चा स्वाभाविक आहार करने लग जाएं, ऐसा करना अनुचित होगा। शरीर एकदम कच्चे आहार का आदी न हो सकेगा और अनेक शिकायतें पैदा हो जायेंगी। आग से पकी मुर्दा खुराक खाने वाले स्वस्थ दीर्घजीवी हो सकते हैं, परन्तु वे ही लोग अगर स्वाभाविक कच्चे आहार पर गुजारा करते तो न जाने कैसे नीरोग, निष्पाप व दीर्घजीवी होते।

जिन रोगियों की जठराग्नि लगभग नष्ट होने वाली है, जैसा किसी तेज बीमारी के बाद होता है या जो हालत पुराने रोगों के अन्त में हुआ करती हैं। ऐसे समय हम लोग कच्चे भोज्य-पदार्थों को स्वाभाविक रूप में नहीं खिलाते; बल्कि हम कुछ समय फलों का रस अथवा हरे कच्चे शाक आदि का रस निकाल कर रोगियों को देते हैं और जब यह उन्हें पचाने लगते हैं, तब फल व शाक आदि खिलाते हैं। इसके बाद धीरे-धीरे पके हुए पदार्थ बिलकुल बन्द कर दिए जाते हैं और ज्यों-त्यों शरीर आदी होता जाता है एक दम सभी आहार कच्ची, स्वाभाविक अवस्था में देने लगते हैं।

इन प्रयोगों से धीरे-धीरे बिल्कुल क्षीण नष्ट प्रातः जठराग्नि भी फिर से लौट आती है और फिर से अपना काम ठीक करने लग जाती हैं, यहां तक कि असाध्य मरणासन्न रोगी भी पुनः स्वास्थ्य लाभ कर लेते हैं और बहुत-से तो बाद में जाकर बड़े ही तन्दुरुस्त, हट्ठे-कट्ठे बन जाते हैं, अलबत्ता उनका कोई अङ्ग या भाग जो बिल्कुल ही नष्ट हो, वह शायद फिर पहले जैसा न भी बने।

हर एक वैज्ञानिक कच्चे और पकाये हुए पदार्थों के अन्तर भेद को भली-भांति जान सकता है कि गर्मी से पदार्थों का स्वभाव सर्वथा बदल जाता है। आग से पक जाने पर टमाटर उतने गुणदायक नहीं रहते जितने कि कच्चे, परन्तु उबले हुए भी खाये जा सकते हैं। टमाटर बड़े ही आरोग्य दायक होते हैं और उनमें विटामिन काफी मात्रा में पाये जाते हैं, परन्तु पके टमाटर थोड़ी मात्रा में खाना चाहिए और

कच्चे टमाटर काफी मात्रा में पेट भर खाए जा सकते हैं, कोई हानि न होगी; बल्कि शरीर को बड़ा ही लाभ होगा। फलों में प्रत्यक्ष अमृत है और ताजे कच्चे फलों में सब रोगों को दूर करने की शक्ति होती है, परन्तु पकाने व उबालने पर वे प्राण रहित मुरदा हो जाते हैं। यह बात नहीं है कि फलों को आग से सेंकने या पकाने से वे हानिकर हो जाते हैं अर्थात् वे सार-हीन बन जाते हैं।

बहुत समय आग से पकी हुई मुर्दा खूराक खाते रहने से हमारा पेट, आंतें इतने खराब हो गये हैं कि कच्चा आहार, कच्ची तरकारी, सलाद आदि खाने में हमें बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है। यद्यपि कच्चे शाक सलाद अत्यन्त गुणकारी होते हैं।

इसीलिये पहले कच्ची व हरी तरकारियों को पीसकर उनका रस निकाल लेना चाहिए चाहिए और नारङ्गी, मौसमी, अनार या और किसी फल के रस में मिलाकर उसे पीना ठीक रहेगा और धीरे-धीरे शरीर स्वयं कच्चे शाक आदि को ग्रहण करने लग जायगा। शरीर धीरे-धीरे हर एक फल व शाक को कच्चा ग्रहण करके पचाने लगेगा और इस अवस्था में शरीर को स्वस्थ व शसक्त रखने के लिए बहुत थोड़ी मात्रा में भोजन काफी होगा।

इसी प्रकार धारोष्ण कच्चा दूध जीवित गुण युक्त होता है, परन्तु औटाने पर उसके अधिकांश गुण नष्ट होकर वह भारी हो जाता है, परन्तु अकेले दूध पर बहुत अधिक काल रहना ठीक न होगा, उसके साथ-साथ फल, हरे शाक, मेवा, हरा व कच्चा अन्न आदि वस्तुएं भी खाना आवश्यक है।

फिर भी छोटी उम्र के बालकों के लिए कच्चा दूध बड़ा ही उत्तम भोजन है, परन्तु हमारे समाज में तो बकरी या गाय के स्वाभाविक अमृत तुल्य दूध को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। हम लोग अपने बच्चों को विलायती दूध, सूखा दूध, बालामृत आदि सार हीन मुर्दा चीजें पिलाकर नीरोग व दीर्घजीवी रखने की आशा करते हैं, जो भारी भूल है।

जिन घरों में, खासकर धनवानों में, माताएं फल, दूध, हरे शाक आदि का सेवन नहीं करती और जिनके बच्चे भी ताजा फल, हरे शाक, कच्चा दूध आदि नहीं खाते-पीते, वहां वे अधिकांश कमजोर, बुज़दिल, मन्दाग्नि वाले हो जाते हैं।

परन्तु आप डाक्टर वैद्यों से तो पूछिये, कच्चे दूध में कीटाणु बताये जाते हैं, इसीलिए क्षय रोगों से बचने के लिए सूखा विलायती दूध पिलाने की राय देते हैं, भला हमारे बच्चों की तरह क्या कोई जानवरों के बच्चे भी विलायती दूध पीकर जिन्दा रह सकते हैं, कभी नहीं जो जानवर आग से पकी चीजें खाते हैं वे बीमार ही रहते हैं।

कुछ भी हो, यह निश्चित सिद्धान्त है कि कोई भी खुराक, जो आग से पकाई जाती है, असली व कुदरती खूराक नहीं कहलाई जा सकती, क्योंकि आग की गरमी से उसके गुण व स्वभाव बिल्कुल बदल गये हैं और इसीलिये सेंके व उबाले हुए बीज आदि फिर नहीं उग सकते क्यों ? उनके प्राण जा चुके जो वापस नहीं आ सकते।

मनुष्य जब पैदा होता है, उस समय उसमें एक सीमित मात्रा में जीवन-शक्ति मौजूद रहती है। इसी जीवन-शक्ति को हम जीवित स्वाभाविक भोजन द्वारा स्थाई कर सकते हैं अथवा अस्वाभाविक मुर्दा आग से पके पदार्थ खाकर धीरे-धीरे नष्ट कर देते हैं।

जरा सोचिये कि अगर हम मुर्दा खुराक खाते रहेंगे तो हमारी जीवन शक्ति उससे कायम ही कैसे रहेगी और इसीलिए मुर्दा भोजन से हमारे शरीर क्षीण हो जाते हैं। सारांश यह है कि जो मनुष्य थोड़े फल, हरे शाक और मेवे खाकर रहेगा वह कभी भी बीमार नहीं होगा, बहुत बड़ी उम्र तक जवान बना रहेगा क्योंकि इन्हीं चीजों में सभी जरूरी पोषक तत्व मौजूद हैं और जो ऐसा करते हैं वे इसके असाधारण गुणों को जानते हैं। इङ्गलैंड के एक प्रसिद्ध पहलवान का यही हाल था कि दुनियां का एक बड़ा प्रसिद्ध व शक्तिशाली व कुश्ती लड़ने वाला मनुष्य था। उसके मित्र की जबानी यह

मालूम हुआ था कि साठ वर्ष की उम्र में भी बिल्कुल नीरोग व ताजा था और बुढ़ापे का एक भी चिन्ह उसके शरीर पर न था। उसका वजन ढाई मन होते हुए भी वह हलका जान पड़ता था और बादीपन उसमें बिल्कुल न था। उसकी मांस पेशियां सुदृढ़ व शरीर सुडौल था।

उसके भोजन का हाल सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बहुत काल से और कुछ नहीं खाता, केवल कच्ची तरकारियां, ताजे फल, कुछ मेवा, सिर्फ यही खाकर रहता था। गोभी का फूल, करमकल्ला, गाजर, सलजम, सेव, बादाम, पिश्ता आदि भी खाता था।

वह पेट भरकर एक ही समय यह चीजें खा लेता था, दुबारा नहीं खाता था और दुनियां को उसने स्वाभाविक भोजन का महत्व भली-भांति दिखा दिया था।

एक मित्र ने उसके पास अंगीठी देखकर पूछा था कि आप तो कच्ची चीजें ही खाते हैं पर चूल्हा क्यों रखते हैं, इस पर उसने उत्तर दिया कि यह केवल मेहमानों के लिए ही काम आता है, मेरे लिए नहीं और कोई मिल जाये तो उसे खुशी से दे सकता हूं। उसकी स्त्री और वह स्वयं दोनों ही इसी आहार पर रहकर जीवन भर सुखी रहे।

हमारे समाज में भोजन का कैसा पतन हो रहा है। कोई भी चीज कच्ची, स्वाभाविक खाने में हमें शरम आती है। जो भी कुछ परोसा जाता है, हम खा लेते हैं। मेहमानों को तो जब तक अत्यन्त गरिष्ठ, हानिकारक, पदार्थ पेट भर न खिलाये जाएं, तब तक हमारे रीति-रिवाज व रस्में पूरी नहीं होतीं, अनेक तरह की मिठाइयां, पूरी, पकवान, अचार-मुरब्बे चटनी, पापड़, शोरबे, मैदा की चीजें, बड़े पकौड़ी, कचौरी आदि मुरदा, सारहीन, गरिष्ठ हानिकर व रोग कारक पदार्थ हमारे रिश्तेदार व सम्बन्धियों को खूब पेट भरकर खिलाना हम अपना धर्म समझते हैं।

प्रकृति के उद्देश्यानुसार तो मनुष्य को स्वाभाविक कच्चे पदार्थ ही खाने चाहिए और वे भी दो-तीन बार नहीं केवल एक बार। इतना ही नहीं, वे चीजें भी भूख लगने पर ही खाना चाहिए और फिर तब तक नहीं खावें, जब तक पिछला भोजन भली-भांति न पचे और भूख खूब जोर से न लगे।

यह भी ध्यान रहे कि खाने की चीजों को एकदम निगलना बड़ा ही बुरा है, उन्हें खूब चबा-चबाकर खाना ठीक है। बस ऐसी हालत में आरोग्य स्थाई रह सकता है। पर हममें कितने इन नियमों पर चलते हैं।

हममें से अधिकांश तो केवल स्वाद के लिए अनेक पदार्थ बनवा-कर खाते हैं। हमारे उत्सव, शादी, त्यौहार आदि में स्वादिष्ट भोजन करना और औरों को खिलाने का भारी रिवाज है। साधु-सन्यासियों तक के मृतक भोजों में लड्डू, कचौरी, जलेबी, मालपुए, खीर आदि अत्यन्त गरिष्ठ व हानिकर वस्तुएं खिलाई जाती हैं।

बरातों में मैदा के पेठे, जलेबी, लड्डू, हलुआ, खूब मिर्चों के शाक, चूरमा आदि से बरातियों की खातिर की जाती है। इसीलिए शादी आदि में जाकर आने वाले लोग अक्सर बीमार हो जाते हैं। भला इन चीजों को सदा खाने वाले कब तक जीवित रह सकते हैं?

क्या ही अच्छा हो, अगर हमारे इन शुभ अवसरों पर लोग फल, हरे शाक, मेवा दूध, दही, साधारण रोटी-दाल आदि अपने मेहमानों को खिलाने लग जायें।

ऐसा करने से लोगों का बड़ा ही उपहार हो सकता है, पर फल व हरे शाक आदि वस्तुएं तो ऐसे अवसरों पर बहुत ही कम देखने में आती हैं। केवल स्वाद के लिए बनाई हुई नाना भांति की तैया-रियां मुर्दा खुराक ही खिलाई जाती है। अब होटलों का हाल सुनिये। ऊंचे दरजे के बढ़िया होटल जो बड़े शहरों में होते हैं, उनमें फल, शाक, मेवे आदि काफी मात्रा में दिये जाते हैं, क्योंकि उनके

बिल भी भारी होते हैं। छोटे व घटिया दरजे के होटलों में भोजन अधिक खराब मिलता है, क्योंकि इतना खर्च वे बरदाश्त नहीं कर सकते। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि समाज में कहीं-कहीं बरातियों व मेहमानों को फल, दूध, मेवा आदि स्वाभाविक पदार्थ भी दिये जाने लगे हैं। और अगर यह वस्तु अधिक मात्रा में बराबर दी जावे तो हमारे शादी, विवाह, उत्सव अधिक मात्रा में आनन्दमय हो सकते हैं।

इतना होते हुए भी सर्व साधारण अपने आरोग्य की परवाह कम करते हैं। तक उन्हें दिन में दो-तीन बार भोजन पच जाता है और भूख लगतो रहती है तब तक वे लापरवाही से चाहे जो चीजें अनाप-शनाप खाते रहते हैं, परन्तु उन्हें चिन्ता उस समय होती है जब उन्हें कोई तेज बोमारी आ घेरती है अथवा उनकी अग्नि मन्द होकर शक्ति क्षीण होने लगती है और फिर पुनः आरोग्य प्राप्त करना उनके लिए बड़ा ही कठिन हो जाता है।

यह बड़े ही खेद की बात है कि डाक्टर, वैद्य लोग सदा अपने रोगियों को यही उपदेश देते हैं कि अच्छी पौष्टिक खुराक खाओ और पेट भर खाना चाहिए। यह कोई नहीं कहते कि भूख लगने पर ही खाओ. भूख रखकर खाओ और स्वाभाविक भोजन करो जिससे रोगी होने की नौबत ही न आवे।

परन्तु डाक्टरी विद्या, आयुर्वेद शिक्षा आदि में स्वाभाविक भोजन को कोई महत्व नहीं दिया जाता। ठीक भी है, अगर लोग स्वाभाविक भोजन करने लग जायेंगे, तो सभी डाक्टर-वैद्य, बेकार होकर भूखों मरने लग जायेंग, क्योंकि फिर बीमार तो कोई पड़ेगा नहीं और बीमारों से ही उनके पेट पलते हैं। कितने शोक का विषय है कि मेडिकल कालेजों में और आयुर्वेदिक शिक्षण संघों में और हिकमत के स्कूलों में भोजन के विषय को मुख्य स्थान नहीं दिया जाता; जबकि यह भली-भांति सिद्ध हो चुका है कि खराब भोजन से ही सब नए

और पुराने रोग उत्पन्न होते हैं और केवल भोजन सुधार से सभी रोग अवश्य दूर किए जा सकते हैं। क्या ऐसी हालत में यह पढ़ाई थोथी नहीं है ?

दक्षिण प्रशांत महासागर में कुछ टापू हैं, जहां एक जगह के निवासी केवल नारियल के वृक्षों को ही पालते हैं और नारियल ही खाकर रहते हैं। साल भर के लिए नारियल तोड़कर इकट्ठे कर लिए जाते हैं और वे ही उनके वर्ष भर की एक मात्र स्वाभाविक प्रकृति दत्त ख़ूराक है।

यह प्रकृति के प्यारे स्त्री, पुरुष व बच्चे कभी बीमार ही नहीं होते, क्योंकि यह सिद्ध हो चुका है कि फलाहारी जीव रोग ग्रसित हो ही नहीं सकते और अन्न, दवा आदि प्रकृति-विरुद्ध आग से पकी अन्य वस्तुएं खाने वाले सदा निरोग नहीं रह सकते।

इस टापू के यह फलाहारी जीव न कोई दवा जानते हैं न कभी अस्पताल की तलाश में रहते हैं, क्योंकि इन्हें रोग ही नहीं होता। आश्चर्य तो यह है कि इस टापू में जो बीमार होकर आते हैं, वे भी रोग मुक्त हो जाते हैं, क्योंकि यहां जंगल की शुद्ध हवा, झरनों या नदियों का पानी और खाने को स्वाभाविक नारियल मिलते हैं। अलबता गर्म मौसम में कुछ फल और हरे शाक भी मिल जाते हैं।

यद्यपि नारियल में शरीर के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्व मौजूद नहीं हैं फिर भी शरीर की अधिकांश आवश्यकताएं इससे पूरी हो सकती हैं और इसीलिए इसे खाकर शरीर निरोग रह सकता है।

नारियल में चर्बी अधिक होती है, परन्तु यह चर्बी स्वाभाविक है और वनस्पतिजन्य है, इसीलिए शरीर को हानि नहीं पहुंच सकती और इससे दूसरे पदार्थों की भांति पथरी आदि नहीं हो सकती। प्रकृति विरुद्ध पदार्थ मांस, मिठाई, नमकीन चीजें, घी, तेल आदि से पथरी आदि रोग हो सकते हैं—नारियल से नहीं।

केवल नारियल खाकर जब लोग नीरोग रह सकते है और रोगी मनुष्य अपने रोग दूर कर सकते हैं तो सोचिए ! अनेक प्रकार के मेवे, फल, हरे शाक खाकर मनुष्य कितने अधिक नीरोग, दीर्घजीवी तथा सुन्दर बन जायेंगे ?

स्वाद की दृष्टि से भी मेवा, हरे शाक व ताजा फल सबसे अधिक स्वादिष्ट वस्तुए हैं। सेव, संतरा, अनार, अंगूर, नाशपाती, अमरूद, आम, लीची सरदा, अंजीर आदि अमृत तुल्य अत्यन्त स्वादिष्ट वस्तुओं के खाने में जो आनन्द प्राप्त होता है, वह किसी भी बढ़िया से बढ़िया मिठाई या नमकीन चीज या तैयारी में नहीं हो सकता और चाहे कैसी ही सुन्दर दूसरी वस्तुएं दिखाई दें, पर इनके जैसी लज्जत उनमें हरगिज नहीं आ सकती। गुण तो इनके मुकाबले में और चीजों में कुछ भी नहीं आ सकती। हमने देखा है कि बढ़िया मिठाइयां बाजारो में काफी मंहगी बिकती हैं और लोग उन्हें बड़े चाव से खाते हैं, पर अन्त में उन्हें खाकर लोग पछताते ही हैं, क्योंकि वे आगे जाकर अनेक रोगों का कारण बन जाती हैं।

हम लोग मीठे की जगह शुद्ध शहद, गन्ने का रस प्रयोग में लेते हैं जो अत्यन्त गुणकारी सिद्ध हुए हैं। गुड़ एक अच्छी मीठी चीज है, पर गन्ने के रस और शहद से बहुत नीचे दर्जे की चीज है, क्योंकि आग से पका लिया गया है। सफेद चीनी, बूरा, बताशे व मिश्री की तो यह हालत है कि यह काफी साफ हुई चीजें हो जाती हैं। आग से इनके गुण नष्ट हो चुकते हैं, केवल मिठास ही मिठास बाकी रहती है और ये चीजें अत्यन्त हानिकर, रोग कारक होती हैं। इनसे शरीर का भारी क्षय होता है और ये जल्दी ही बुढ़ापा लाने वाली वस्तुएं हैं।

इसी प्रकार मैदा सफेद आटे का हाल है। बारीक व चक्की में पिसने तथा बारीक छनने व गर्मी पहुंचने से इसके गुण नष्ट होकर केवल सारहीन पदार्थ, रोग कारक निर्जीव वस्तु रह जाती है

और असली पोषक तथा गुणकारी चोकर को बाहर ही निकाल कर रख लिया जाता है, जो शायद हम लोग अपने जानवरों को खिलाते हैं।

इसलिए हमारी राय में सफेद चीनी और मैदा—ये दोनों ही बिल्कुल मुर्दा अत्यन्त हानिकर, सर्वथा सारहीन गुण रहित व घातक पदार्थ हैं और इन्हें विष तुल्य समझ कर इनसे परहेज करना चाहिए। यदि आप मेरे कथन को सत्य न समझें तो आंखें खोलकर देख लीजिये ! जिन घरों में बारीक आटा, सफेद चीनी, तेज मसाले अधिक खाये जाते हैं, वहां रात-दिन बीमारी, पीड़ाएं, शोक और दु:ख यही देखने में आते हैं।

इतना सब कुछ होते हुए भी हमारे डाक्टर, वैद्य, हकीम इन चीजों के विरुद्ध कोई आवाज नहीं उठाते। हमारे पंच लोग प्रसन्नता से इन चीजों को बनाने की आज्ञा देते हैं और सरकार इन चीजों के उत्पादन व खपत में कोई रोक नहीं लगाती।

क्या लोग इन दो घातक वस्तुओं के प्रचार को रोकने की चेष्टा करेंगे ?

मेवेजात, फल, हरे शाक, कच्चा दूध आदि स्वाभाविक उत्तम व जिंदा खुराक का हम जिक्र कर चुके। अब मुर्दा खूराक का हाल सुनिये। किसी तरह निस्सार व प्राणहीन बनाई खूराक के दो भेद होते हैं; एक वे, जो केवल आग से ही पकाये गये हैं। दूसरे वे, जिनको अनेक प्रकार से सुखा कर, पीस कर, उबाल कर अन्य चीजें मिलाकर तैयार किया गया है। केवल आग से पकी चीजें बिना हानि पहुंचाये खाई जा सकती हैं—अगर उन्हें अधिक जलाया न गया हो और मीठा या तेज मसाले न मिलाये गए हों, परन्तु अनेक प्रकार से तैयार की हुई चीजें मैदा सफेद चीनी की चीजें, अचार, मुरब्बे, शरबत, बिस्कुट, दवाइयां आदि को जहर समझकर, इनके लिए उनका व्यवहार

आपको बन्द कर देना चाहिए—अगर तन्दुरुस्ती का दिवाला निकालनें की इच्छा न हो।

अगर हम लोग अपने भोजन से सफेद चीनी की चीजें मिठाइयां आदि निकाल दें तो टांसिल आदि अनेक रोग दूर हो जाएंगे और अगर लोग मैदा, सफेद चीनी, तेज मसाले आदि घातक वस्तु खाना छोड़ दें और केवल सादा भोजन, चोकरदार गेहुं की रोटी, हरे शाक, दूध-फल ही खाना आरम्भ कर दें तो दुनिया से तीन बटे चार बीमारियां अवश्य दूर हो जायें।

दुनियां से कांटा-फासी, चीरा-फाड़ी, इंजेक्शन, दवाइयां अदृश्य हो जाएं, अगर लोग अपनें भोजन को सादा और प्रकृति के अनुकूल बना लें और बहुत-से घरों में होने वाले हृदय विदारक विलाप, लम्बी आहें, रोगियों की पीड़ाएं अवश्य ही कम हो जायें। अगर लोग स्वाद के लिए न खाकर आरोग्य के लिए खाने लगें और दवाखाने बन्द कर दिए जावें।

केवल प्रकृति के मार्ग पर चलने पर ही हमारे रोग, शोक, दुःख, पीडाएं कम हो सकेंगे। डाक्टर, वैद्य, दवाखानें, अस्पताल आदि हमारे इन दुःखों से हमें कभी नहीं छुड़ा सकते जैसा कि लोगों में भ्रम फैल रहा है।

पाचन क्रिया और पाचक अंग

हमारे पाचक अङ्ग अदृश्य होते हुए भी बड़े ही रहस्यमय और एक मशीन की भांति पेचीले और एक दूसरे-से मिले हुए हैं और उनमें होने वाली क्रियाएं बड़ी ही महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि एंजिन, मोटर व हवाई जहाज आदि के एंजिन में अनेक प्रकार की जटिल व पेचीदा मशीनें लगी हुई होती हैं, अनेक आश्चर्यजनक कार्य उनमें होते रहते हैं, परन्तु हमारी शरीर रूपी मशीन के पाचक अंगों या कल-पुर्जों के सामने ये सब मशीनें एक छोटे खिलौना मात्र हैं।

मशीन की तरह हमारे पाचक अंगों में भी सभी क्रियाएं होती रहती हैं। हम भोजन को मुंह में डालते हैं, फिर उसे चबाते हैं और लार मिलाकर पाचन क्रिया का आरम्भ कर देते हैं और फिर वह भोजन पेट व आंतों में होता हुआ गुदा द्वार से बाहर निकल जाता है।

भोजन जब मुंह में डाला जाता है, तब से लगाकर मलमूत्र होकर निकलते समय तक इसमें अनेक क्रिकाएं और परिर्वतन होते रहते हैं और इसका सार भाग शरीर ग्रहण कर लेता है और जो भाग व्यर्थ समझा जाता है, बाहर फेंक दिया जाता है।

यह बात याद रखनी चाहिए कि पाचक अंगों में हर एक अपना-अपना काम अलग-अलग स्वतन्त्रता पूर्वक करता है और कोई दूसरा अंग दूसरे का काम पूरा नहीं कर सकता। भोजन का जो सारा भाग रस बनता है, वही शरीर का एक भाग होकर रक्त में मिल जाता है और उसी सार भाग से हमारा मस्तिष्क, मांस पेशी, नसें, गिल्टियां, मल निवारक अंग, चर्बी आदि बनते हैं और उसमें का फालतू हिस्सा बाहर फेंक दिया जाता है।

अलग-अलग प्रकार के पदार्थों का पाचन होने में अलग-अलग क्रियाएं होती रहती हैं। श्वेत सार और मीठा मिले पदार्थों का पाचन क्रम प्रोटीन या चर्बी वाले पदार्थों के पाचन क्रम से भिन्न होता है।

ठोस भोजन, रोटी, अन्य अन्न, आलू आदि पदार्थों को मुंह में दांतों से खूब बारीक चबा-चबाकर लार सरीखा बनाना चाहिए। क्योंकि चबाए जाने और लार में भली-भांति मिलने पर ही वह इस योग्य बन सकेगा कि पेट व आंतों में जाकर भली-भांति पच सके और उसका रस बन सके अन्यथा कम या बिल्कुल न चबाने से वह ज्यों-का-त्यों पेट में पड़कर सड़ने लगेगा और उसका रस नहीं बन सकेगा तथा दांतों का काम आंतों पर पड़ जाएगा और उनकी शक्ति व्यर्थ ही नष्ट होगी।

श्वेत सार युक्त और चीनी मिले पदार्थों को पचाने के लिए प्राकृतिक खट्टे पदार्थों की आवश्यकता है अन्यथा वे आंतों में सड़न उत्पन्न कर देंगे।

कई प्रकार के पदार्थ एक समय खाना ठीक नहीं है, क्योंकि वे भली-भांति नहीं पच सकते और इसलिए सड़न उत्पन्न होकर अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। कितने शोक का विषय है कि अव्वल तो लोग प्रकृति विरुद्ध आहार करते हैं और उसे भी झट से बिना चबाये निगल जाते हैं। जरा भी चबाने का कष्ट नहीं करते, फिर जब बीमार होते हैं तो भाग्य को दोष देने लगते हैं।

कई लोग कहते हैं कि हमें पाखाना एक बार खुलकर होता है, कब्ज नहीं है। ऐसे मनुष्य बीमार जल्दी होते हैं, क्योंकि प्रकृति का यह नियम है कि जितनी बार भोजन किया जाए उतनी ही बार शौच होना चाहिए। यदि लोग थोड़ा-सा कष्ट स्वाभाविक आहार के महत्व को समझने में करें और ध्यान दें कि स्वाभाविक आहार ही भली-भांति पच सकता है तो फिर रोग रूपी शत्रु का आक्रमण उन पर नहीं हो सकता, अन्यथा चाहे वे कितनी ही दवा खाते रहें, इंजेक्शन लें, सर्दी से बचें फिर भी प्रकृति द्वारा उन्हें अवश्य रोग रूपी दंड मिलेगा। इससे वे बच नहीं सकते।

नशा शराब का ही नहीं होता, अन्न का भी नशा बड़ा जबरदस्त होता है। अगर आप पेट भरकर सफेद चीनी रोटी आदि खा लेंगे तो आपको भारी नशा-सा होगा, खूब नींद लेनी पड़ेगी और आपके मेदे और आंतों को बड़ा जोर उसके पचाने में आएगा।

वास्तव में आजकल रोटी और सफेद चीनी आदि खाने का रिवाज इतना बढ़ गया है कि हर समय थाली में यही चीजें अधिक परोसी जाती हैं और इन्हें हम पूरी तरह से बिना चबाये ही चटपटे, पतले शाक तरकारियों या आचार-मुरब्बे के साथ पेट भर खाते रहते हैं।

इस प्रकार हम अपने पाचक अंगों के साथ अन्याय कर रहे हैं और रोगों व अकाल मृत्यु को अपने पास बुला रहे हैं।

याद रखिए कि सभी रोग मल-पदार्थों के कारण होते हैं, जिसके लिए हमारी प्रचलित खुराक दाल-रोटा, मिठाई, नमक आदि ही हैं। और यदि हम अपने आहार में से इन्हें कम करके फल हरे शाक, मेवा, कंद, दूध, हरा कच्चे अन्न को स्थान देने लगें तो आरोग्य की कुंजी हमारे हाथ में आ जायगी।

प्रकृति के नियम भंग करने से रोग उत्पन्न अवश्य होंगे। इस नियम को न आपके पूजा-पाठ मिटा सकते हैं, न आपके दवा-दारू या चीर-फाड़ के इलाज ही इन्हें काम कर सकते हैं, न झाड़ा-फूंकी का जादू इन पर चल सकता है और न दान-पुण्य आदि रिश्वत से रोग हट सकते हैं।

इसलिए पाचक अंगों के कार्यों व उनकी योग्यता व रचना पर ध्यान देना चाहिए और यह देखना चाहिए कि हम उन पर अनावश्यक भार न लादें और जो काम वे नहीं कर सकते उसके लिए उन्हें मजबूर न करें। उनका स्वाभाविक कार्य ही उनसे लें, तभी वे ठीक काम करते रहेंगे और हमारी शरीर रूपी मशीन दीर्घकाल तक नई व काम करने योग्य रह सकेगी अन्यथा अगर हम इस मशीन को उसके योग्य खुराक नहीं देंगे, अधिक काम लेंगे और उसकी सफाई की ओर ध्यान नहीं देंगे तो यह मशीन बिगड़ जाएगी अथवा सदा के लिए बेकार हो जाएगी, पर यह तभी हो सकता है जब हम थोड़े विवेक से काम लें और नियमों को जान लें। हमारी ग्रन्थ माला इसी ज्ञान का प्रचार कर रही है।

संयोग विरुद्ध और प्रकृति विरुद्ध आहार

सदियों से दाल, रोटी, शाक आदि को हम एक साथ एक समय खाते आए हैं और इसे उचित व सात्विक भोजन मान रहे हैं,

पर यही खुराक हमारे सब रोगों का मूल कारण है—इसमें सन्देह नहीं है। अन्न को ही खुराक समझना भयंकर भूल है। खासकर आग से सिकी बारीक आटे की रोटी और फिर उसमें नमक, मीठा, घी मिलाने से तो वह अत्यन्त गरिष्ठ, हानिकार तथा अनेक व्याधियों का कारण बन जाती है।

मांस, अण्डे, शोरबा, मछली, शराब, दवाइयां आदि को शरीर के लिए हितकर समझना एक महा भयानक भूल है, क्योंकि यह सभी पदार्थ शरीर में टाक्सिन्स अर्थात् जहरीला माद्दा पैदा करते हैं जिसके इकट्ठे होने पर मृत्यु कभी भी शरीर पर आक्रमण कर सकती है। खासकर रोटी अथवा चीनी या रोटी और मांस एक साथ खाने से तो पेट में भयानक विष उत्पन्न होकर अनेक व्याधि उत्पन्न होती हैं।

अगर हम बिना सोचे-समझे संयोग विरुद्ध पदार्थ खाते रहेंगे, मीठा और नमक, दूध और दही, रोटी और चीनी, मांस और रोटी, घी और मैदा की चीजें आदि एक साथ खाते रहेंगे तो क्या होगा ? वे पेट में पूरी तरह न पचकर सड़ने लगेंगी और भारी मात्रा में विजातीय द्रव्य बनने लगेगा और हमारी जठराग्नि का नाश होकर मधुमेह, मंदाग्नि आदि रोग आ घेरेंगे।

यदि हम पाचन क्रिया, स्वाभाविक आहार, भोज्य-पदार्थों के संयोग, मल-पदार्थों का बनना आदि क्रियाओं को समझ लें तो मृत्यु को हम अपने से बहुत दूर रख सकते हैं और रोगों के लिए तो सदा के लिए मार्ग ही बन्द कर सकेंगे।

एसिड पदार्थों का, जहरीले माद्दे का बनना रोज-रोज जन्म से मृत्यु तक जारी ही रहता है। अगर हम आवश्यकता से अधिक और प्रकृति विरुद्ध, संयोग पदार्थ खाते रहें। जब हमारे शरीर में यह जहर (मल-पदार्थ) इतने अधिक भर जाते हैं कि हमारा शरीर उनके निकलने में असमर्थ हो जाता है तब हमारी मृत्यु हो जाती है।

हम इस मृत्यु को स्वाभाविक या हरि इच्छा समझते हैं। खेद!

यह तो प्रत्यक्ष आत्महत्या या खुदकशी है, क्योंकि यह मृत्यु अपने हाथों लाई हुई है। जान-बूझकर प्रकृति विरुद्ध भोजन अर्थात् हानिकर जहर उत्पन्न करने वाले पदार्थ खाने के कारण ही यह मौत हुई है।

किसी विद्वान ने सच कहा है कि प्रकृति विरुद्ध आहार के कारण लोग धीरे-धीरे स्वयं ही कब्र या श्मशान के पास जा रहे हैं। इसके लिए वे ही स्वयं दोषी और जिम्मेदार हैं और कोई नहीं। हम लोग शरीर में आवश्यकता से बहुत ही अधिक मात्रा में प्रोटीन (चिकनाई) घी, तेल आदि के द्वारा पहुंचाते हैं, जिससे हमारी पाचन शक्ति पर भारी दबाव पड़ता है और शरीर में जरूरी चिकनाई फैलने से शरीर उल्टा निकम्मा और सुस्त हो जाता है।

इसके सिवाय हम स्वाभाविक गेहूं आदि को खूब बारीक पीसकर छानकर, सेंककर अनेक पदार्थ मिलाकर खाते हैं और अनेक प्रकार से तैयार सफेद चीनी-बूरा भी खाते रहते हैं। इसके खाने से हमारे शरीर में भारी सड़न होती है और मल-पदार्थ बहुत अधिक मात्रा में बनते रहते हैं,क्योंकि इन वस्तुओं के सभी गुण नष्ट कर दिये गए हैं।

हम लोग एक साथ एक समय ऐसी वस्तुएं खाते हैं जो संयोग विरुद्ध होती हैं और जिनके एक साथ पेट में जाने से पाचन ठीक न होकर रोग उत्पन्न होते हैं। चौथे इन सब पदार्थों के सेवन करते रहने से जीवन शक्ति मंद हो जाती है और पाचक अंग कमजोर होकर आंतें अपना काम छोड़ देती हैं और कब्ज हो जाता है जिससे रोग भारी संख्या में उत्पन्न होकर सारे शरीर का नाश करता रहता है।

इसलिए हम यही परिणाम निकालते हैं कि खराब भोजन ही सब रोगों का कारण है। अगर हम संयोग विरुद्ध पदार्थ एक साथ न खाकर अलग-अलग समय उन्हें खावें तो हमारी बहुत-सी व्याधियां स्वयं दूर हो सकती हैं, परन्तु यह नियम प्रकृति विरुद्ध आहार के लिए ही है। स्वाभाविक पदार्थ फल, मेवा, हरे शाक कच्चा अन्न आदि चाहे जब, चाहे, जिस तरह अलग-अलग या एक साथ खाए जा सकते हैं, हानि

न होगी। हमारे चिकित्सालय में अनेक ऐसे रोगी आ चुके हैं जो पहले मांस, रोटी बिस्कुट, चीनी आदि अनेक पदार्थ काफी मात्रा में खाया करते थे। हमने उनके भोजन में परिवर्तन कर दिया और एक वस्तु एकबार खिलाने लगे और उनके रोग शीघ्र दूर हो गये। बहुत-से तो वद-गोश्त, पेट के फोड़े आदि के रोगी इसी क्रम से ठीक होकर घर चले गये पर इससे यह कभी न समझना चाहिए कि यह वस्तुएं खाना नहीं चाहिए; बल्कि इन्हें खाना ही पड़े तो ताजा फल, हरे शाक अवश्य ही खाना चाहिए।

इसलिए हम फिर कहेंगे कि रोगों के इलाज के लिए दवाइयां खाना निरर्थक चेष्टा है। अगर हम सुधार चाहते हैं तो हमें अपने भोजन को अधिक सादा व स्वाभाविक बनाना चाहिए। हम अपने रोग, आपत्तियां, अकाल मृत्यु अपनी थाली में ही पैदा कर लेते हैं इससे अधिक कुछ भी नहीं है।

रोग और अकाल मृत्यु कभी अचानक बिजली की तरह नहीं आ सकते जैसा कि लोगों में भ्रम फैला हुआ है; बल्कि यह हमारे दीर्घ-कालीन बदपरहेजी के कारण आते हैं और वे ही शरीर इनके शिकार हो सकते हैं जिनमें विजातीय द्रव्य काफी मात्रा में मौजूद रहता है और यह हालत हमारे अज्ञान से प्रकृति विरुद्ध खान-पान से हुई है। आश्चर्य तो तब होता है जब लोग शरीर के हर एक रोग निवारण के प्रयत्न को दवाइयों से दबाकर मल-पदार्थ बाहर निकलने का अव-सर नहीं देते। बराबर यही कहना होगा कि अगर लोग प्रकृति की शरण में आवें, भोजन को उसी हालत में खाने लगें जिसमें प्रकृति ने उत्पन्न किया है तो फिर संयोग और मेल वाले पदार्थों की छान-बीन की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

इसके लिए अंतःकरण ही सच्चा मार्ग-दर्शन हो सकता है और कोई नहीं। अतःकरण की आज्ञानुसार स्वाभाविक भोजन करके सभी पशु-पक्षी निरोग रहते हैं, परतु हम तो डाक्टर-वैद्यों के इशारे पर

उनसे पूछ-पूछकर खाना पसंद करते हैं। हर एक मनुष्य को चाहिए कि वह बहुत-सी चीजें एक समय न खाए; बल्कि रुचि अनुसार दो चीजें (स्वाभाविक अवस्था में) एक साथ खायें, पर ऐसी चीजें एक साथ कभी न खायें जो साथ हजम नहीं हो सकती, अर्थात् अनाज और मीठी चीजें, नमकीन व मीठी चीजें, मांस और मसाले आदि एक साथ कभी न खाना चाहिए, रोटी और घी आदि भी एक समय पेट भर न खाई जावें। अगर लोग एक समय एक चीज खाकर संतुष्ट रहने लग जायें अथवा स्वाभाविक आहार, फल, मेवा हरे शाक खाने लग जाएं तो फिर चीर-फाड़ या दवाइयां, डाक्टर-वैद्य, हकीम या नर्स बिल्कुल बेरोजगार हो जायेंगे।

वस्त्रों का स्वास्थ्य पर भयंकर प्रभाव

वस्त्र

ईश्वर ने मनुष्य को अन्य सभी प्राणियों की भांति नग्न उत्पन्न किया है और इसीलिए मनुष्य को प्रकृति की इच्छानुसार नग्न ही रहना चाहिए। उनकी शरीर रचना ऐसी ही है। बहुत-से लोगों का ख्याल है कि अगर कपड़े न हों तो मानव-जाति मर जाएगी, परंतु यह उनकी बड़ी भारी भूल है क्योंकि कपड़े व उनके बनाने के लिए औजार मशीन आदि तो मानव सृष्टि की उत्पत्ति के बहुत समय बाद बने हैं, यदि ऐसा ही होता तो वस्त्र बनने से पहले समस्त मनुष्य स्त्री-पुरुष बच्चे मर चुके होते, इसलिए वास्तव में पूछा जाय तो मानव-जाति को हरगिज किसी भी प्रकार के कपड़े पहनना ही न चाहिए, सदा ही खुले बदन रहना उचित है।

एक क्षण के लिए भी जब हम अपने नग्न शरीर को वस्त्रों से ढकते हैं तो हम प्रकृति विरुद्ध आचरण करते हैं और स्वास्थ्य को नष्ट करते हैं। वास्तव में हमें बिल्कुल ही मालूम नहीं है कि पहले के लोग कैसें निरोग, बलवान, दीर्घ आयु वाले बुद्धिमान सुखी होते थे इसलिए हम नहीं समझते कि कपड़े पहनने व शरीर को रोशनी और हवा से दूर रखने से मानव-स्वास्थ्य पर कैसा घातक प्रभाव पड़ता है।

प्राचीन ऋषि-महर्षि लगभग वस्त्र रहित रहते थे, केवल लज्जा मात्र ढकने को लंगोट रखते थे इसीलिए कैसे दीर्घजीवी नीरोग व बलवान् होते थे। भगवान् होते थे। भगवान् रामचंद्र भी बन में नाम-मात्र बिल्कुल थोड़े वस्त्रों से गुजारा करते थे। अठारह पुराण व वेदों के लिखने वाले वेद व्यास लगभग नग्न रहते थे। समुद्र के समस्त जल को पी जाने वाले अगस्त्य ऋषि क्या कपड़े पहनते थे ? देवाधिदेव सृष्टि के स्वामी शंकर सदा ही दिगम्बर, बिना वस्त्रों के रहते हैं। जैन

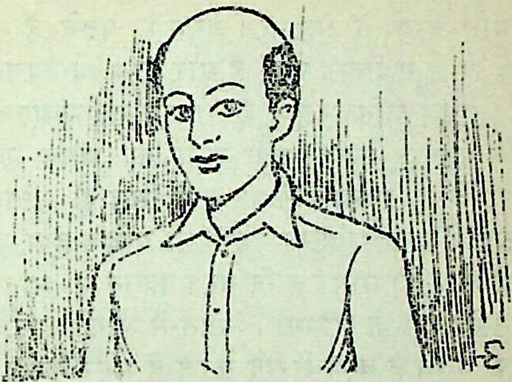
धर्म के निर्माता सदा ही नग्न रहते थे। आज भी समाचार पत्रों में ऐसे साधुओं की चर्चा सुनी जाती है जो हिमालय पर्वत के शिखरों पर बर्फ में रहकर तप करते हैं और कोई वस्त्र नहीं पहनते। क्या ये बातें साफ तौर पर जाहिर नहीं करतीं कि मनुष्य निःसंदेह कपड़ों के बिना भी जीवित रह सकता है?

भारतवर्ष व अन्य देशों में आज भी अनेक ऐसी जंगली जातियां हैं जो सदा ही नंगी रहती हैं। कभी किसी भी मौसम में जाड़े, गरमी बरसात में कपड़े नहीं पहनतीं। भील लोग व अन्य जंगली लोग केवल लज्जामात्र शरीर ढकते हैं वह भी वृक्षों की छाल से और फिर भी कैसे दृढ़ बलवान व निरोग होते हैं।

मेरे ख्याल से मुझे यहां यह दलील करने की जरूरत नहीं है कि किन-किन कारणों से आज सभी मनुष्य के लिए एक दम वस्त्रों का त्याग करके नग्न हो जाना असंभव-सा है। हजारों-लाखों वर्षों की आदतें व रिवाज एक दम कैसे बदले जा सकते हैं।

परंतु यह बात बड़े ही महत्त्व की है कि हम ऐसे कपड़े पहनें और इस रीति से बनवायें कि जहां तक हो सके अधिक हवा व रोशनी शरीर पर पहुंचती रहे और खाल में होकर जो दूषित पदार्थ शरीर से बाहर निकलते रहते हैं और स्वच्छ वायु छिद्रों द्वारा शरीर में प्रवेश करती है, इस क्रिया में बाधा न पड़े। अर्थात् हमारे वस्त्र ढीले और छेददार शुद्ध हाथ की कती हुई खादी के होने चाहिए जो कि सर्दी में गर्म और गर्मी में ठंडे, ऋतु अनुसार रहते हैं। ध्यान यह रहना चाहिए कि ऐसे कपड़े न खरीदे जावें जिनसे प्रकृति के उद्देश्यों को हानि हो या शरीर पर बुरा असर पड़े। हमारी पोशाक न केवल जालीदार व पतली हो; बल्कि ढीली भी होनी चाहिए। ऐसी पोशाक हरगिज न पहनी जावे जो चुस्त हो जैसे चूड़ीदार पाजामा या बिर-जिस, तंग बनियान, कब्जे आदि शरीर को अपार हानि पहुंचाते हैं फिर भी आज हमें ऐसी बुरे ढंग की या लज्जा दूर करने वाली वाहि-

यात पोशाक पहनने की जरूरत नहीं है जिससे हमारी हंसी हो या निंदा होने लगे, परंतु साथ ही झूठे फैशन या रूढ़ियों के गुलाम भी न



बन जाना चाहिए और न बहुत अधिक मूल्य वाले वस्त्रों में ही धन को नष्ट करना चाहिए। अपनी परिस्थिति अनुसार प्रकृति के उद्देश्यों के अनुकूल स्वदेशी वस्त्रों का उपयोग करना चाहिए। बहुत-से लोग कहते हैं कि बारीक कपड़े पहनने वाले नाजुक हो जाते हैं, यह बड़ी भूल है। मोटे कपड़े पहनने से कोई बलवान नहीं बन सकता। बात दरअसल यह है कि कुछ लोग मोटे व भारी वस्त्र बरदाश्त कर सकते हैं कुछ नहीं कर सकते। ये बातें अपनी-अपनी इच्छा व आदत पर निर्भर हैं। आजकल अनेक प्रकार के कपड़े चल रहे हैं, जिसमें बहुत-सी त्रुटियां हैं। उनके बनियान या कमीज व रुई की जाकेट, बंडी आदि मेरी राय में बड़े ही हानिकारक होते है, क्योंकि ठीक खाल पर रुई व ऊन का बहुत ही बुरा असर पड़ता है और खाल नाजुक व कमजोर हो जाती है। कोई भी मनुष्य फोड़े-फुन्सी को या घाव को रुई या ऊन से ढकना पसन्द नहीं करेगा, क्योंकि ऐसा करने से घाव वा फोड़ा सड़ जाएगा। इसलिये बीमार या चोट लगी हुई खाल के लिए जो बात लाभदायक नहीं है वह स्वस्थ नीरोग चमड़े के लिए कैसे हितकर हो सकती है।

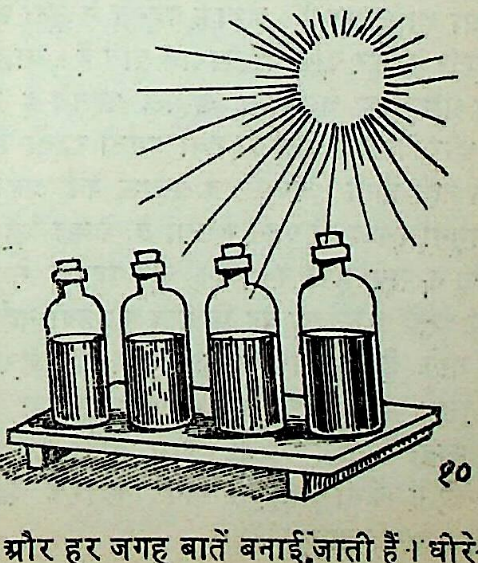
रुई के अधो वस्त्र बंडी आदि से शरीर का मैल त्वचा से ठीक तौर पर बाहर नहीं निकलता और रुधिर के संचार में भारी बाधा पहुंचती है, जिससे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। यही हाल ऊन के व अन्य भारी मोटे वस्त्रों से होता है। जो कपड़े पतले हैं मगर चुस्त व तंग होते हैं वे खाल से चिपटे रहते हैं और वायु को त्वचा तक नहीं पहुंचने देते, इसलिए हानिकर होते हैं। हरएक मनुष्य अपनी परिस्थिति (हैसियत) के अनुसार ऊपर लिखी बातों का ध्यान रखकर वस्त्र बनवा सकता है। इच्छा होने पर मार्ग मिल ही जाता है। कपड़ा जितना जालोदार छनछना होगा उतनी ही अधिक हवा उसमें होकर आ-जा सकेगी और जो अपार हानि वस्त्र पहनने से मानव-शरीर को होती है वह बहुत कम हो जायगी। बहुत-से लोग यह उज्र करेंगे कि अमीर लोग तो मनचाहे वस्त्र खरीद सकते हैं मगर गरीब लोग इतना पैसा कहां से लायेंगे। इसका जवाब यह है कि अव्वल तो गरीबों को चाहिए कि जहां तक हो सके कपड़े बहुत ही कम पहनें। इसके अलावा वे सस्ते व हल्के कपड़े खरीद सकते हैं ताकि उन्हें असुविधा न हो।

सबसे अधिक आजकल लोग अपने पांव के साथ बड़ा अन्याय करते हैं। ध्यान पूर्वक देखने से पता लगेगा कि शरीर के सब हिस्सों से अधिक पैर मल-पदार्थों को बाहर फेंकते हैं जैसा कि पांव के तलुओं को सूंघने से पता चलता है इसलिये पैरों को जहां तक हो सके नंगे (बिना ढके) रखना चाहिए। मगर दुर्भाग्य से आज बात बिल्कुल उल्टी है। आजकल इतने चुस्त जूते पहने जाते हैं कि पांव भिच जाते हैं और अन्दर ही अन्दर पसीज जाते हैं जिससे स्वास्थ्य पर बड़ा ही भयंकर प्रभाव पड़ता है। इतना ही नहीं; बल्कि सख्त तंग जूतों की मदद के लिए सूती, ऊनी व रेशमी मोजे भी पहने जाते हैं, ताकि पांव बिल्कुल हलवा बन जायें। अफसोस! हम लोग कैसे अंधेरे में हैं। पैसे भी खर्च करते हैं और स्वास्थ्य भी खोते हैं, पर ये झूठे रिवाज नहीं छोड़ सकते।

चमड़े के जूते कभी तंग नहीं बनवाने चाहिए। कपड़े के कैनवस के

जूते चमड़े के जूतों से बहुत अधिक आरोग्यदायक होते हैं । पांव इन में तकलीफ नहीं पाते । आजकल कैनवस के जूते सब जगह बहुतायत से मिलते हैं । भारी चमड़ा और रबर ये दोनों ही खाल के लिए बड़े हानिकर सिद्ध हुए हैं । इसलिए चमड़े के जूते व चमड़े के हाथ के मोजे रबर के जूते आदि हरगिज न पहने जावें । ऊन के मोजे आदि से पतले हलके सूती मोजे कम हानिकर होते हैं । हाथों में तो दस्ताने वगैरह पहनना ही न चाहिए और अगर पहने भी जायं तो सूत के बने हुए पहने जावें। भारत में तो दस्ताने पहनने को ऐसी जरूरत भी नहीं केवल अधिक ठंडी जगह पर पहने जाते हैं ।

जहां तक हो सके हमें नंगे पांव चलना चाहिए । यह बात असंभव सी है कि सभी आदमी एकदम जूते पहनना छोड़ दें, क्योंकि लोक में



१०

निन्दा होती है और हर जगह बातें बनाई जाती हैं । धीरे-धीरे ही नंगे पांव चलने का रिवाज व आदत डाली जा सकती है, लेकिन इस विषय में कायर नहीं बनना चाहिए, बल्कि साहसपूर्वक कदम बढ़ाना चाहिए, क्योंकि नंगे पांव चलने की प्रथा को समाज में जारी करना बड़ा ही

पुण्य कार्य है। इस कार्य के लिए त्याग की आवश्यकता है और हमें शीघ्र अनुयायी मिल जायंगे। यदि बाजारों में सड़कों पर हम नंगे पांव नहीं चल सकें तो कम-से-कम घरों में, जंगल में तो अवश्य चल सकते हैं। पर एक मनुष्य अपने घर में काठ की खड़ाऊं पहन सकता हैं और इस प्रकार उसे काफी आराम मिल सकता है। प्राचीन ऋषि-महर्षि अधिकांश नंगे पांव रहते थे या खड़ाऊं पहनते थे। भगवान् रामचन्द्र लक्ष्मण, सीता ने चौदह वर्ष बनवास में बिना जूते पहने नंगे पांव रहकर बिताये थे। प्राचीन विद्यार्थियों को अपनी आयु का चौथाई भाग बिना जूते पहने बिताना पड़ता था वर्णाश्रम धर्म के नियम ही प्रकृति के अनुकूल बनाये गए थे। परन्तु नंगे पांव चलना तो दूर रहा आजकल स्कूल व कालिज के शिक्षित क्षात्र भोजन करते समय, सोते समय या बैठतें समय भी जूते व बूंट उतारना पसन्द नहीं करते यह समय व शिक्षा का प्रभाव है। खड़ाऊं पहनने से बूटों की अपेक्षा बहुत कम हानि होती है और पांव भी आराम पाते हैं। आज भी दक्षिण में मराठा लोग अधिकाँश चप्पल व खड़ाऊं पहनते हैं जो बड़े आराम की चीज है और जिनसे पांव को हवा लगती रहती है और स्वास्थ्य को भी हानि नहीं होती। चप्पल व खड़ाऊं कई प्रकार की होती हैं जिसे जैसा नमूना पसन्द हो पहन सकता है केवल यह ध्यान रहे कि पांव तकलीफ न पावें हवा न रुके। जूते पहनने से शरीर को दो बड़ी हानियां होती हैं अव्वल यह कि पांव को हवा नहीं लगती। पांव कमजोर हो जाते हैं मल-पदार्थ ठीक तौर पर शरीर बाहर नहीं निकालते। दूसरे यह कि नंगी धरती पर पांव नहीं टिकते इसलिए शरीर को पृथ्वी के स्पर्श से जो लाभ होना चाहिए वह भी नहीं होता। (पृथ्वी में कैसी अद्भुत रोग निवारक शक्ति है इस पर अलहदा पुस्तक लिखी जायगी)

आजकल पाजामे, बिरजिस वगैरह पहनने का भी बहुत रिवाज हो गया है। पहले के लोग पाजामे को अच्छा नहीं समझते थे। हिन्दू शास्त्रों में तो पाजामा पहनने का बड़ा दोष लिखा है। पाजामे

से धोती बहुत अच्छा वस्त्र है बशर्ते कि अधिक कसकर न बांधी जावे। कई लोग बहुत कसकर धोती बांधते हैं यहां तक कि कमर में दाग हो जाते हैं। यह उनकी भारी भूल है, क्योंकि अधिक कसकर धोती बांधने से चमड़ा तो बिगड़ता ही है बेचारी आंतें भी सिकुड़कर कमजोर हो जाती है। बहुत से लोग पाजामा या धोती के नीचे लंगोट भी कसकर पहनते हैं ख्याल यह किया जाता है कि इन्द्रियां वश में रहेंगी पर खेद है कि परिणाम उल्टा होता है।

इसी प्रकार स्त्रियां भारी-भारी लहंगे पहनना पसंद करती हैं। छोटी-छोटी बच्चियों को भी घाघरा पहना दिया जाता है। कई जातियों में नीचे लहंगे और ऊपर धोती पहनती हैं। यद्यपि भारी लहंगे आदि का रिवाज हटाना कठिन है पर इतना कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि इन भारी वस्त्रों से अनेक प्रकार के स्त्री रोग उत्पन्न होते हैं। प्रदर आदि, गर्भस्राव, प्रसव पीड़ा, हिस्टीरिया आदि कभी न हों अगर हमारी महिलाएं हलके व कम कपड़े पहनने लग जावें, ताकि उनके उदर व पाचक अङ्गों को हवा भली-भांति लग सके।

खेद है कि स्त्रियां आजकल अनेक प्रकार के भारी, मोटे सख्त वस्त्र पहनती हैं जिनसे उनके स्वास्थ्य पर व सौंदर्य पर भारी धक्का लगता है और उसकी भावी संतान को भी कष्ट भोगना पड़ता है। इसमें बहुत कछ अपराध पुरुषों का भी हैं जो उन्हें इस अज्ञान रूपी अन्धकार से दूर नहीं करते। बात यह है कि बेचारी स्त्रियां इन बातों की आदी हो गई हैं, इसलिए उनको कोई कठिनाई मालूम नहीं देती। यदि इन भारी वस्त्रों की पूरी हानियां वर्णन की जायें तो एक बड़ी पुस्तक बन जायगी। बहुत-सी स्त्रियां तो इतने कसकर वस्त्र पहनती हैं कि उनको कमर का आकार अपने स्वाभाविक आकार से बहुत कम हो जाता है और उन्हें अनेक गर्भ सम्बन्धी पीड़ाएं भोगनी पड़ती हैं। बहुत-सी स्त्रियां नाभि से ऊपर तक धोतियां

लहंगा कस लेती हैं, ताकि बेचारे पेट को हवा भी नसीब न हो। इतना होने पर भी हम इस अन्धकार में पड़े ही रहेंगे। जब तक अनेक प्रकार की मूर्च्छाएं बेहोशी हिस्टीरिया के दौरे आना और कमजोरी व पीड़ाएं खुशी की बात समझी जावेंगी और जब तक पीलापन और सफेदी को सौंदर्य समझा जायगा तब तक घाघरे व पाजामेदार घाघरे व अन्य भारी वस्त्र पहनने का रिवाज जरूर ही जारी रहेगा।

जब मानव-जाति को इस विषय प्रकृति विरुद्ध आचरण के बदले में काफी दण्ड मिल चुकेगा तब ईश्वरीय प्रेरणा से उन्हें कुछ समझ उपजेगी। पहले नहीं, हर्ष की बात है कि कहीं-कहीं स्त्रियां प्रकृति की आवाज पर ध्यान देकर भारी वस्त्रों को व बन्धनों को छोड़ने लगी हैं और बजाय भारी गहनों के अब हलके-हलके गहनों का रिवाज चल गया है। जहां तक देखा जाता है मानव-जाति को फिर प्रकृति की शरण में आना ही पड़ेगा तभी सच्चा स्वास्थ्य व सौंदर्य प्राप्त हो सकेगा।

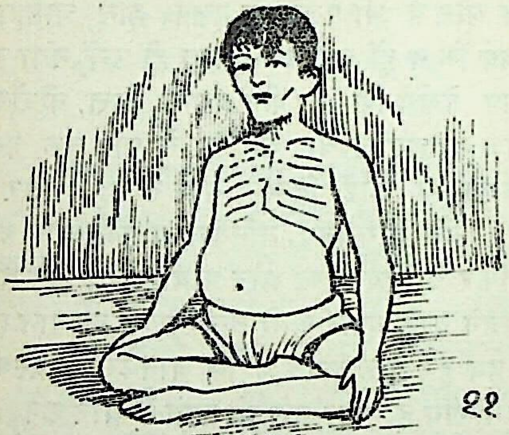
बच्चों के वस्त्रों के विषय में तो हम लोग इतनी भयंकर भूल कर रहे हैं कि जिसका कोई ठिकाना नहीं है। जन्म से ही बेचारे बच्चों को भारी गरम कपड़े पहना दिए जाते हैं, ताकि हवा न लगे कपड़े पहनाकर ही हम संतुष्ट नहीं होते; बल्कि बेचारे अबोध बच्चों को कपड़े उढ़ा भी देते हैं, भोले बच्चे अन्दर घुटकर रोते रहते हैं। इस प्रकार हम अपने हाथों से बच्चों का स्वास्थ्य व जीवन नष्ट कर देते हैं। जितना अधिक बच्चों को कपड़े से ढका जायगा, उतना ही अधिक कमजोर व बीमार वे होंगे। बच्चे वस्त्रों का विरोध करते हैं, माता-पिता बलपूर्वक उन्हें कपड़े पहना देते हैं। वास्तव में बच्चों में स्वाभाविक गरमी अधिक होती है और इसीलिए बड़े-बूढ़ों की अपेक्षा वे अधिक देर नंगे रह सकते हैं। बहुधा देखा गया है कि बच्चे अवसर पड़ने पर अपने सारे वस्त्र उतारकर फेंक देते हैं। उनका अन्तः-

करण उन्हें ऐसा करने की आज्ञा देता है। कपड़े उतारकर वे बड़े प्रसन्न होते हैं मानों उनके सिर से बोझा हट गया। क्या ही अच्छा हो यदि भूले हुए विज्ञान के झूठे मत को मानने वाले प्राणी अपने बच्चों को नंगा ही रहने दें। केवल बहुत मजबूरी के समय कपड़े पहनाए जावें और वे भी पतले व हलके होने चाहिए। जब तक बच्चे पांच वर्ष के न हों तब तक हमेशा ही उन्हें नंगा रखना उचित है। फिर आप देखेंगे कि वे कैसे प्रसन्न चित्त, नीरोग व बलवान् होते हैं। आज माताएं बच्चों को सिर से पांव तक इस प्रकार ढक देती हैं कि बदन का कोई हिस्सा नंगा न रहे। सिर पर टोप या टोपी होती हैं। गले में गुलूबंद, बनियान व कमीज व कोट बदन पर होते हैं। य फिर धोतियां पेण्ट और पांव में जूते होते हैं। भला इस प्रकार ढके रहने वाले बच्चे कभी तन्दुरुस्त व बलवान हो सकते हैं? कभी नहीं। हम हर वक्त देखते हैं कि जानवरों के वस्त्र रहित बच्चे कैसे सुन्दर व नीरोग हैं, सदा उछलते रहते हैं और कपड़ों से लदे रहने वाले हमारे बच्चे सदा रोते रहते हैं कभी खुश नहीं रहते, परन्तु हमारी आंखें तो बन्द हैं। हम शिक्षित व बुद्धि युक्त हैं व जानवर जड़ व अशिक्षित हैं, इसलिए हमारा स्वास्थ्य उनसे अच्छा ही चाहिए।

इसलिए सभी माताओं से मेरी प्रार्थना है कि वे बच्चों को यथा शक्ति नग्न रहने दें! वे बच्चे किसी दिन उन्हें बड़ा ही धन्यवाद देंगे और कपड़ों के अलावा बच्चे नंगे पांव रहना बहुत पसन्द करते और कृतज्ञ होंगे हैं। हमें भूलकर भी उन्हें उस मार्ग पर चलने से नहीं रोकना चाहिए जिस पर चलकर वे आजकल के रोग पीड़ाओं व अकाल मृत्यु से बचे रहें। यदि हम प्रकृति के विरुद्ध वस्त्र धारण करने व अन्य बातों के लिए मजबूर नहीं करेंगे तो वे हमारे लिए इतने दुःख, चिंता व कष्ट के कारण न बनेंगे।

मेरी समझ में नहीं आता कि माताएं इस विषय में बच्चों के प्रति प्रेम के स्थान में निर्दयता क्यों दिखाती हैं और अपने सर्वश्रेष्ट सांसारिक धन प्रिय शिशु रत्नों को क्यों प्रकृति के दिये हुए आनन्द

व सुखों से वंचित रखती हैं और क्यों सदा के लिए उनका जीवन कष्टमय व शोक पूर्ण बना देती हैं। जरा बाहर गांवों में देखिये! देहाती बच्चे कैसे उछलते-कूदते हैं, वे नंगे पांव रहते हैं, उनका



२१

वदन अधिकांश नंगा रहता है, नाम मात्र को वस्त्र रहते हैं और वायु उनके शरीर को सदा ही लगती रहती है। हर एक मनुष्य उन्हें व जानवरों के बच्चों को देखकर अपने बच्चों को भी स्वाभाविक ढंग पर रखकर नीरोग व सुखी बना सकता है।

नंगे सिर रहना भी बच्चों व बड़ों के सभी के लिए बड़ा ही लाभदायक है। वास्तव में सिर सदा ही खुला रहना चाहिए। समय पाते ही लोग क्यों अपने सिर से कपड़े हटा लेते हैं। हमारे अन्दर एक शान्त ध्वनि हमें याद दिलाती है कि बुद्धि के स्थान सिर को ढकना प्रकृति के नियमों के व ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध है और इसीलिए पाप है। समय-समय पर हम इस पाप पूर्ण कार्य से बचते रहते हैं। आरम्भ में मनुष्य के सिर पर प्रकृति ने लम्बे-लम्बे घूंघरूदार काले बाल पैदा किए थे जिससे सिर बड़ा सुन्दर लगता था, खासकर स्त्रियों के लिए तो बाल मुख्य शोभा व शृङ्गार की वस्तु होने

चाहिए। परन्तु हम जब सिर ढक लेते हैं तो हम इस अद्भुत सुन्दर स्वाभाविक शृङ्गार की निन्दा करते हैं। बहुत-से अक्ल के पूरे तो बालों को जड़ से ही कटवाकर अपने आपको मूंड चोरे सरीखा भद्दी शकल वाला बना लेते हैं। कितने खेद की बात है कि मानव-समाज अपने इस प्रकृतिदत्त शृङ्गार को कुछ कदर नहीं करना जानता उल्टा बाल रखाने वालों को बुरी नजर से देखा जाता है। सिर को जितना अधिक हम ढकेंगे उतनी ही हमारे बालों को हानि पहुंचेगी और कुछ समय बाद बाल नष्ट हो जायेंगे। बुद्धि भी ठस हो जायगी। इसलिए सिर को सफाचट करवाने से सुन्दर बनने के बजाय हम बड़े ही भद्दे मालूम देंगे, क्योंकि बाल ईश्वर दत्त स्वाभाविक शृङ्गार है और उसके न रहने से सौंदर्य नष्ट हो जाता है। (इस स्थान पर में यह बता देना उचित समझता हूं कि जिनको अपने बाल सुन्दर व साफ बनाने की इच्छा हो, उन्हें स्वाभाविक जीवन बिताना चाहिए। जल, रोशनी, हवा व स्वाभाविक भोजन के नियम पालन करने चाहिए। कभी-कभी सिर पर चिकनी मिट्टी की पट्टी भी बांधनी चाहिए, ताकि सिर में से विजातीय पदार्थ बाहर निकल जायें।

टोप-टोपी हमेशा हलके व जालीदार होने चाहिए और उनके अन्दर चमड़ा नहीं होना चाहिए। हलकी खद्दर की टोपी सिर के लिए अच्छा वस्त्र है। भारी साफों से पगड़ी कम हानिकर होती है और पगड़ी से टोपी श्रेष्ठ होती हैं परन्तु नंगे सिर रहना सर्वश्रेष्ठ है। जहां तक मनुष्य से हो सके नंगे सिर रहना चाहिए। घरों या जंगल में सैर के समय, जब-जब मौका मिले सिर खुला रहने दो। यदि आप जज हैं तो सिर खुला रखकर अधिक न्याय पूर्ण कार्य कर सकेंगे। यदि आप चिकित्सक हैं तो नंगे सिर आप उत्तम चिकित्सा कर सकेंगे। यदि आप साधु हैं तो भजन-स्मरण नंगे सिर से अच्छी तरह कर सकेंगे। सारांश यह कि सिर पर वस्त्र रहने से बुद्धि अच्छी

तरह काम नहीं देता और खुले सिर रहने से दिमाग खूब अच्छी तरह काम देता है।

यदि मनुष्य एक बार फिर से नंगे पांव, नंगे सिर और हो सके तो मल्लाहों की तरह से खूली छाती रहने लग जायें तो उनके स्वास्थ्य को इतना अपार लाभ पहुंचेगा कि जिसका अंदाज नहीं हो सकता। ऐसा करने से वे फिर प्रकृति के निकट पहुंचेंगे, दीर्घ व चिरस्थायी नाशकारी पुराने रोगों में उन्हें बड़ी भारी शान्ति व सुख प्राप्त होगा, जो किसी भी अंगरेजी, यूनानी, आयुर्वेदिक प्रकृति विरुद्ध औषधियों से नहीं हो सकता। इतना होते हुए भी मेरी राय में इस बात की जरूरत नहीं है कि आजकल के जमाने में इतने कम कपड़े पहने जावें कि हमेशा सरदी से ठिठुरकर कष्ट पाते रहें और अपने जीवन को दु:खी बना डालें और न इस बात की ही जरूरत है कि सभी स्त्री-पुरुष लज्जाहीन हो जावें। ध्यान सिर्फ यह रखा जावे कि यथाशक्ति परिस्थिति को ध्यान में रखकर हम कम वस्त्र पहनें और बदन को हवा भी लगाते रहें।

यदि हम एक बार फिर सब तरह से स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने लग जायंगे (अर्थात् नंगी भूमि पर सोना, दूध, फल, मेवा खाना कपड़े न पहनना, स्वाभाविक स्नान करना, औषधि न लेना शुरू कर देंगे) तो हमारे शरीर में इतनी स्वाभाविक गरमी आ जायगी और शरीर इस योग्य बन जायगा कि हम स्वयं अपनी इच्छा से धीरे-धीरे एक के पीछे एक वस्त्र पहनना छोड़ देंगे। फिर वस्त्र हमारे लिए केवल अनावश्यक ही नहीं हो जायेंगे; बल्कि वे हमारे लिए भार स्वरूप और कष्टदायक हो जायेंगे।

बहुत-से लोग स्वाभाविक जीवन बिताने की बात सुनते ही बड़ी असमंजस व चिंता में डूब जायेंगे। वे सोचेंगे कि हमारे इतनी तरह के कपड़े, मेज-कुरसी, मकान वगैरह सामान का क्या होगा। जिससे अब तक हमें ऐश-आराम व सुख मिला है जिन्हें फिर त्यागना होगा। मेरे खयाल में यह बिलकुल झूठा-सा डर है। स्वा-

भाविक जीवन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाले अद्भुत आनन्द व सुख के मुकाबले में ये जड़ पदार्थ व कांच के महल क्या चीज हैं। जो सुख व आनन्द एक सुन्दर बाग-बगीचे में रहने व बैठने-उठने से मिलता है वह क्या किसी रत्नजटित, तरह-तरह के सामान सजे हुए महल में मिल सकता है? जो स्वाद व आनन्द मेवा-फलों में होता है वह क्या मिठाइयों, अचारों व चटनियों में मिल सकता है? जो शान्ति बालू में सोने से मिलती है वह क्या मखमली गद्दों पर नसीब हो सकती है? हरगिज नहीं।

फिर भी फिलहाल हर एक मनुष्य अपने वस्त्रों का उपयोग करे और अपने दूसरे सुख भी भोगे कोई मनाई नहीं है। हां, ज्यों-ज्यों मानव-जाति प्रकृति के निकट पहुंचती जायगी त्यों-त्यों मकान, कपड़े, फर्नीचर, जेवर, औषधियां आदि उसके लिए अनावश्यक ही नहीं; बल्कि भारस्वरूप होते जायेंगे। मनुष्य प्रसन्नता से उनके बिना रह सकेंगे। और जब मनुष्य बिल्कुल सादा जीवन बिताने लग जायेंगे तो उन्हें बड़ा ही आनन्द व सुख प्राप्त होगा। उदाहरणार्थ यदि मानव-जाति तम्बाकू, चाय, कहवा व अन्य हानिकर वस्तुओं की बजाय फलों की खेती करने लग जाय तो मेरी राय में इतना सुख व आनन्द मिले कि जिसका कोई ठिकाना न रहे। इसलिये एक बार प्रकृति देवी की शरण में आइए, तभी हमें सच्चा स्वास्थ्य व सुख मिल सकेगा और हमारी आवश्यकताएं घटेंगी। अन्यथा नहीं।

वास्तव में कपड़ों की जरूरत हमको इसलिए पड़ती है कि हजारों-लाखों वर्षों से प्रकृति विरुद्ध आहार-विहार करते रहने के कारण हमारा शरीर बिल्कुल दुर्बल व शक्तिहीन हो गया है और रिवाज भी कपड़ों का इतना हो गया है कि हम समाज में कपड़ों के बिना जी ही नहीं सकते। बिना वस्त्रों के समाज में हमारी बड़ी हंसी होगी व लोक निन्दा भी होगी। लोग बेशरम कहेंगे और इसीलिए हमें कपड़े पहनने पड़ते हैं और जरूरी भी हैं ही वरना तो कपड़े

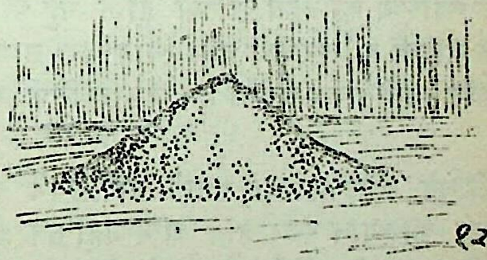
हमारे लिए किसी भी काम की चीज नहीं है बल्कि हमारे स्वास्थ्य व आयु का सत्यानाश करने वाले हैं।

सिवाय खास-खास मौकों के हमें कपड़ों के द्वारा अपने शरीर को सजाने की भी कोई जरूरत नहीं है और न यह इच्छा करने की जरूरत है कि इनसे हमारा शरीर सुन्दर मालूम देगा। सौंदर्य तो चीज ही और है जो स्वाभाविक जीवन के सिवा किसी भी अन्य उपाय से प्राप्त नहीं हो सकता। क्या सुन्दर हिरन, तोता, मोर आदि जानवर कपड़ों द्वारा सुन्दर लगते हैं? धीरे-धीरे हमें वस्त्रों की आवश्यकता कम होती जायगी और वे हमारे लिये बेकार हो जायेंगे। न उनके लिए हमें पैसे खर्च करने पड़ेंगे न कष्ट उठाना पड़ेगा और इस प्रकार हमारा जीवन सुखी हो जायगा। जरा सोचिये। आज कपड़ों की संख्या कितनी बढ़ गई है। सिर पर टोपी, टोप, साफा, पगड़ी चाहिए। गले में नेकटाई, कालर, गुलूबंद चाहिए। फिर नीचे बनियान, स्वेटर बंडी चाहिए। ऊपर कमोज, कुरता, वास्कट कोट शेरवानी चाहिए। फिर लंगोट, धोती, पाजामा, बिरजस, पेन्ट, हाफ-पेन्ट, सिलवार आदि चाहिए पांव में मोजे-जूते चाहिए। जितना बड़ा आदमी होगा उतनी ही अधिक संख्या कपड़ों की होगी। यही हाल स्त्रियों का है। पाजामे, लहंगे, धोतियां, कमीज, चोली, जंफर शाल-दुशाले, साड़ियां आदि कितनी तरह के कपड़े चल रहे हैं। उन्हें तो आभूषण भी काफी चाहिए। खासकर मारवाड़ी समाज में पांव में दो-तीन सेर चांदी फिर तागड़ी, हाथों में, गले में, सिर में भारी-भारी सोने के आभूषण चाहिए। सिर भी खूब कसा हुआ होना चाहिए हाथों में बड़े मोल का भारी चूड़ा चाहिए आदि कितनी बातें प्रचलित हैं। यदि मानव-जाति अपनी इन आवश्यकताओं को धीरे-धीरे कम कर दे तो इतने रोग व कष्ट संसार में न रहेंगे। जो धन व समय इनमें खर्च होता है वह शरीर सुधार में व लोक कल्याण में व्यय किया जा सकता है।

जितने भक्त व तपस्वी हुए उनके जीवन का अध्ययन करने से

पता चलता है कि वे वस्त्रों का बहुत ही कम उपयोग करते थे केवल लंगोट या एक लम्बा ढीला कुरता रखते थे, खाल के जूते नहीं पहनते थे। वास्तव में उन्हें भली-भांति मालूम था कि अधिक वस्त्रों से सदा ही भारी हानियां होती हैं। इसाइयों में भी पहले के लोग केवल एक लबादा रखते थे, मुसलमानों में भी जितने बड़े-बड़े फकीर हुए हैं वे सभी बहुत ही कम कपड़े पहनते थे, हिन्दुओं में हजारों-लाखों ऐसे सिद्ध पुरुष व महात्मा हुए हैं जो बिछाने को चटाई रखते थे और ओढ़ने के लिए सिर्फ एक कंबल और सिर्फ लंगोट ही पहने रहते थे, उनका समस्त शरीर ही बिना वस्त्रों के खुला रहता था।

वर्णाश्रम धर्म के अनुसार विद्यार्थियों को भी नंगे पांव, नंगे सिर व केवल थोड़े व हलके वस्त्रों से ही जीवन व्यतीत करना पड़ता था, वानप्रस्थ व सन्यासियों केलिए भी वस्त्र पहनना धर्म शास्त्रों ने मना



करा रक्खा था, केवल लज्जामात्र ढकने को वृक्षों की छाल पहनकर रहना पड़ता था, मानों वस्त्र पहनना उनके लिए पाप था। क्या इस शिक्षित सभ्यकाल में भी कोई बिना वस्त्रों के रह सकता है? क्या पूर्वजों की भांति केवल लंगोट या एक कुरते में हम लोग रह सकते हैं? आज हमें सिर से पैर तक अपटूडेट फैशनेबल पोशाक चाहिए वरना समाज में हमारी कोई कदर नहीं, आंखों के आगे चश्मा भी चाहिए, स्त्रियों को ऊंची एडी वाला जूता भी चाहिए, क्यों न हो

हम लोग शिक्षित व सभ्य हैं और हमारे पूर्वज पूरे शिक्षित सभ्य न थे इसीलिये वे सैकड़ों-हजारों वर्ष जीवित रहते थे और हम मुश्किल से ५० वर्ष की आयु को पहुंचते हैं। वे सदा ही नीरोग व सुखी रहते थे और हम सदा ही अनेक रोगों से ग्रसित और दुःखी रहते हैं, पर यह सब दोष किसका है। हमारी शिक्षा का, हमारे गुरु माता-पिता आदि सभी हमें गलत रास्ते ले जाते हैं। प्रोफेसर साहब अपने फिजिकलकल्चर के लेक्चर में हमें यह सिखाते हैं कि बदन को कपड़ों से खूब सुरक्षित रखना चाहिए वरना फेफड़ों में सर्दी से जर्मस् (कीड़) हो जाते हैं। बचपन से मां-बाप बच्चों को खास तौर पर गंभीर शिक्षा देते हैं कि बेटा! सरदी-जाड़ा आदि से बचो, कपड़ों का खास तौर से खयाल रखो।

यह बात तो हर एक मनुष्य की मौजूदा हालत पर निर्भर है कि प्रकृति की इच्छा के अनुसार कहां तक अपनी पोशाक का ढंग बदल सकता है और कहां तक अपने कपड़ों को इस ढंग से बना सकता है कि स्वास्थ्य को बहुत ही कम हानि पहुंचे और यह कि वह कहां तक अधिक व खरचीले वस्त्र त्याग कर साधारण व कम कपड़ों से जीवन व्यतीत कर सकता है। जरूरत सिर्फ हिम्मत व शौक की है।

जितने भी नये कपड़े आयंदा बनाये जावें उनमें खासतौर पर स्वास्थ्य नियमों का ध्यान रखा जावे और जहां तक हो सके कपड़े सादा हों। खासकर स्त्रियों के वस्त्रों में तो बड़े ही सुधार की आवश्यकता है। वास्तव में जो सौंदर्य सादा व कम वस्त्रों में है वह अधिक व फैशनेबल वस्त्रों में हो ही नहीं सकता। फैशन के भूत से जो पागल हो रहे हैं, उन्हें तो ये बातें बहुत पंसद आवेंगी। रही इज्जत व कद्र की बात, सो इसी जमाने में देख लीजिए। महात्मा गांधी जी कितने कम व सादे वस्त्र पहनते थे। उनकी कद्र एक सम्राट के समान होती थी क्या सारी इज्जत वैभव व सुख फैशन में है? हरगिज नहीं। आजकल तो अधिक व फैशनेबल वस्त्र पहनने

वालों की कद्र ही नहीं होती। यही हाल स्त्रियों का भी है। अधिक कीमती कपड़े पहनने वाली स्त्रियों की अपेक्षा सादे वस्त्र व नाम मात्र को आभूषण पहनने वाली ही योग्य महिलाएं समझी जाती हैं।

एक बात और है, जो स्त्रियाँ या पुरुष सुन्दर वस्त्र व आभूषण द्वारा सुन्दर दिखाई देने की इच्छा रखते हैं वे बड़ी भारी भूल करते हैं। ऐसी कल्पना मृगतृष्णा के समान मिथ्या है जो दूर से सुन्दर नजर आती है पास जाने पर कुछ नहीं। भला सोचिये! हजारों रुपये की बहुमूल्य पोशाक व भारी आभूषण पहने हुए नाचने वाली वेश्या क्या एक सादी-सी पोशाक पहनने वाली भले घर की स्त्री से सुन्दर मालूम देगी? हरगिज नहीं! केवल प्रकृति ही सुन्दर है, जो कुछ प्रकृति विरुद्ध है वह सब भद्दा है कुरूप है। बाग व बन में खिलने वाले पुष्प कितने सुन्दर होते हैं, जंगल की नग्न गिलहरी कितनी प्रसन्नता से और फुरती से एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उछलती फिरती है। मनोहर शोभायमान हिरन बिना शृङ्गार के कैसा सुन्दर मालूम देता है और कैसी छलांगें मारता है। जंगली पक्षी सुन्दर बोली बोलकर हृदय को मोहित कर लेते हैं। सारांश यह कि सौंदर्य स्वाभाविक जीवन से ही मिल सकता है। कृत्रिम उपायों से तो रहा सहा सौंदर्य भी नष्ट हो जाता है।

गौतम-पत्नी अहिल्या, जो बन में स्वतन्त्र प्रकृति में रहती थी, बल्कल वस्त्र पहनती थी और स्वाभाविक भोजन, कन्दमूल, फल आदि जिसका भोजन था, कितनी रूपवान व मनोहर थी जिस अलौकिक सौंदर्य पर देव राज इन्द्र भी मुग्ध हो गये थे। प्रकृति की शरण में पली हुई बन में रहने वाली शकुन्तला कितनी मनोहर थी, जिसके अद्भुत स्वाभाविक सौंदर्य का वर्णन महा कवि कालिदास ने अपने ग्रन्थों में किया है। उसका रहन-सहन, खान-पान स्वाभाविक थे। वह पाउडर नहीं लगाती थी न बहुमूल्य वस्त्राभूषण ही पहनती थी न वह पान खाती थी न दाँतों को मिस्सी लगाती थी और न वह नेत्रों में काजल या सुरमा ही लगाती। फिर उसका अंग-अंग ऐसा

मनोहर क्यों था जिसकी महिमा कवियों ने गाई है। इसका उत्तर बहुत ही सरल है। सौंदर्य स्वाभाविक जीवन से ही मिल सकता है, केवल शुद्ध-रक्त के संचार से सौंदर्य प्राप्त होगा और रक्त शुद्ध तभी हो सकता है जब हम एक बार फिर अस्वाभाविकता छोड़ेंगे। जब हम अनेक प्रकार की प्रकृति विरुद्ध तैयारियां मिठाइयां आचार, मुरब्बे, चाय, कहवा, तले हुए पदार्थ व अग्नि से पके हुए पदार्थ खाना छोड़कर केवल कच्चे दूध, फल और मेवे का भोजन करेंगे, जब हमारा बिछौना बजाय मखमली व मोटे गद्दों के पृथ्वी माता होगा, जब हम शुद्ध वायु में रहेंगे। इन उपायों के सिवाय करोड़ उपायों से भी स्वास्थ्य व सादर्य प्राप्त नहीं हो सकता। अस्तु !

जरा अब हमारे वर्तमान स्त्री-पुरुष व बच्चों का भी हाल सुनिये। कोई महाशय इतने मोटे पेट के, बादी भरे हुए होते हैं कि उनसे चला ही नहीं जाता और दीखने में भैंसे से अच्छे नहीं मालूम देते। दूसरे महाशय बहुत ही दुबले, भद्दी शकल के गन्दे व कुरूप होते हैं। तीसरे की खोपड़ी गंजी है। चौथे महाशय रीछ के से बालों वाले हैं, भला ये लोग सुन्दर वस्त्राभूषण पहन लें तो क्या सुन्दर मालूम देंगे।

अब स्त्रियों को भी देखिये! अधिकांश काली, मोटे पेट वाली, भद्दी शक्ल की डायन सरीखी मिलेंगी। उनकी भारी-भारी पोशाकें व जेवर उनकी शोभा नहीं बढ़ा सकते। न ऐसी कुरूप स्त्रियां अपने सम्बन्धियों को न दूसरों को अच्छी लग सकती हैं। इसलिये रूप-यौवन की कामना करने वालों से प्रार्थना है कि वे अस्वाभाविक जीवन छोड़कर प्रकृति की शरण में जायें तभी वे स्वयं प्रसन्न रहकर दूसरों को भी मोहित कर सकेंगे।

बहुत-से मनुष्य आजकल बेंत व छड़ी भी रखना पसन्द करते हैं। मेरी राय में तो सिवा मजबूरी या किसी खास जरूरत के बिना लकड़ी या छड़ी हाथ में न होनी चाहिए क्योंकि इससे स्वास्थ्य को उल्टी हानि होती है। प्रकृति हर एक कार्य के अटल है वह किसी को रिआयत करना नहीं जानती। स्वयं अपना अनुभव ही आप ही

सिद्ध कर देगा कि वास्तव में बिना बेंत या छड़ी के चलना स्वास्थ्य के लिए अधिक उपयोगी है।

वस्त्रों की भांति हमारी सजावट मेज-कुर्सियां भी अधिकांश प्रकृति विरुद्ध हैं और बहुधा स्वास्थ्य के लिए बड़ी ही हानिकर होती हैं। यदि सच पूछा जाय तो पहले के लोग स्वतन्त्र प्रकृति में रहकर स्वाभाविक सजावट पसन्द करते थे। वे तारों से आच्छादित सुन्दर स्वर्णिय आकाश के नीचे रहते थे। सुन्दर शीतल वृक्षों की छाया में सोते थे। नंगी धरती ही उनका बिछौना था। सुन्दर पौदों के फूलों से हरे-हरे वृक्ष आदि से ही उनका वह रम्य घर शोभित रहता था। मगर आज घरों की सजावट में लाखों रुपये खर्च किये जाते हैं। हर एक मनुष्य अपनी परिस्थिति के अनुसार सजावट का सामान रखता है। झाड़-फानूस, रंग विरंगी तस्वीरें, गुलदस्ते, बढ़िया मेज-कुर्सी, बड़े-बड़े कालीन, गद्दा तकिये, कांच के खिलौने आदि अनेक प्रकार प्रकृति विरुद्ध सामान में बहुत-सा धन व समय नष्ट किया जाता है। अलबत्ता कहीं-कहीं सजावट कुछ प्रकृति के उद्देश्यों के अनुसार होने लगी है अर्थात् कुछ लोगों में सुन्दर पौदे फुलवाड़ी, बेलें आदि लगाने का शौक पैदा हो चला है! ऐसे ही लोग सजावट का आनन्द भी ले सकते हैं और स्वास्थ्य भी सुधार सकते हैं। सबसे जरूरी बात यह है कि गद्देदार मुलायम मेज-कुर्सियों को हटा दिया जावे. क्योंकि मुलायम गद्दों पर बैठने से शरीर के कुछ भाग गरम हो जाते हैं और इन हिस्सों में खून इकट्ठा हो जाता है जिससे अनेक प्रकार के रोग, थकावट, सुस्ती, नामर्दी, कमजोरी आदि उत्पन्न होते हैं और रक्त के संचार में भारी बाधा होती है। यही कारण होता है कि नरम गद्दी तकियों के सहारे बैठने वाले सेठ, मुनीम, हाकिम आदि बहुधा कमजोर रोग ग्रसित देखे जाते हैं। बवासीर, अण्डकोष वृद्धि आदि का भी एक कारण मोटे गद्दों पर बैठना और सोना है। मोटे-मोटे रूई के बिछौनों पर सोने से, गद्देदार कुर्सियों पर बैठने से व गद्दी पर बैठने से हमारे शरीर पर बड़ा ही भयंकर प्रभाव पड़ता है। जरूरत

से ज्यादा गरमी पैदा होती है, रक्त बिगड़ जाता है और शरीर की नसें कमजोर पड़ जाती हैं। मेरे तो यह बात समझ में ही नहीं आती कि लोगों को नाना प्रकार के सामान, मेज-कुर्सी आदि से सजे हुए बन्द कमरों में कैसे आराम मिलता है जहां सदा ही अन्धकार व गरदा भी रहता है। आदत होने पर हानिकर बातों में भी सुख मालूम होने लग जाता है। आज मानव-जाति गद्दों व कपड़ों की ऐसी आदी हो रही है कि यह जानते हुए भी कि इनसे हमारा स्वस्थ्य नष्ट होता है फिर भी हम इनका उपयोग नहीं छोड़ सकते। छोड़ना तो दूर रहा हम वस्त्रों को कम भी नहीं कर सकते।

गद्देदार मेज-कुर्सी के बजाय चमड़ा लगी हुई मेज-कुर्सी काम में लाई जावे तो ठीक होगा। सीधी-साधी लकड़ी की कुर्सी-मेज, टेबल आदि व बेंत की बनी हुई कुर्सी वगैरह भो ठीक होती हैं। देहातों में ऐसा ही फर्नीचर काम में लाया जाता है। यही हाल पलंग आदि के विषय में समझना चाहिए। लोहे से काठ का पलंग अच्छा होता है और निवार के पलंग की अपेक्षा मूंज (जेवड़ी) का पलंग अधिक स्वास्थ्यकर होगा। इतना ही नहीं जेवड़ी से भी जो पलंग बनाया जाये उनको इस प्रकार बनाया जाये कि ताने-बाने के बीच हवा के आने जाने के लिए जगह खाली रखी जाय। बिल्कुल सटा-कर ताना-बाना न लगाया जावे क्योंकि सोते समय शरीर को नीचे से भी हवा लगती रहनी चाहिए। निवार के बने पलंगों पर सोने से यह हानि भी होती है कि नीचे से हवा का आना बन्द हो जाता है और स्वास्थ्य के लिए हानिकर है।

आजकल दुकानदार वगैरह बहुत मोटे रूई के गद्दे बिछाकर उन पर काम करते हैं, यह बहुत बुरी बात है। लोग उसमें बड़ा आराम समझते हैं पर है बड़ा दुःख। अनेक रक्त विकार व मोटापन आदि शिकायतें पैदा होती हैं। क्या ही अच्छा हो अगर उनके बजाय हलकी दरी, चादर वगैरह बिछाकर बैठने लगें। सबसे बढ़कर बात तो यह हो कि किसी प्रकार की नरम घास आदि के गद्दे बिछानें

के काम में लाए जावें। प्राचीन ऋषि कुशान या मृग चर्म ही बिछा कर बैठना पसंद करते थे, जिससे उन्हें कैसा आराम मिलता था और स्वास्थ्य को हानि भी नहीं होती थी।

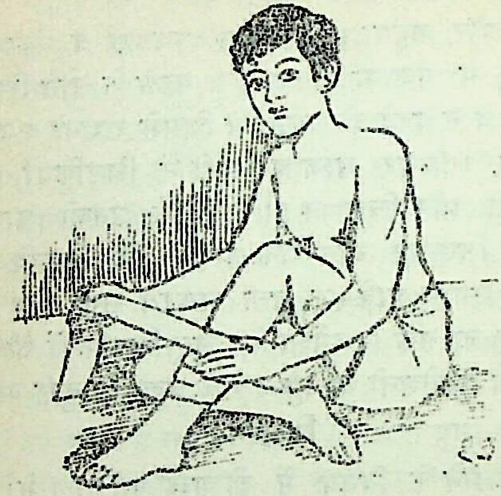
एक बात और कहूंगा। आजकल दरवाजों व खिड़कियों को भी अजीब ढङ्ग से सजाया जाता है। पहले के लोग खिड़कियों को न साया करते थे न परदे हो लगाते थे जिससे रोशनी व हवा बराबर अन्दर आती थी। अगर आज बड़े घरों में खिड़कियों में जब तक सायबान न हो और चिक न हों तब तक उनकी शान ही नहीं रहती। इसके लिए यह बात ठीक बात है कि खिड़कियों में हल्के हवादार परदे लगाए जावें जो वक्त जरूरत लगा दिए जावें और फिर हटा दिए जा सकें। हमेशा के लिए खिड़कियों को इस तरह सजाना कि हवा व रोशनी आ ही न सके बहुत ही बुरी बात है।

बिछौने

अब मैं बिछौने के विषय में दो शब्द कहूंगा। मेरे खयाल में तो मनुष्य का असली स्वाभाविक बिछौना पृथ्वी माता है। वस्त्रों व घरों के आविष्कार से पहले सभी मनुष्य खुली नंगी भूमि पर सोते थे। धरती बिछौना व आकाश ओढ़ने की चीज थे। इसलिये मेरी राय में सच्चा आराम, सच्चा सुख इसी प्रकार के स्वाभाविक व ईश्वरदत्त बिछौने पर सोकर मिल सकता है। खुली भूमि पर सोने से स्वास्थ्य को कितना अधिक लाभ होता है। पृथ्वी में कैसी अद्भुत रोग निवारक शक्तियां मौजूद हैं आदि बातों का विस्तार पूर्वक अलहदा पुस्तक में लिखने का यत्न करूंगा। यहां पर इतना ही कह देना उचित समझता हूं कि पृथ्वी के अलावा जितने प्रकार के बिछौने हैं वे सब प्रकृति विरुद्ध हैं और मानव स्वास्थ्य का सत्यानाश करने वाले होते हैं। उनसे कभी लाभ नहीं होता।

मनुष्य लगभग अपने जीवन का आधा भाग बिछौने में बिताता है। बिछौने में सोने से वह आशा रखता है कि उसे विश्राम व बल मिलेंगे व स्वास्थ्य सुधरेगा। इसलिये बिछौनों पर खास तौर पर

ध्यान देने की जरूरत है और उन्हें इस प्रकार बनाया जावे, ताकि प्रकृति की मांगें पूरी होती रहें।



आज बिछौने इतने गलत तरीके पर बनाये जाते हैं कि सिवा हानि के कोई लाभ होता ही नहीं। बिछौने या तो मोटे-मोटे रूई गद्दों के होते हैं या और गरम चीजों के बनाए जाते हैं जिन पर सोने से शरीर जरूरत से ज्यादा गरम रहता है और जठराग्नि पर बड़ा धक्का पहुंचता है। मोटे मुलायम गद्दों पर सोने वाले सदा रोगी व कमजोर रहते हैं।

बिछौनों के तीन अंग होते हैं: पलंग चारपाई, बिछौना ओढ़ना। सबसे पहले मैं पलंग या खाट के बारे में लिखूंगा। अधिकांश पलंग या चारपाई निवार, मूंज, सूतली या लोहे व काठ के बनाए जाते हैं। सबसे अच्छे आरोग्यदायक पलंग मूंज के होते हैं, उनमें भी वे चारपाइयां जो छीदी बनी होती हैं जिन पर सोते समय बदन को हवा नीचे से भी लगती रहती है। निवार के पलंग में आराम चाहे मिले पर शरीर की हानि होती है। जो हिस्सा निवार के पलंग पर रहता है उस पर हवा नहीं लगती। सुतली वगैरह के बने पलंग

अच्छे नहीं होते। केवल शौक की चीजें हैं। लोहे के पलंग मजबूत जरूर होते हैं पर काठ के पलंग के समान आरोग्यदायक नहीं होते।

बिछौने बहुत मोटे अच्छे नहीं होते। पंख आदि के बने हुए बिछौने बड़े ही हानिकर व रोगकारक होते हैं। हलके पतले कम रूई वाले बिछौने ठीक होते हैं। गरमी में पतली सूत की दरी या चादर बिछौना ही बहुत काफ़ी होता है। बिना बिछौने खरैरी (अकेली) चारपाई, बढ़िया बिछौना होता है। कुश व अन्य घास व पत्ते आदि की चटाइयां बड़े ही लाभप्रद बिछौने हैं। उन पर सोने से शरीर को बड़ा लाभ होता है। शरीर को प्रकृति विरुद्ध गरमी नहीं पहुंचती और आसानी से हवा लगती रहती है, जठराग्नि को भी सहायता मिलती है। इसके सिवा घास, तृण, कुश आदि के बिछौने गरमी में ठंडे व जाड़े में गरम रहते हैं। बाजारों में आजकल अनेक प्रकार की उत्तम-उत्तम चटाइयां मिलती हैं वे खरीदकर बिछौने के काम में लाई जा सकती हैं। प्राचीन आर्य्य कुश का ही बिछौना अधिक पसंद करते थे, पर आज तो हमें उन बातों से घृणा है। तरह-तरह के हानिकर बिछौने तैयार किये जाते हैं जिनमें वाह्य सौंदर्य चटक-मटक व रोगकारक सहूलियत यही होते हैं लाभ का अंश भी नहीं। सभी यह बात जानते हैं कि सादगी अच्छी होती है, पर करते हैं विपरीत। जाड़े में ऊन के गद्दे काम में लिए जा सकते हैं। इस विषय में हर एक मनुष्य परिस्थिति के अनुसार प्रकृति के उद्देश्यों को सामने रखकर सुधार कर सकता है। सर्वश्रेष्ठ बिछौना तो पृथ्वी ही है।

यही बात ओढ़ने के विषय में है, जितने हल्के, पतले, हवादार कपड़े ओढ़े जावेंगे उतना ही लाभ होगा। सोते समय मुंह रात को खुला रखना ठीक है। इसके सिवा रात को बहुत-से लोग बिछौनों में भी कपड़े पहनकर सोते हैं यह बड़ी ही भयंकर भूल है। जहां तक सरदी लगे गरमी न आवे वहां तक तो ठीक है पर बिना जरूरत कपड़े पहनना और खास रात को यह तो बड़ी भयंकर भूल है।

मगर कितने ऐसे लोग हैं जो इस बात की तरफ ध्यान देते हैं। चारों तरफ अन्ध-विश्वास छाया हुआ है। कपड़ों से इस बुरी तरह शरीर को लपेटा, कसा व ढका जाता है कि वायु देवता पहुंच तक नहीं सकते। क्या? इसीलिए कि लोगों का खयाल है कि खुले बदन रहे और सरदी, जुकाम, खांसी और आफत आई। मगर यह भी कैसी शोचनीय भूल है।

कहावत प्रसिद्ध है 'बकरे को मां कब तक कुशल ही मनावेगी' आखिर बकरा तो निर्दयी कसाई के हाथ मारा ही जायगा। यही हाल मनुष्य जाति का आजकल रहा है। चाहे जितना ही हम रोगों से बचने के लिए कपड़ों से शरीर को ढकते रहें, चाहे कितनी दवाइयां ले कर रोगों को शरीर के अन्दर दबाते रहें पर बलवान् प्रकृति एक दिन अकाल ही हमें इसका दंड देगी। आये दिन हम देखते हैं हट्टे-कट्टे जवान हार्टफेल होने से (हृदय की गति रुक जाने से) अचानक मर जाते हैं। बहुतेरे कालरा (हैजा) आदि के शिकार होकर मर जाते हैं। क्या उनका कोई उपाय है? मैं तो निश्चय पूर्वक कहूंगा कि ऐसी अचानक मौतें अधिकांश वे लोग पाते हैं जो सदा ही दिन-रात कपड़ों से बुरी तरह लदे रहते हैं। कभी भी बेचारी शरीर रूपी मशीन को हवा नहीं लगने देते।

जब तक हम लोग इस तरह से बहरे बने रहेंगे कभी सुधार हो ही नहीं सकता। रात को बिछौने में बच्चा तड़फता है, कपडे फेंकता है मगर मूर्ख, भूठे स्नेह से भरी माता जबरदस्ती बच्चे को उढ़ा देती है। गरमी से घबराकर बच्चा कुरता, कोट फेंक देता है मगर हितचिंतक माता डरा-धमकाकर बहकाकर, बच्चे को कपड़े पहनने को मजबूर करती है। कितना अन्धेर है! कितना अन्धविश्वास है! वह यह नहीं समझती कि वह अपने बच्चे के स्वास्थ्य पर कुठाराघात कर रही है।

बाबू साहब दफ्तर से आकर गरमी ने घबराकर कपड़े उतार कर फेंक देते हैं व सिर से साफा-पगड़ी उतारकर बैठते हैं और हवा

लगने के लिए बदन खोलकर खिड़की के सहारे बैठते हैं ताकि शान्ति मिले मगर घर वाले कहते हैं पसीना सूख जाने दो पीछे कुरता उतारना। जकाम हो जायगा। क्या बढ़िया सलाह है कितना गलत ख्याल है। सरदी व हवा से कितना भय हम लोग रखते हैं मानों सरदी से व हवा हमारे शत्रु हैं और ईश्वर नें मानव-जाति के नाश करने के लिए इन्हें बनाया है।

वन का सुन्दर पक्षी कोई कपड़े नहीं पहनता। जाड़े, गरमी, बरसात सदा नंगा रहता है। उन्हें कोई कष्ट नहीं होता। उन्हें जुकाम नहीं लगता। दरख्तों पर छलांग मारने वाले बंदर आदि कपड़े नहीं पहनते क्या उन्हें जाड़ा नहीं लगता? क्या उनका शरीर मनुष्य शरीर से अधिक बलवान है! क्या उनके बड़े-बड़े बाल होते हैं? नहीं इसका कारण यह है कि मनुष्य बुद्धिमान हैं और पशु-पक्षी सब निर्बुद्धि हैं। पशु-पक्षी प्रकृति की आज्ञानुसार जीवन व्यतीत करते हैं और मनुष्य प्रकृति विरुद्ध मन माना जीवन व्यतीत करते हैं। वे निर्लज्ज हैं। मनुष्य लज्जाशील है। वे सदा नीरोग सुन्दर दीर्घायु, सुखी व प्रसन्न रहते हैं और मनुष्य स्त्री बच्चे अधिकांश सदा ही रोगों से घिरे हुए कुरूप अल्पजीवी, दुःखी व शोक से भरे हुए रहते हैं। थोड़े से मनन से इनका भेद खुल जायगा।

अस्तु स्वाभाव विरुद्ध भोजन से अर्थात् फल, मेवा, दुग्ध आदि से अन्न, मसाले, दाल, मांस, मदिरा, तंबाखू व अन्य प्रकृति विरुद्ध चीजें खाते रहने से हमारा रक्त इतना खराब हो गया है, हमारी खाल इतनी नाजुक हो गई है कि हमें सरदी-गरमी बरसात बरदाश्त नहीं होती और सदियों से यही हाल है। इसके सिवा लगातार कपड़े पहनते रहने से भी अंग प्रत्यंग अत्यंत नाजुक हो गये हैं। यह बात हरगिज नहीं है कि हम बिना कपड़ों के रह ही नहीं सकते। धीरे-धीरे आदत होने से न जाड़ा मालूम देगा न बरसात में कष्ट होगा न गरमी सतावेगी। शरीर धीरे-धीरे नीरोग व बलवान बनता जायगा।

एक बात और है वह यह कि मैले, फटे हुए व अधिक जीर्ण वस्त्र व जूते आदि मानव शरीर के लिए बड़े ही घातक होते हैं। अनेक रोग तो उत्पन्न होते ही हैं, साथ-साथ ऐसे जीर्ण वस्त्रादि दुर्भाग्य व आपत्तियों के भी कारण बनते हैं। इसलिए जिसकी जैसी परिस्थिति हो मैले फटे जीर्ण वस्त्र आदि का यथाशक्ति त्याग करना चाहिए, जहां तक हो सके नवीन उत्तम, स्वच्छ वस्त्रों का उपयोग करना उचित है। खादी पहनने वाले जहां तक हो अच्छे सूत की बनी खादी पहनें बहुत मोटे सूत के कपड़े पहनना स्वास्थ्य व सौभाग्य दोनों के विरुद्ध है मेरी राय में नग्न रहना बहुत ही श्रेष्ठ है पर जीर्ण वस्त्राभूषण धारण करना योग्य नहीं है।

नंगे शिर रहना अच्छा है परन्तु फटा जीर्ण साफा, पगड़ी, टोपी पहनना बुरा है नंगे पांव फिरना कहीं अच्छा है पर अनेक रोग व पीड़ाओं के आगार जीर्ण जूते पहनना ठीक नहीं है। नंगे बदन रहना ठीक है पर मैले, कई थेकली लगे हुए, जीर्ण कुरते, कोट आदि वस्त्र हरगिज नहीं पहनना चाहिए। केवल लंगोट पहनकर रहना ठीक है, मगर जीर्ण धोती, पाजामे आदि पहनना ठीक नहीं है। इसी प्रकार नंगी धरती, बालू रेत या घास पर बिना बिछौने सोना बहुत ही उत्तम है, परन्तु मैले-कुचैले, फटे हुए, बदबूदार गूदड़े या जीर्ण चादर सोड़िये पर टूटी या गली हुई चारपाई पर सोना बहुत बुरा है।

इसी प्रकार हाथ या पत्रों पर, पत्तल में भोजन करना उत्तम है परन्तु फूटे हुए, मैले, जीर्ण कीमती बरतनों में भी भोजन करना या जल पीना बुरा है। बाग़-बग़ीचे या जंगल में रहना उत्तम हैं, परन्तु गंदी, सड़ी गलियों वाले तग, बदबूदार, व अंधेरे और सर्द मकानों में निवास करना बहुत ही बुरा है चाहे वे निरे सोने-चांदी से ही क्यों न जड़े हों। अस्तु कहने का सारांश यह है कि जो वस्तुएं चाहे मकान हो, चाहे कपड़े या बर्तन हों या अन्य उपयोग में आने वाली हो—वे

सब सुन्दर व मन को प्रसन्न करने वाले हों, वे ही काम में लिये जाना ठीक है, वरना उसके बिना ही रहना अच्छा है।

वस्त्रों के विषय में मेरी सम्मति

आजकल लोगों की यह धारणा है कि वस्त्र उनके शरीर के एक अंग हैं और इसलिए वे दिन-रात सरदी, गरमी व बरसात हर समय कपड़ों से लदे रहते हैं यहां तक सरदी, गरमी के मौसम में भी वस्त्र रहित रहना बुरा समझते हैं चाहे जरूरत हो या न हो—कपड़े जरूर पहनेंगे। सदियों से यह वस्त्रों की आदत इतनी दृढ़ हो गई है कि इसे दूर करना बड़ा ही कठिन हो गया है। यदि कोई मनुष्य हिम्मत करके वस्त्रों का उपयोग कम करता है तो लोग बुरा कहने लगते हैं। मेरी तो यह दृढ़ धारणा हो चली है कि मानव-समाज वस्त्रों के जरिये अपने स्वास्थ्य का सर्वनाश कर रहा है। अनेक बार के अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि शरीर पर से वस्त्र उतारकर फेंक देने से शरीर को ऐसी शान्ति व दृढ़ता मिलती है जो कहने में नहीं आ सकती।

वस्त्रों के विषय में नियम

१—रात को हो सके तो पूर्ण रूप से नग्न होकर शयन करना उचित है। इससे रात्रि में शरीर हवा से यथोचित लाभ उठा सकेगा और श्वासोच्छवास में जो बाधा कपड़ों से हो सकती है वह न होगी। वस्त्र पहनकर सोना बहुत ही बुरा है इससे नींद भी अच्छी तरह नहीं आती।

२—पांच वर्ष तक के बालकों को यथा शक्ति बिल्कुल नंगा रहने दिया जावे अन्यथा उनको सदा के लिए कमजोर व रोगी होना पड़ेगा। वस्त्र रहित बच्चे प्रसन्नचित्त व माता-पिता के हृदय को आनन्द देने वाले होते हैं, पर आज माताएं अज्ञानवश दिन-रात बच्चों को कपड़ों की कई तहों में इस प्रकार लपेटे रहती हैं कि बच्चा हाथ-पांव भी नहीं हिला सकता।

३—रुई के कोट, शेरवानी व लबादे जहां तक हो सकें कम कर देने चाहिए ताकि शरीर पर प्राणवायु का स्पर्श अच्छी तरह होता रहे। रुई बदन को कमजोर कर देती है।

४—हर एक प्रकार के रोगी को यथाशक्ति वस्त्रों का उपयोग छोड़ देना जरूरी है। रोगों में मल-पदार्थ तेजी से शरीर में होकर निकलते रहते हैं और वस्त्रों से इस कार्य में भयंकर बाधा होती है। इसके सिवा कपड़े पहनने से शरीर के अन्दर की गरमी अच्छी तरह बाहर नहीं निकल पाती और यही कारण है कि ज्वरादि रोगों में अधिक वस्त्र धारण करने वाले बहुत-से रोगी अकाल ही मारे जाते हैं। खेद है, चिकित्सक लोग रोगों में वस्त्रों की हानि पर ध्यान तक नहीं देते। एक बात और है। हाड-मांस के बने इस शरीर को प्रकृति ने खाल से इस प्रकार ढक दिया है कि अन्य किसी ऊपरी वस्त्र की आवश्यकता ही नहीं रखी है, मगर आज हम कपड़ों को शरीर का एक अंग समझने लगे हैं तभी संसार रोगों से ऐसा घिरा हुआ है। लोग कहते हैं वस्त्रों के अभाव से रोग होते हैं, मैं कहता हूं कपड़े ही बहुत सी बीमारियों के कारण हैं। अगर लोग वस्त्र पहनना कम कर दें तो बहुत-से रोगों का संसार में नाम-निशान भी न रहे।

प्राकृतिक चिकित्सक का यह पहला कर्त्तव्य है कि जब किसी रोगी की चिकित्सा के लिए उनको बुलाया जावे तो वह सबसे पहले रोगी के सब कपड़े उतरवा दे और कुछ समय के लिए बिलकुल नग्न रखे या हो सके तो केवल एक हल्का सा वस्त्र लज्ज मात्र ढकने को रहने देवे और अगर रोगी मोटे रुई या ऊन के बिछौनों पर सो रहा हो तो उसके नीचे से वे सब बिछौने निकलवा दे और उसे कुछ काल बिना बिछौने नंगी धरती पर रखे और बिना कपड़ों के टहलावे। ऐसा करने से भारी शांति और आरोग्य मिलेंगे।

मुझे हंसी भी आती है और अफसोस भी होता है कि आज के लोग भेड़ों से कहीं ज्यादा मूर्ख हैं। वे कभी सोचते ही नहीं कि कपड़े

हमारे स्वास्थ्य का कैसा सत्यानाश करते हैं और खासकर जब हम रोगों के शिकार होते हैं तब तो कपड़े बड़े ही हानिकर हो जाते हैं। मगर हमारे चिकित्सक अव्वल तो वस्त्रों पर ध्यान ही नहीं देते और देते भी हैं तो सिर्फ सफाई रखने का आदेश करके रह जाते हैं।

उन्हें मालूम नहीं कि एक क्षण भी रोगी शरीर को कपड़ों से ढके रहना रोगों को बढ़ाना है और यह कि अगर रोगों में कपड़े छोड़ दिये जावें या बहुत कम पहनाये जावें तो रोगी इतना कष्ट नहीं पावेंगे और इतनी मृत्यु न होंगी। अव्वल तो अन्दर की गरमी सताती है फिर हवा की गरमी दुःख देती है, रहे-सहे अनाप-शनाप कपड़ों से रोगियों को लाद दिया जाता है, ऐसी हालत में हमारे रोगी अगर मर जाते हैं तो हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। बीमार कहता है वैद्य जी मुझे कपड़े नहीं सुहाते हुक्म हो तो उतार फेकूं, मगर भाग्य विधाता फरमाते हैं भाई सरदी का झोंका लग जायगा। इतना ही नहीं उसके कमरे नें भारी-भारी परदे लगाकर कैद रखा जाता है।

बेचारा ग़रीब बच्चा सौड़ व रजाई के अन्दर रोता है, लात फटकारता है मानों वह जाहिर करता है कि मुझे इस बन्धन से निकालो मगर मूर्ख निर्दयी माता जबरदस्ती उसे उढ़ा देती है और इस प्रकार बच्चे के साथ अन्याय किया जाता है। मेरा कहने का यह मतलब हरगिज नहीं है कि कपड़े पहनना ही नहीं चाहिए। मगर इतना अवश्य कहूंगा कि जहां तक हो सके कपड़े बहुत कम पहने जावें और समय-समय पर खुले बदन रहकर ठंडी हवा, धूप आदि लगाई जावे।

सारांश यह है कि हर एक मनुष्य अपनी परिस्थिति अनुसार धीरे-धीरे कपड़े पहनना कम करता जावे और खुले बदन रहने का अभ्याय करे। फिर उसे मालूम हो जायगा कि वास्तव में अधिक वस्त्र पहनकर मानव-समाज किस प्रकार अपने शरीर के साथ अन्याय कर रहा है और यह भी अनुभव हो जायगा कि कपड़े छोड़ने से जठ-

राग्नि कैसी प्रबल हो जाती है और रोग समूह कैसी जल्दी भाग जाते हैं, इसलिए मेरा उपदेश है कि हर एक मनुष्य इस पर विचार करे और साधन करे। पुराने रोगी तो वस्त्र छोड़कर बड़े सुखी होंगे। वस्त्रों की गुलामी से बचिये, फिर आपको डाक्टर, वैद्य, हकीमों की गुलामी न करनी पड़ेगी। खर्च भी कम होगा शरीर भी ठीक होगा मन प्रसन्न रहेगा। सौंदर्य व आयु बढ़ेगी।

फिर बच्चे इतने कमजोर व बुजदिल नहीं होंगे व न स्त्रियां ऐसी कुरूप होंगी और न पुरुषवर्ग इतने अल्प जीवी व रोगी होंगे। भगवान् इस देश के लोगों को ऐसी बुद्धि दे कि वे वस्त्रों की हानियां समझें और धीरे-धीरे उन्हें छोड़ते जावें। वैद्य, हकीम, डाक्टर भी यह समझ लें कि वस्त्रों का चिकित्सा में प्रधान स्थान है और सभी रोगों में (खास कर जीर्ण रोगों में) कभी सफलता न होगी, अगर वस्त्र पहनना न छोड़ा जावे। विचार कीजिये और मेरे कथन की सच्चाई का अनुभव स्वयं ही आपको हो जायेगा।

शृंगार, सख्त जाड़े से रक्षा, समाज में घूमने की योग्यता यही कपड़ों को आवश्यक बनाते हैं अन्यथा प्रकृति के कार्य में वस्त्र भारी बाधक हैं।

सिर में कसकर साफा बांधने से दिमाग़ कमजोर व ठस हो जाता है। भारी तंग बनियान, स्वेटर हृदय व फंफड़ों को कमजोर करते हैं। कसकर धोती, लहंगा पहनने वालों का रक्त संचार खराब हो जाता है। हर समय लंगोट पहनने वाले नपुंसक हो जाते हैं। सख्त कसकर लहंगा, धोती पहनने वाली स्त्रियों को प्रदर, कब्ज, गर्भपात, मासिक-धर्म के रोग हो जाते हैं।

खराब दूषित चमड़े के भारी तंग जूते पहनने से आंखें व दिमाग कमजोर हो जाते हैं और मृगी आदि रोग हो जाते हैं। फटे, गले, जीर्ण कपड़े, जते, दरिद्र रोग कष्ट पैदा करते हैं।

शल्य चिकित्सा (SURGERY)

चीर-फाड़ क्यों ?

जब तक मनुष्य प्रकृति के पथ पर चलता रहा, निरोग, दीर्घजीवी तथा सुन्दर बना रहा, किन्तु ज्यों-ज्यों वह प्रकृति माता से दूर होता गया वह बीमार, अल्पजीवी व कुरूप होता गया। प्रकृति विरुद्ध आग से पके गरिष्ठ, विकृति, अभक्ष्य पदार्थों के खाने से, अधिक कपड़े पहनने से तथा शहरों की गन्दी गलियों अंधेरे पक्के मकानों में रहने से वह बीमार हो गया और बीमार होने पर उसे अज्ञानवश औषधि-विज्ञान की शरण लेनी पड़ी।

ज्यों-ज्यों संसार में बीमारियां बढ़ने लगीं औषधियों की संख्या व चिकित्सक वर्ग की वृद्धि होने लगी। इन्हीं में शल्य चिकित्सा अथवा सर्जरी भी सम्मिलित है। मनुष्य ने बाद में शरीर शास्त्र का निर्माण किया और मुरदों को चीरकर शरीर के भीतरी भागों का अध्ययन किया और इस प्रकार ध्येय यह हुआ कि शरीर के भीतर के भागों की रचना व उनके कार्य को भली-भांति समझ लिया जाए और उनमें रोग पीड़ा या विकार उत्पन्न होने पर भी चीर-फाड़ करके उन्हें ठीक कर लिया जाए और रोगी को रोगमुक्त कर दिया जाए।

पिछले जमानों में नाई (हज्जाम) और जर्राह चीर-फाड़ किया करते थे और मनुष्य रूपी अज्ञान बकरे को उसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती थी।

लेकिन आज के सभ्य व सुसंस्कृत युग में भी वही अंध प्रथा बनी हुई है। जन साधारण का ऐसा विश्वास दृढ़ता से जमा हुआ है कि बीमार होने पर किसी दूसरे व्यक्ति से इलाज कराना ही चाहिए क्योंकि उसके ख्याल से यह असंभव है कि कोई आदमी स्वयं अपना इलाज कर सके।

अंध विश्वास तथा पराधीनता का कारण यह है कि जनता अपने शरीर तथा उसके धर्म व स्वास्थ्य संबंधी नियमों को नहीं जानती और यही कारण है कि मनुष्य डाक्टर, वैद्य व हकीमों का गुलाम बना हुआ है और उन लोगों को यह मौका देता है कि वे उसके अज्ञान से अनुचित लाभ उठावें और मनमानी करें।

इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर बाद में आयुर्वेद, एलोपैथी, हिकमत के ग्रन्थ लिखे गए और निदान और चिकित्सा (शल्य चिकित्सा आदि) पर अनेक बड़ी-बड़ी पुस्तकें रची गईं।

किन्तु इन सब प्रणालियों में एक बड़ी त्रुटि यह है कि रोग को बाहरी परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ मानती हैं जो सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि हर एक रोग शरीर में स्थित होता है, शरीर के भीतर ही उत्पन्न होता है और इसका कारण यह है कि शरीर के भीतर होने वाली पाचन क्रिया व रस बनने की क्रिया से बचे हुए आहार शेष से मल-पदार्थ बनते हैं। आहार शेष शरीर के पाचक अंगों में सड़कर उसका खमीर पैदा होता है और फिर हर धातु अपना-अपना मल भी उत्पन्न करते हैं। यह क्रियाएं रात-दिन शरीर में होती रहती हैं।

शरीर में जब मल-पदार्थ अथवा विजातीय द्रव्य इतनी अधिक मात्रा में बनते हैं कि शरीर उन्हें अच्छी तरह बाहर नहीं फेंक सकता तो यह विष अन्दर ही रह जाते हैं और हमारा शरीर विषैला, गन्दा, विकार युक्त तथा रोगी हो जाता है।

औषधि-विज्ञान वाले शरीर स्थित विजातीय द्रव्य की उस समय तक कोई छानबीन नहीं करते जब तक कि वह रोग का रूप धारण न कर ले और पीछे उसके निदान अनेक प्रकार से किए जाते हैं। पर यह प्रयास ऐसा ही निष्फल है जैसा कि घर में धन चोरी हो जाने के बाद तिजोरी खरीदना अथवा घर में आग लग चुकने के बाद कुआं खोदना—किन्तु आज देश में ऐसी ही चिकित्सा प्रणालियां प्रचलित हैं।

सरकार व जनता सभी इन पद्धतियों के अन्ध भक्त हैं, पर यह ध्यान रहे कि ऐसे इलाज कोई महत्व नहीं रखते, कारण सच्चा निदान न करके रोग के लक्षणों को दबाने की कोशिश की जाती है।

मनुष्य ने अपना जीवन बहुत अधिक प्रकृति विरुद्ध बना लिया है और वह इसीलिए सदा बीमार भी रहता है, और यही रोग वृद्धि औषधियों, इंजेक्शनों व शल्य चिकित्सा आदि की वृद्धि का तथा आविष्कार का प्रधान कारण है।

अगर डाक्टर बनने में ६ साल लगते हैं तो सर्जन बनने में ८ साल चाहिए और शल्य चिकित्सा अथवा सर्जरी की उच्चतम शिक्षा व अनुभव के लिए और भी दो वर्ष लग जाते हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि जब तक अनेक निर्दोष मूक जानवरों की हत्या करके उनके शरीर के भीतरी भागों को काट-काटकर उन्हें ध्यानपूर्वक न देखा जाए तब तक तो शरीर शल्य का ज्ञान ही नहीं हो सकता।

जब तक स्वास्थ्य लाभ व जीवन दान की मधुर आशा लगाकर इलाज के लिए सर्जन डाक्टर महोदय की शरण में आये हुए मनुष्य रूपी सैंकड़ों अज्ञान बकरों के पेट, आंतें, गुरदे आदि भीतरी अंगों को चीर-फाड़ काटा-कूटी करके डाक्टर साहब उन अंगों-प्रत्यंगों व उनके अन्दर होने वाली गुप्त क्रियाओं का अध्ययन व मनन न कर लें तब तक वे विशेषज्ञ बनकर (M.D.) एम० डी० की डिगरी नहीं पा सकते। चाहे उनमें ७५ फीसदी या इससे भी अधिक आपरेशन की मेज पर ही समाप्त क्यों न हो जाएं—क्यों न हों शल्य चिकित्सा का दरजा भी तो सबसे ऊंचा है।

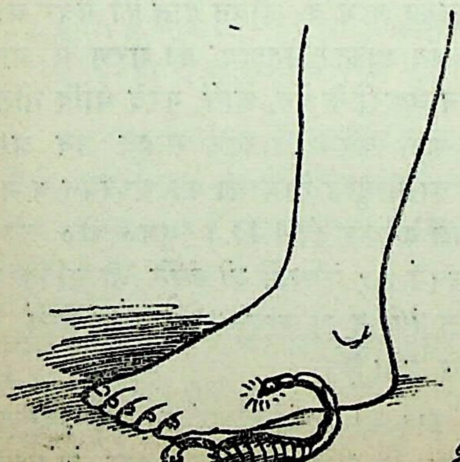
अब मैं 'चीर फाड़ की आवश्यकता' का वर्णन करूंगा और साथ ही यह भी बताऊंगा कि सर्जन, डाक्टर जनता के अज्ञान व भय से अनुचित लाभ उठाकर, प्रचुर धन के लोभ से अथवा नाम कमाने के लालच से किस प्रकार मनुष्य के अमूल्य जीवन के साथ खिलवाड़ करते हैं और किस प्रकार असंख्या, अनावश्यक प्राणघातक आपरेशन

रोजाना किए जाते हैं, जिनके बिना निश्चित रूप से प्राणा रक्षा की जा सकती है।

एक प्रसिद्ध गोलेव नाम के विशेषज्ञ सर्जन डाक्टर साहब ने बताया था कि सच पूछा जाए तो टांसिल बिना चीर-फाड़ के अवश्य अच्छे होते हैं, लेकिन इन्हीं महाशय ने डाक्टरों की सभा में व्याख्यान देते हुए कहा कि यदि बिना चीर-फाड़ हो टांसिल अच्छे हो जाएं तो हमारा रोजगार हो चौपट हो जाएगा और सारे औजार व्यर्थ होंगे।

क्यों न हों इन सर्जन महोदय को शल्य चिकित्सा से आपरेशन करके टांसिल निकालने की फीस हर आपरेशन पर २००) से ३००) मिलती थी और मनुष्य स्वभाव के कारण वह इतनी बड़ी रकम का लोभ नहीं छोड़ सकता था।

विलायत के प्रसिद्ध सर्जन डाक्टर चार्ल्समेयो M. D. ने कई वर्ष हुए बताया था कि आज के अन्दरूनी आपरेशन या चीर-फाड़



१४

के इलाज सर्वथा अनावश्यक होते हैं और इनकी जरूरत भी नहीं है।

इन डाक्टर साहब ने भी बात को बहुत बढ़ाकर कहा है। वास्तव

में तो अमेरिका के संसार प्रसिद्ध माननीय सर्जन डाक्टर विलियम हावर्ड हे M. D. ने अपनी पुस्तक 'न्यूहेल्थ एरा' में लिखा है—'यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि आज जितने भी अन्दरूनी आपरेशन (आन्तरिक शल्य क्रिया) किए जाते हैं वे ९९ फीसदी सर्वथा अनावश्यक हैं और उनके बिना भली-भांति प्राकृतिक उपचारों से इलाज किया जा सकता है। और शेष एक फीसदी आपरेशन भी किसी ऐसे विद्वान अनुभवी सर्जन के द्वारा किए जाने चाहिए, जिसने कार्यों द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया हो कि वह इस योग्य है कि शरीर रूपी मशीन को कोई हानि पहुंचाए बिना अन्दर से खोलकर फिर से ठीक कर देगा और प्राणों की हानि की संभावना नहीं होगी।'

लेकिन आज की दशा बड़ी विचित्र है। आज कोई भी डाक्टर जिसे एम० बी० बी० एस० की डिगरी मिल जाय वही हर प्रकार की शल्य क्रिया का कानूनी अधिकारी हो जाता है चाहे ऐसे आपरेशन जैसा अब करने वाला है उसके पहले कभी किए हों। यदि बेचारा अभागा रोगी आपरेशन में खत्म हो जाता है तो अफसोस जाहिर करके सर्जन साहब चुप हो जाते हैं और वे दोषी नहीं ठहराए जाते हैं क्योंकि डिगरीधारी होते हुए चीर फाड़ के लिए केवल घर वालों व रोगी की स्वीकृति ही पर्याप्त है फिर उन सर्जन साहब के विरुद्ध कोई आरोप नहीं लग सकता चाहे लोभवश अनुचित उपायों से उन्होंने रोगी के हृदय में ऐसा भय भी क्यों न पैदा किया हो कि शल्य क्रिया कराए बिना उस की प्राण रक्षा असंभव है।

अफसोस ! क्या ही अच्छा हो, तथा कितनी सरलता से रोगियों के हृदय का यह झूठा डर निकल सकता है यदि लोग थोड़ा कष्ट उठाकर अपने शरीर के बारे में कुछ जानें—स्वास्थ्य रक्षा के नियम सीखलें और साथ ही यह समझें कि किन कारणों से हम बीमार हुए हैं और किन उपायों से बिना दवा बिना चीर-फाड़ हम रोग समूह से मुक्त हो सकते हैं।

स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का ज्ञान न होना ही इस भय का प्रधान

कारण है और जनता के इसी अज्ञान के कारण सर्जन, डाक्टर बढ़ते जा रहे हैं और फल-फूल रहे हैं।

यदि आप रोग के सच्चे कारण जानते हैं और शरीर को सदा नीरोग व स्वस्थ रखना भी जानते हैं और प्रकृति के अनुकूल जीवन बिताते हैं तो आप डाक्टर, वैद्य, हकीम या सर्जन की ओर मुस्कुरा सकते हैं और मजाक उड़ा सकते हैं, क्योंकि उस हालत में आपको उनकी सलाह की कभी जरूरत ही नहीं होगी।

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार के साथ जब मनुष्य इस योग्य बन जायगा कि अपने शरीर के रोगों के कारण जान लेगा और इलाज के ढंग भी सीख लेगा तो फिर धीरे-धीरे डाक्टर, सर्जन, हकीम, वैद्य स्वयं अनावश्यक हो जाएंगे। यह मानव स्वभाव है कि शल्य क्रिया (चीर-फाड़) के नाम से ही घबराता है और आपरेशन टेबल पर जाते समय तो वह भय के मारे कांपने लगता है और अपनी मृत्यु के डर से स्वयं अधमरा हो जाता है।

सर्जरी या शल्य चिकित्सा एक उच्च, आवश्यक विद्या है किन्तु आज उसका भारी दुरुपयोग हो रहा है। जिस सर्जन, डाक्टर के हाथ से आपरेशन खराब हो जाए और रोगी मर जाय उसकी विधि पूर्वक जांच की जानी चाहिए कि संबंधित आपरेशन आवश्यक था या नहीं और सर्जन महाशय इस आपरेशन करने के योग्य थे या नहीं—और अगर जांच पड़ताल और छानबीन से यह सिद्ध हो जाए कि शल्य क्रिया (आपरेशन) अनावश्यक था और उस रोग को अन्य उपायों से अच्छा किया जा सकता था अथवा सर्जन महोदय ही आपरेशन करने के योग्य न थे तो फिर उन सर्जन महोदय को उसका दण्ड मिलना चाहिए। उन पर जुरमाना किया जाए सजा कैद की जाए या उनका लाइसेंस रद्द किया जाना चाहिए। अगर सरकार ऐसा नियम बना दे तो अनावश्यक चीर-फाड़ बंद हो जाएगी और लाखों अनमोल जानें भी मरने से बचाई जा सकेंगी।

लेकिन जब तक सर्जन, डाक्टरों या वैद्यों के कामों पर नियंत्रण नहीं होगा और लापरवाही अथवा लोभवश उनके हाथ से न होने योग्य मौतें हो जाने पर भी उनके विरुद्ध अभियोग नहीं चलाए जाएंगे तब तक अभागे अज्ञान मनुष्य रूपी बकरे और स्त्री रूपी बकरी सर्जन, डाक्टर, वैद्य, हकीम रूपी महाकाली देवी को भेंट चढ़ते ही रहेंगे और इस भेंट की कोई सुनाई न होगी।

आज के सभ्ययुग में मिल या कारखानों में चोट आ जाने पर मालिकों के विरुद्ध हरजाने का दावा होकर डिगरी मिलती है, रेल के सफर में भी कंपनी की लापरवाही से चोट या मृत्यु का हरजाना मिलता है, लेकिन सर्जन, डाक्टरों के विरुद्ध कहीं कोई आवाज ही नहीं उठा सकता।

यह जानते हुए कि अमुक आपरेशन या चीर-फाड़ अनावश्यक है और उस आपरेशन के अयोग्य होने पर भी उसको कर डालता है फिर भी उस सर्जन डाक्टर के विरुद्ध कोई मुकद्दमा नहीं चलाया जाता, क्योंकि कानून की धारणा ऐसी है कि सर्जन, डाक्टर कोई अपराध या भूल नहीं कर सकता और डिग्री प्राप्त करने पर व लाइसेंस ले लेने के बाद उसे उसके अपराध की सजा नहीं मिल सकती।

लेकिन अब जमाना बदल चुका है। अब राजनैतिक स्वराज्य स्थापित हो चुका है, अब भारत विदेशी साम्राज्य की गुलामी से मुक्त हो चुका है तो शारीरिक स्वराज्य के दिन भी दूर नहीं हैं। अब समय आने वाला है जब सर्जन, डाक्टर, वैद्य, हकीमों की मनमानी नहीं चलेगी उनके इलाजों तथा चीर-फाड़ की विधि-पूर्वक जांच-पड़तालें की जाएंगी। वे अपने स्वार्थ व लोभ के वशीभूत होकर शरीर रूपी अनमोल मशीन को नष्ट-भ्रष्ट या तोड़-फोड़ नहीं सकेंगे—यदि ऐसा नहीं किया जाएगा तो अनावश्यक चीर-फाड़ के कारण हमारे देश में सर्वत्र असंख्य ऐसे मनुष्य दिखाई देने लगेंगे जो अंगहीन हो गए हैं। किसी के एपेण्डिक्स (आंत का भाग) नहीं है, किसी के टांसिल नहीं है किसी

के एक हाथ है, किसी के एक पांव है, ऐसे अंगहीन कुरूप अपाहिज अभागे मनुष्यों की संख्या देश में बहुत बढ़ जाएगी।

सर्जन लोग यह दलील दे सकते हैं कि शल्य चिकित्सा बड़ी ऊंची विद्या है, इसके द्वारा बहुधा लोगों को मरने से बचाया जा सकता है। वास्तव में किसी हद तक यह सब सच भी है, लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि जो रोग अन्य सरल नैसर्गिक उपायों से दूर किये जा सकें उनमें भी आपरेशन करके रोगी के प्राण संकट में डाले जाएं और उसकी शरीर की मशीन के आवश्यक भाग को काटकर निकाल दिया जाए, जिससे वह सदा के लिए बेकार, अंगहीन व अल्पजीवी बन जाए।

लेखक ने स्वयं ऐसे अनेक अभागे अंगहीन लूले-लंगड़े खोड़े रोगियों को देखा है जिन्होंने शल्य क्रिया द्वारा अपने शरीर के भागों को कटवा दिया है और जिनका स्वास्थ्य पहले से बहुत ही बिगड़ा हुआ है, फिर भी यह अंध विश्वास उन रोगियों के हृदय में जमा हुआ है कि अगर हम आपरेशन नहीं कराते तो बच नहीं सकते थे।

अगर इन भोले अज्ञान रोगियों व अंगहीन व्यक्तियों को सच्चा ज्ञान हो जाता और वे जान जाते कि सचमुच प्राकृतिक उपायों से उनका रोग दूर हो सकता था और फिर उनका भावी स्वास्थ्य बहुत ही उत्तम होता तो वे अपनी भूल पर भारी पश्चाताप करते और आपरेशन करने वाले सर्जन, डाक्टर महोदय को गालियां देते न कि देवता समझकर पूजते जैसा अब हो रहा है।

लेकिन इतना होने पर भी क्या आप यह आशा कर सकते हैं कि सर्जन, डाक्टर अपनी इस भारी आजीविका व अपार धन राशि का, जो इसके द्वारा प्राप्त हुई है, मोह छोड़ देंगे? सर्जन अथवा शल्य चिकित्सा सम्मान बहुत बढ़ाती है, उसके द्वारा बहुत धन मिलता है क्योंकि आपरेशन करना बड़ा टेढ़ा व जिम्मेदारी व चतुराई का काम है और अक्सर धनवान लोग व बड़े आदमी ही अधिक चीरफाड़ कराते हैं।

यदि आज सरकार सर्जन, डाक्टरों द्वारा होने वाले आपरेशनों की फीस निश्चित कर दे और हुक्म दे दे कि कोई सर्जन निर्धारित साधारण फीस से अधिक नहीं ले सकता तो वास्तव में अनावश्यक चीरफाड़ बहुत ही कम होने लग जाए आशा स्वतन्त्र भारत की सरकार इस पर गम्भीर विचार करेगी।

जो सर्जन, डाक्टर प्रसिद्ध होना चाहते हैं अथवा धनवान बनना चाहते हैं वे ही हमेशा अनावश्यक व अधिक संख्या में आपरेशन करते हैं। यही लोभ उन्हें रोगियों के जीवन के साथ] खिलवाड़ करके अनावश्यक चीर-फाड़ करने पर मजबूर करता है।

आगे चलकर डाक्टर वि० हा० हे एम. डी. अपनी पुस्तक में लिखते हैं—"एपेण्डिसाइटीज (अंत्र वृद्धि) रोग को सर्व-साधारण चीर-फाड़ का रोग समझते हैं और उनका विश्वास जमा हुआ है कि और किसी उपाय से यह रोग समूल नष्ट नहीं होता, परन्तु यह भयंकर भूल है। पिछले २६ वर्षों में एपेंडिसाइटीज के हजारों रोगी इलाज के लिए मेरे पास आए। किसी भी एपेंडिसाइटीज के रोगी के इलाज में चीर-फाड़ की जरूरत नहीं पड़ी और किसी भी सर्जन को इन रोगियों को देखने या बात करने की आज्ञा नहीं दी गई थी।"

आज तक भी इस रक्त हीन सरल नैसर्गिक चिकित्सा से कोई रोगी नहीं मरा। चार सौ से भी अधिक हर प्रकार की एपेंडिसाइटीज के रोगी बिना किसी शल्य क्रिया किए, बिना कोई जड़ी, बूटी या दवा खिलाए सर्वथा रोग मुक्त हो गए।

इलाज इस प्रकार किया गया—

रोजाना बीमारों को एनीमा देकर उनकी आंतें साफ की जाती थीं। उन्हें कोई चीज भी खाने या पीने को नहीं दी जाती थी और विधि पूर्वक बर्फ की थैली उनकी आंत (सूजन व पीड़ा के स्थान) पर रखी जाती थीं। इन रोगियों में १९ रोगी ऐसे भी थे जिनके रपचर (छेद) हो गया था और बाद में अपना इलाज कराने आए

थे। इस प्रकार एक रोगी की भी जीव हानि नहीं हुई और केवल प्राकृतिक चिकित्सा से सब रोग मुक्त होकर घर चले गए।

क्या हमारे देश के डाक्टर या सर्जन उपरोक्त महानुभावों के अनुभव से लाभ उठावेंगे ? आज जन साधारण में यह भावना दृढ़ता से फैली हुई है कि बिना चीर-फाड़ इस रोग का मिटना असंभव है और यदि सर्जन, डाक्टरों के समूह में यह कह दिया जाय कि बिना चीर-फाड़ ही एनीमा, लंघन व दूध के प्रयोग से यह रोग मिट सकता है तो वे घृणा की हंसी हंसेंगे, क्योंकि उनका दृढ़ विश्वास है कि बिना आपरेशन यह रोग नहीं जा सकता और जो लोग ऐसा कहते हैं वे ढोंगी या मूर्ख हैं।

जब एपेंडिसाइटीज जैसे कठिन रोग से, जिसे सर्व साधारण बिना चीर-फाड़ किए अच्छा होना असंभव समझते हैं, वही बिना चीर-फाड़, बिना दवा खाए सर्वथा अच्छा हो सकता है, और चार-पांच सौ बीमारों में से एक भी अच्छा हुए बिना नहीं रहा सब ठीक हो चुके और उनमें से एक भी नहीं मरा। तो क्या यह सिद्धांत सर्वथा सत्य सिद्ध नहीं हुआ कि एपेंडिसाइटीज रोग बिना चीर-फाड़ प्राकृतिक चिकित्सा से अवश्य स्थाई रूप से ठीक किया जा सकता है ?

ऐसा होने पर भी लोग यदि शल्य क्रिया में अंध विश्वास बनाये रखें और अपना अनमोल शरीर व धन सर्जनों की भेंट चढ़ावें तो यह बड़े दुर्भाग्य की बात है। साथ ही जो सर्जन, डाक्टर जान बूझकर अनावश्यक चीर-फाड़ करें क्या वे दण्ड के योग्य नहीं हैं ? क्या यह सरकार का कर्त्तव्य नहीं है कि देश में शारीरिक स्वराज्य का प्रचार करे ?

लेकिन आज तो एपेंडिसाइटीज का नाम आते ही चारों तरफ से राय दी जाती है कि आपरेशन कराओ वरना रोग बढ़ जायगा।

नित्य प्रति हम लोग यही सुनते हैं व समाचार पत्रों में भी यही रोज पढ़ते हैं कि फलां मनुष्य बड़ा तन्दुरुस्त था, लेकिन न जाने क्यों

अचानक उसे एपेंडिसाइटीज (अंत्र वृद्धि व सूजन) रोग हो गया। घर वाले, अड़ौसी-पड़ौसी तथा वैद्यों ने भी झट राय दे दी कि भाई जल्द आपरेशन होना जरूरी है अन्यथा रपचर (हरनिया) हो जायगा। सर्व सम्मति से फौरन डाक्टरों द्वारा आपरेशन किया जाता है और बहुधा आपरेशन टेबल पर ही रोगी सदा के लिए संसार से विदा हो जाता है और लोग इसे ईश्वर की इच्छा समझकर चुप हो जाते हैं। और अगर कोई बच जाता है तो सदा के लिए रक्तहीन तथा मलावरोध ग्रसित बनकर कष्ट भोगता रहता है।

टांसिलों के बारे में भी यही हाल है। किसी भी टासिल के आपरेशन की जरूरत नहीं है और अमेरिका में इस बात की जांच करने पर पता चला कि उन हजारों टांसिलों में से, जिन्हें शल्य क्रिया के द्वारा काटकर निकाला गया केवल सौ पीछे सात ही विकृत (खराब) थे, बाकी ठीक थे।

क्या यह अनावश्यक चीर-फाड़ नहीं है? और क्या सर्जन या डाक्टर जो ऐसी बिना चीर-फाड़ काटा-कूटी कर डालते हैं दण्ड के योग्य नहीं हैं? अवश्य! उन्हें क्या अधिकार है कि देव रूप मनुष्य शरीर पर इस तरह स्वतन्त्रता से चाकू का प्रयोग करें। इसका उपाय यही है कि सरकार अनावश्यक चीर-फाड़ पर नियन्त्रण लगा दे और यह तय कर दे कि केवल अत्यन्त आवश्यक मामलों के सिवा जो सर्जन या डाक्टर अनावश्यक अनुपयुक्त चीर-फाड़ करेंगे वे दण्ड के भागी होंगे।

साथ ही जनता का कर्त्तव्य है कि वह स्वयं अपने शरीर के बारे में कुछ जानने का कष्ट करे और प्रकृति के अनुकूल जीवन बिताकर अपने शरीर में रोग उत्पन्न ही न होने दे ताकि दवा या चीर-फाड़ की नौबत ही न आवे—लेकिन अगर लोग पहले की तरह अपने शरीर के बारे में मूर्ख व अनजान ही बने रहेंगे तो उन्हें रोग अवश्य घेरे रहेंगे और फिर उन्हें दवा भी लेनी पड़ेगी और चीर-फाड़ की भी

नौबत आ जायगी—वैद्य या डाक्टरों से यह आशा कभी नहीं करनी चाहिए कि वे आये हुए शिकार को छोड़ देंगे, क्योंकि यही तो उनकी आजीविका है और इसी के लिए उन्होंने बहुत साधन व समय खर्च करके एम० डी० या एम० बी० बी० एस० की डिगरी प्राप्त की है।

बस ! इससे यह सिद्धान्त निकला कि हम अपने शरीर के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं कि किन कारणों से रोग हमारे शरीर में उत्पन्न होते हैं और ज्ञान के न होने से हमें जीवन के लिए भ्रम पैदा हो जाता है और प्राणों के नाश के भय से हम हर उस इलाज को स्वीकार कर लेते हैं जिससे हमें आशा हो जाय कि इसके करने से हम रोग रहित हो जायेंगे और मृत्यु से भी बच जायेंगे।

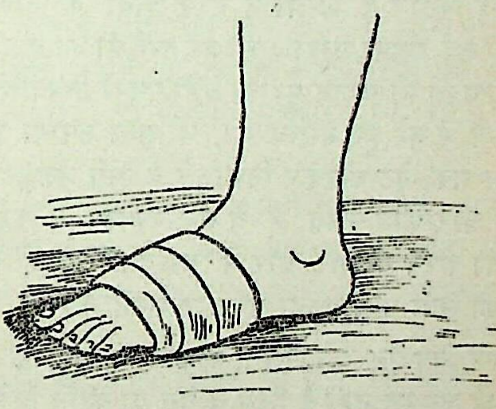
सर्जरी या शल्य चिकित्सा के व्यापक प्रचार का मुख्य कारण तो हमारी स्वयं की अनभिज्ञता व रोगों से भय होता ही है और कुछ दोष सर्जन व डाक्टरों का है जो हमारे अज्ञान व भय से अनुचित लाभ उठाते हैं और अपने लाभ के विचार से हमारे शरीरों को जोखिम में डालते हैं।

इसका इलाज तो बड़ा ही सरल और अचूक है अर्थात् यह कि प्रकृति विरुद्ध आहार के कारण हम स्वयं ही अपने को बीमार बनाते हैं और प्रकृति की ओर लौटने पर हम स्वयं बिना दवा बिना, चीर-फाड़ के अवश्य स्वस्थ व रोग मुक्त हो सकते हैं।

आपरेशन करने से जीवनी शक्ति कमजोर होती है, हृदय भी दुर्बल होता है, आयु घटती है और शरीर स्थित विजातीय द्रव्य नष्ट नहीं होता; केवल रोग के लक्षण (वाह्य लक्षण) ही हटते हैं।

अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान सर्जन डाक्टर विलियम हाबर्ड हे एम० डी० स्वयं १६ वर्ष तक अमेरिका में सर्जन रहे और हजारों रोगियों का इलाज अनेक प्रकार की शल्य क्रियाओं (आपरेशनों) द्वारा करने पर उन्हें घृणित चिकित्सा अथवा खूनी इलाज से वैराग्य हो गया। उन्हें

भली-भांति विश्वास व अनुभव भी हो गया कि उनके हाथ से अनेक अनावश्यक आपरेशन हुए जिनकी कोई जरूरत नहीं थी और यह कि उनके चीर-फाड़ के कारण अनेक ऐसी मौतें हो गई, जो नहीं होनी चाहिए थीं—साथ ही उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें यह प्रेरणा की कि इस राक्षसी चिकित्सा प्रणाली से सर्वथा हाथ खींच लिया जाय और कभी न चूकने वाले रामबाण उपचारों द्वारा रोगियों का इलाज किया जाय। अतः विद्वान डाक्टर हे ने सबसे पहले, चीर-फाड़ के योग्य



२५

समझे जाने वाले रोग एपेंडिसाइटीज, टांसिल, फोड़े, नासूर, भगन्दर, कंठवेल गर्भाशय के रोग आदि का इलाज बिना चीर-फाड़ किया। उन्होंने केवल लंघन, फलाहार, एनीमा, जल व बर्फ, मिट्टी व भाप के प्रयोगों से ही हजारों उपरोक्त रोगों को अच्छा करके सिद्ध कर दिया कि प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली द्वारा ही संसार रोग मुक्त, स्वस्थ व दीर्घजीवी बन सकता है और यह कि दवाइयों, इंजेक्शनों, चेचक के टीके से या चीर-फाड़ से रोग मुक्ति, स्वास्थ्य या दीर्घ जीवन की आशा करना भयानक भूल है, सख्त गलती है और घातक प्रथा है।

आगे चलकर डाक्टर हे ने लिखा है—"आकस्मिक हुई दुर्घटनाएं तथा शरीर के किन्हीं हिस्सों के अन्दर या बाहर मांस वृद्धि आदि हो जाना या कोई गम्भीर रुकावट हो जाना, गहरे घाव, हड्डी टूटना आदि ऐसी बातें हैं जो भाग्य से सम्बन्ध रखती हैं और हमारा इन पर कोई भी जोर नहीं चल सकता और न हम सदा दुर्घटनाओं अथवा दैवी विपत्तियों से ही बच सकते हैं।

इसलिए जो सर्जन या डाक्टर, जर्राह आदि टूटी हड्डियां जोड़ते हैं, उतरे हुए जोड़ बिठाते हैं शस्त्रों के गहरे घावों को ठीक करते हैं, शरीर में चुभी हुई अथवा अन्दर घुसी हुई वस्तुओं को बाहर निकालते हैं अथवा कोई बहुत ही कठिन पुरानी बड़ी पथरी निकालते हैं अथवा स्त्री के गर्भाशय में मरे हुए बालक को, जो अन्य उपायों द्वारा बाहर न निकाला जा सके, पेट चीरकर निकालते हैं ऐसी मजबूरी व जरूरी हालतों में जो चीर-फाड़ करते हैं वे सब डाक्टर व सर्जन प्रशंसा, आदर एवं पूजा करने योग्य हैं और वे वास्तव में शस्त्र क्रिया द्वारा पीड़ित जनों की सेवा तथा सच्चा उपकार करते हैं।"

किन्तु इसके विपरीत जो सर्जन, डाक्टर अनावश्यक चीर-फाड़ करते हैं जिसकी जरूरत नहीं है जिसे वे धन या कीर्ति के लोभ अथवा उत्सुकता के वशीभूत होकर करते हैं, वे अन्याय करते हैं और वे आदर के योग्य नहीं हैं; बल्कि वे नरहत्या करने अथवा लोगों को अंगहीन कुरूप, अपाहिज बनाने के दोषी हैं जैसा कि आज हम आंखों देख रहे हैं।

अगर इस मामले की भली-भांति छान-बीन व जांच-पड़ताल की जावे कि किन-किन अवस्थाओं में भीतर या बाहर के अंगों पर शस्त्र क्रिया करना जरूरी है तो आपको यह जानकर महान आश्चर्य तथा विस्मय होगा कि केवल एक फीसदी आपरेशन तो जरूरी हैं और ९९ फीसदी बिल्कुल बे जरूरत हैं—इतना होने पर भी क्या हमारी आंखें बन्द ही रहेंगी ?

यदि जन साधारण को यह विश्वास भी हो जाए कि अनावश्यक

चीर-फाड़ से लाखों अनमोल जानें नष्ट हो रही हैं और यह कि युद्ध अथवा महामारी से भी इतनी मौतें नहीं होतीं जितनी अनावश्यक तथा मूर्खता पूर्ण आपरेशनों से होती हैं तो भी लोग धन के भूखे मदांध सर्जन-डाक्टरों से अपना विश्वास, अंधभक्ति हटाने को तैयार नहीं होंगे और उनकी इन चेतावनियों को ब्रह्मवाक्य समझकर बिना विचारे मान लेंगे 'कि रोग में तुरन्त शस्त्र क्रिया कराओ वरना जान का खतरा है'।

अधिकांश लोग देखा-देखी मर रहे हैं—उनका विश्वास है कि सर्जन-डाक्टर हमारे फायदे की बात कहते हैं और भूल तो वे कभी करते ही नहीं और मरना तो बीमारी से भी पड़ेगा ही, इससे अच्छा यही है कि चीर-फाड़ की जोखम उठाकर भाग्य की परीक्षा क्यों न की जाए।

लेखक के आंखों देखी उसके सामने ऐसी अनेक दयनीय घटनाएं घटी हैं जिन पर तरस आए बिना नहीं रहता—मना करने पर भी उसके पिता नें मूत्र कृच्छ्र रोग में साधारण सलाई डालकर छोटा आपरेशन कराया और चौथे दिन ही मृत्यु हो गई। एक सुन्दर नौजवान लड़के ने, जिसके पेट में दर्द रहता था और जो अवश्य बिना चीर-फाड़ अच्छा हो सकता था, लोगों के बहकाने में आकर आपरेशन कराया और आपरेशन में ही सदा के लिए उसका दर्द और उसका शरीर दोनों ही चल बसे—ऐसे हजारों उदाहरण दिए जा सकते हैं।

अपने प्रत्यक्ष अनुभव का जिकर करते हुए डाक्टर हे लिखते हैं कि—"यह दृढ़ विश्वास सब लोगों का है कि सर्जन, डाक्टरों के मत के अनुसार एपेंडिसाइटीज का सिवा चीर-फाड़ के कोई इलाज है ही नहीं और अगर किसी भी डाक्टर के सामने यह जिक्र किया जाए कि प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा सूजी हुई, बढ़ी हुई आंत व उसके सब विकार फोड़ा आदि भी ठीक किए जा सकते हैं तो वह क्रोध से पागल हो जाएगा और कहने वाले को मूर्ख बतावेगा। लेकिन मैं दावे के साथ कहता हूं कि ऐसा नहीं है। पहले जब मैं कट्टर पंथी सर्जन, डाक्टर

था तब मैं भी समझता था कि एपेंडिसाइटीज का इलाज आपरेशन ही है परन्तु बाद में २६ वर्ष बराबर कई सौ ऐसे रोगियों को मैंने केवल प्राकृतिक उपचारों से ठीक किया है और एक भी उनमें से नहीं मरा।

इन कई सौ रोगियों के इलाज में, जिनमें कइयों को रपचर हो गया था, उनमें भी एक को भी चाकू छुआ तक भी नहीं गया। केवल विधि पूर्वक एनीमा देकर आंतें साफ की गईं, खाने-पीने को कुछ भी नहीं दिया गया और केवल बर्फ की थैली सूजन (पीड़ा) पर रखी गई और सूजन व फोड़ा अंदर ही फूट कर साफ हो गया और एनीमा द्वारा सब विकार बाहर निकल कर पूर्ण आराम हो गया।"

जब एपेंडिक्स में रपचर (Rupture) हो जाता है तो उस स्थान के आस-पास फौरन (Adheivebands) चिपचिपे लपेट (बंद) बन जाते हैं और पूर्ण रूप से यह भाग ढक जाता है। और यह अविचारणीय है कि प्रकृति ऐसा तात्कालिक रहस्यमय कार्य तो कर सकती है और उसकी चिकित्सा नहीं कर सकती।

लेकिन उत्सुक सर्जन महोदय चाकू से पेट को चीर डालते हैं, प्रकृति द्वारा आच्छादित झिल्ली आदि को काट डालते हैं। परिणाम स्वरूप ५० फी सदी रपचर हुए रोगी तो मर जाते हैं और उन्हें तो फीस मिल जाती है वे यह कहकर टाल देते हैं कि हम क्या करें, आपरेशन बड़ी देर से हुआ। विद्वान् सर्जन डाक्टर हे के अनुसार तो एपेंडिसाइटीज व अत्यन्त पुराने हो जाने व बढ़ जाने पर भी चीर-फाड़ सर्वथा अनावश्यक है और जल्दबाजी है, क्योंकि चीर-फाड़ करना किसी भी हालत में बड़ी ही भयानक क्रिया है, इससे प्रकृति के कार्य में भारी बाधा पड़ती है।

जब साधारण उपचार अर्थात् बस्तिक्रिया द्वारा आंतों को साफ करने और लंघन, जल की पट्टी व फलों का रस पीने से सरलतापूर्वक एपेंडिसाइटीज रपचर (हरनिया) अच्छे हो सकते हैं तो जान जोखम में

डालकर पेट चीरना भारी अपराध और अत्याचार नहीं तो क्या है ?

अमेरिका के प्राकृतिक चिकित्सालय के विद्वान् सर्जन डा० हे की रिपोर्ट है कि उनके अस्पताल में अत्यन्त बढ़ी हुई एपेंडिसाइटीज (Rupturedappendix) वाले रोगी इलाज के लिए आए और सभी बिना आपरेशन ठीक हो गए, फिर भी हमारे सर्जन, डाक्टरों को यह विश्वास नहीं होगा कि भयानक चीर-फाड़ न करके प्रतीक्षा करते हुए प्राकृतिक उपचार करना ही सर्वोत्तम मार्ग है ?

४०० से अधिक एपेंडिसाइटीज के नये-पुराने सब तरह के रोगी बिना चीर-फाड़ प्राकृतिक चिकित्सा से ठीक हो गए और एक भी रोगी नहीं मरा न चाकू छूने की आवश्यकता हुई।

एपेंडिसाइटीज का मूल कारण मलावरोध, आंतों में मल संचय ही है इसलिए पीड़ित विकृति भाग उपांत्र को काटकर फेंक देना सच्चा नहीं झूठा इलाज है। इसलिए कहना पड़ेगा कि एपेंडिसाइटीज टांसिल, हरनिया आदि रोगों में शस्त्र क्रिया सदा घातक है—केवल घाव, चोट व अन्य अंगभंग आदि में ही शस्त्रक्रिया आवश्यक है।

शरीर रूपी रुधिर मांस-हाड़ की बनी, चमड़े से ढकी हुई, सिली हुई मशीन के मुख्य भाग पाचक अंग पेट, आंतें आदि को चीरने-फाड़ने की क्रिया बड़ी भारी जोखम का काम है और हमारी राय में शायद ही ऐसा कोई प्रवीण सर्जन, डाक्टर होगा जो टूट-फूट चीर-फाड़ से होने वाली हानि पूरी कर सके और फिर से टांके देकर कल-पुर्जों को वैसा ही काम लायक बना सके। यद्यपि वह ऐसा कर सकता है कि फोड़ों को साफ कर सकता है, सूजे हुए, गले हुए अंगों को काटकर फेंक सकता है, लटके हुए गर्भाशय को ऊपर सी सकता है आदि किन्तु प्रकृति निर्मित शरीर रूपी मशीनरी के अंगों को फिर से पूर्ववत् काम के योग्य बनाना उसके हाथ की बात नहीं है।

सर्जन डाक्टरों की यह दलील झूठी है कि आपरेशन में रोगी नहीं मरा इसलिए आपरेशन सफल हो गया क्योंकि चीर-फाड़ में बहुत से

न मरने योग्य रोगियों की हत्या होती है जो कि दूसरे इलाजों से ठीक हो सकते हैं। आपरेशन में मरने वाले रोगियों की कोई चर्चा नहीं होती मानो ईश्वर ने ही उन्हें मारा है और सर्जन, डाक्टर ने लापरवाही, गलती या भूल नहीं की।

लेकिन कानून ही आजकल दूसरा बना हुआ है। वास्तव में देश में ऐसा विधान बनाया जाना अत्यन्त आवश्यक है जिसके द्वारा सर्जन, डाक्टर, वैद्यों के इलाज में होने वाली मौतों की भलो-भांति जांच की जावे और किसी भी बड़े आपरेशन से पहले सर्जन व डाक्टरों को मजबूर किया जाय कि वे विश्वास दिलावें कि अमुक रोगी के लिए आपरेशन अत्यन्त आवश्यक है यह कि बिना शल्य क्रिया उसके प्राण बचना असंभव है और यह कि वह अन्दरूनी चीर-फाड़ के सर्वथा योग्य सर्जन है और यह भी लिखे कि चीर-फाड़ से रोगी को बजाय हानि के लाभ होगा और स्वास्थ्य पहले से ज्यादा अच्छा हो जायगा।

यह कार्य तभी संभव है जब सरकार इस पर ध्यान दे, जगह-जगह विद्वान प्राकृतिक चिकित्सकों की कमेटी स्थापित करे, जिसमें यह जांच की जाय कि वास्तव में बड़ा अन्दरूनी आपरेशन किए बिना और उपायों से भी रोग दूर हो सकता है या नहीं। ऐसा न होने पर तो कहना पड़ेगा कि बेचारे रोगियों को कोई सुनबाई नहीं—सर्जन व डाक्टर उनके प्राणों के साथ खेल सकते हैं और अनावश्यक चीर-फाड़ द्वारा नर हत्या हो जाने पर भी कहीं कोई कहने-सुनने वाला ही नहीं रहा है।

क्या आपको मालूम है कि यह जीवन या मरण का प्रश्न है और याद रखिए ! जब तक रोगी स्वयं सोचकर मंजूरी नहीं दे देता, जब तक सर्जन अपने आपको सर्वथा योग्य व निपुण साबित न कर दे, तब तक उसे अनमोल मनुष्य शरीर को चीर-फाड़ की बाबत हरजाना की नालिश हो सकती है, परन्तु यह तभी संभव है, जब जन-साधारण स्वयं अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखे और स्वास्थ्य रक्षा के नियम

पालन करते हुए सर्जन, डाक्टर, वैद्यों के पास जाने का अवसर ही न आने दे।

आपरेशनों में होने वाली असंख्य मृत्यु संख्या और अनन्त कष्ट व भावी स्वास्थ्य का नाश, यह सब इस बात के प्रबल प्रमाण हैं कि यह मार्ग सच्चा नहीं और नवीन उपायों से इसका प्रतिकार होना चाहिए।

आज सर्जन, डाक्टरों के कार्यों की आलोचना ही नहीं हो सकती—वे अपनी राय से चाहे जिस रोगी को शस्त्र क्रिया के योग्य बता सकते हैं और उसे यह आदेश दे सकते हैं कि तुम्हें अमुक भाग, हाथ, टांसिल, एपेंडिक्स, उंगली आदि कटवाना ही पड़ेगा वरना हालत खतरनाक हो जायगी, चाहे रोगी यह कहे कि मुझे यह अंग बड़ा प्यारा है, मेरे बड़े काम का है।

अपनी आपरेशन की तजबीज में वे किसी दूसरे का दखल पसंद नहीं करते न रोगी की इच्छा का कोई ध्यान रखा जाता है—वास्तव में सर्जन-डाक्टरों का यह व्यवहार असह्य है और विचारशील जनता व सरकार को इस प्रश्न पर गंभीरता पूर्वक विचार करना चाहिए।

सच बात तो यह है कि हम लोग मूर्ख व अज्ञान हैं। अपने शरीर, उसकी रचना व स्वास्थ्य रक्षा के नियमों को न जानने के कारण ही वैद्य डाक्टर सर्जनों के हाथ में अपनी कीमती जान सौंपनी पड़ती है और उन लोगों के लिए भी यह बड़ी अनुचित बात है कि वे हमारे अज्ञान से अनुचित लाभ उठावें।

हम आशा करते हैं कि वह समय ईश्वर जल्द हमारे देश में लावे जब जनसाधारण स्वयं अपने शरीर को रोग रहित रखना सीख ले और भाग्यवश ऐसी व्याधि हो भी जाय जिसके लिए सर्जन, डाक्टरों की राय लेनी पड़े तो ऐसा हरगिज नहीं होना चाहिए कि उनकी राय से ही चीर-फाड़ करा ली जाय, बल्कि हर प्रांत में विद्वान् अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सकों की कमेटी कायम हो जानी चाहिए और हर

बड़े आपरेशन से पहले उनकी सम्मति ली जानी चाहिए कि वास्तव में सर्जन, डाक्टर की तजवीज ठीक है या नहीं—यदि ठीक नहीं है और वह रोग अन्य उपायों से ठीक किया जा सकता है तो हरगिज यह जोखम न उठाई जावे; बल्कि उन विशेषज्ञ विद्वानों की सम्मति से उस रोगी का इलाज कर रोगियों की प्राण रक्षा की जानी चाहिए।

किंतु यदि कोई एक आधी व्याधि इतनी अधिक हो कि उन सब अनुभवी विद्वानों की सम्मति में और कोई इलाज हो न हो या रोगी के प्राण बिना चीर-फाड़ के बचना असंभव जान पड़े तथा आपरेशन में कोई भय का कारण न जान पड़े, रोगी व सर्जन दोनों योग्य हों तो सर्जन, डाक्टर से यह लिखाया जावे कि आपरेशन की आज्ञा दी जावे।

शायद आप हमारी इस दलील पर हंसेंगे—पर जरा सोचिए—इतनी सख्त पाबंदी लग जाने से कितने फीसदी आपरेशन होंगे—बहुत कम। शायद मुश्किल से एक-दो आपरेशन होंगे और हमारी राय भी यही हैं कि १०० के पीछे ९९ आपरेशन अनावश्यक किए जाते हैं।

डाक्टर हे ने लिखा है कि ओहियो स्टेट मैडिकल सोसायटी के अनुभवी पुराने सर्जन डाक्टर जे० एफ० बाल्बिन ने शरीर के अंदरूनी हिस्सों की चीर-फाड़ के विषय में बहुत प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि बहुत-से डाक्टर तो बड़े-बड़े सर्जनों से फीस में हिस्सा लेने के लोभ से ही बड़े आपरेशन कराते हैं और बहुत-से आपरेशन बिना जरूरत किये जाते हैं।

प्रसिद्ध अमेरिकन सर्जन व डाक्टर हे का मत है कि अंदरूनी चीर-फाड़ हमारी राय में एक अनावश्यक व झूठा उपचार है, क्योंकि शरीर रूपी मशीन के अंदरूनी कल-पुरजों या हिस्सों को काटकर फेंकना, चीर-फाड़ करना एक भीषण व घातक उपचार है। रोगी के जीवन को महान् संकट में डालना है, जब तक यह प्रत्यक्ष न हो जाय कि ऐसा किए बिना किसी भी दूसरे उपाय से रोगी की प्राणरक्षा असं-

भव है अथवा रोगी को अनंत कष्ट होगा।] जैसा कि गोली अंदर रह जाने, कुछ ठोस चीज, धारदार निगल जाने, पेट में बच्चा मर जाने आदि की हालत में हो जाता है। डाक्टर हे आगे लिखते हैं कि अनेक वर्षों के अपने अनुभव से मैं कह सकता हूं कि औषधि-विज्ञान रोग-समूह को अच्छा करने में असमर्थ है। यही नहीं ऐलोपैथी के प्रचार के साथ क्षय आदि पुराने रोग बहुत बढ़ गए हैं और मेरा दावा है कि सदा ही चीर-फाड़ हो चाहे औषधियां, इंजेक्शन या टीका, शरीर पर इन सबका बड़ा घातक प्रभाव पड़ता है।

आज संसार में युद्ध या रेल, भूकम्प आदि दुर्घटनाओं के कारण हुए इतने लूले, लंगड़े, खोड़े, काने, अंग-हीन, अपाहिज व्यक्ति नहीं हैं जितने चीर-फाड़ के कारण हैं। हमें अनेक रोगियों ने कहा है और प्रत्यक्ष देखा है कि टांसिल या एपेंडिक्स कटवा देने के बाद शरीर की हालत बड़ी खराब हो जाती है। उससे आदमी मरता तो नहीं है, लेकिन आजीवन कुछ न कुछ शिकायत बनी ही रहती है। एपेंडिक्स (उपांत्र) कटवा देने के बाद रोगी को सदा कब्ज की शिकायत रहने लगती है और टांसिल निकलवा देने के बाद पाचन-क्रिया कमजोर हो जाती है, आवाज खराब हो जाती है। अक्सर जुकाम-सरदी हो जाती है, कफ व खांसी बनी रहती है और भी कई शिकायतें हो जाती हैं। सारांश जिस प्रकार घड़ी का छोटे-से-छोटा पुरजा भी निकल जाय तो घड़ी की उम्र तो घटेगी ही उसका ढांचा भी बिगड़ जायगा। यही हाल हमारे शरीर का होता है, इसलिए यदि शरीर को सदा स्वस्थ, बलवान और दीर्घजीवी रखना हो तो उसके किसी भाग को काटकर मत फेंको। प्रकृति ने शरीर के हर एक भाग को अकारण नहीं बनाया है। हर एक अंग का शरीर में रहना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसे आवश्यक भाग को व्यर्थ काटकर फेंक देना एक भयानक अत्याचार है और इसकी रोक-थाम होनी चाहिए। ऐसे अनेक जिंदा उदाहरण मौजूद हैं जहां कि बड़े-बड़े सर्जन व डाक्टरों की एक राय थी कि आपरेशन के बिना यह व्याधि अच्छी होना असंभव है। फिर भी

वे रोगी, जिन्हें एपेंडिसाइटीज, कंठबेल, नासूर, रसोली, फोड़े, अदीठ, टांसिल, पेट के फोड़े, भगंदर, बवासीर आदि रोग थे, वे सभी लगभग बिना चीर-फाड़, बिना काटा-कूटी कराए, बिना दवा खाए, बिना इंजेक्शन केवल लंघन, फलाहार, एनीमा, जल, मिट्टी व भाप आदि के प्रयोगों से सर्वथा अच्छे हो गए और सर्जन व डाक्टर आश्चर्य से चकित रह गए।

सर्जन लोगों की यह दलील कि अमुक डाक्टर ने आंतें साफ करके कांट-छांट करके बकरे की आंत रोगी के पेट में बिठा दी और रोगी अच्छा हो गया अथवा डाक्टर लोग अनेक रोगियों का पेट चीरकर टांके लगा देते हैं फिर भी रोगी मरा नहीं। यह कोई दलील नहीं है कि अन्दरूनी चीर-फाड़ से रोगी को हानि नहीं है।

जरा गम्भीरता से सोचिए और व्याधिग्रसित होते ही सर्जन व डाक्टरों की राय लेने दौड़े न जाएं। पहले और विद्वान वैद्य, हकीम, डाक्टरों से पूछिए, खासकर अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सकों से राय लीजिए अर्थात् ऐसे लोगों का मशवरा लें जो बिना चीर-फाड़ इलाज करने में निपुण हों और भय को हृदय से निकाल दीजिए, पहले और इलाज करके देख लीजिए। अपने ४० साल के अनुभव से प्रसिद्ध सर्जन डाक्टर हे लिखते हैं कि हमने भली-भांति सर्जरी (चीर-फाड़ की विद्या) को अमेरिका में प्रैक्टिस की, किंतु उस काल में हमारे हाथ से चीर-फाड़ में अनेक न होने योग्य मौतें हुईं और हमें गहरा धक्का लगा। इन्हीं कारणों से जब हमें दृढ़ विश्वास हो गया कि मानव-शरीर की व्याधियों का सच्चा इलाज चीर-फाड़ या दवाइयों से असंभव है तब हमने एलोपैथी को सर्वथा नमस्कार कर लिया और प्राकृतिक चिकित्सक बन गए।

अन्दर के फोड़े, सूजन, ढीलापन, छेद हो जाना, मांस वृद्धि, पथरी आदि व्याधियों में भी चीर-फाड़ अनावश्यक है, क्योंकि इन व्याधियों में आप लंघन करें, फलों के रस पर रहें, एनीमा लेकर पेट व आंतें साफ

रखें, विधिपूर्वक मिट्टी तथा ठंडे व गरम जल के प्रयोग करें। अवश्य पूर्ण लाभ होगा। अगर डाक्टर लोग इस बात का रिकार्ड (हिसाब) रखें कि प्रत्यक्ष रूप में आपरेशन से इतने रोगी अच्छे हुए, इतने रोगी आपरेशन के मर गए, इतने रोगियों को कोई लाभ नहीं हुआ तो वास्तव में वे इस राक्षसी चिकित्सा से ऊबकर हाथ खींच लेंगे।

आपरेशनरूम की सफाई, उसकी चमक-दमक, सजावट, औजारों की सुन्दर आलमारी अंग्रेजी ढंग पर दिखाने की आवश्यकता नहीं है; बल्कि देखना यह है कि यह प्रणाली कहां तक उपयुक्त है और किस हद तक घातक है।

चूंकि आजकल लोग बहुत बदपरहेज हो गए हैं, प्रकृति को धोका दे रहे हैं इसीलिए बीमारियां इतनी दृढ़ बन गई हैं और रोग-वृद्धि के साथ-साथ सर्जन, डाक्टरों की वृद्धि भी हो रही है। सर्जरी (चीर-फाड़) में सबसे ज्यादा पैसा मिलता है। सर्जन को तंनख्वाह व फीस औरों से ज्यादा दी जाती है, उसका मान-सम्मान अधिक होता है। यह भी कुछ कारण है जिससे लोग सर्जरी सीखकर मानव-शरीर पर जरूरी या बेजरूरी छूरी व चाकू चलाकर उस रक्त-रंजित भीषण आजीविका को ग्रहण करके प्रसन्न होते हैं। यदि लोग प्राकृतिक चिकित्सा को समझने व अपनाने लग जायें फिर अपने शरीर स्वयं नीरोग रखना सीख जायें तो चीर-फाड़ अपने आप कम हो जाएगी। इसके सिवा अगर सर्जन, डाक्टरों से जोखम का बांड लिखाया जाय तो वे लोग बहुत सोच-समझकर चीर-फाड़ करेंगे। हमारे धन को लेने वाले और साथ ही हमारे प्राणों से खिलवाड़ करने वालों से क्यों न बांड लिखाया जावे जबकि वे तगड़ी फीस चार्ज करते हैं। आखिर उनकी भी तो जिम्मेवारी है।

सबसे अच्छी बात तो यह है कि आप घर में आग लगने से पहले ही कुआं खोद लें अर्थात् शरीर को स्वाभाविक रहन-सहन द्वारा

बीमार ही मत होने दो, ताकि सर्जन व डाक्टर की भयानक छुरी

आपके शरीर को छू न सके और यदि आप चाहें तो जरूर ही ऐसा कर सकते हैं—यदि आप परहेज रखें।

अमूल्य उपदेश

याद रखिए ! मैदा की चीजें, हलवा, पूरी, मिठाइयां, आचार, ज्यादा मसाले, दवाइयां, बासी चीजें मत खाओ या कम खाओ। बजाय चीनी के गुड़ खाओ, मैदा की जगह गेहूं के बिना छनी आटे की रोटी खाओ, जहां तक बने कच्चा दूध, ताजा फल व हरो तरकारियां मेवे जात खाओ। गेहूं, मूंग, चावल आदि हल्के अन्न खाओ। रोजाना शीतल जल का एनीमा लेकर बड़ी आंत को साफ रखो। यथाशक्ति शुद्ध वायु में घूमा तथा कुछ व्यायाम भी करते रहो, शुद्ध ताजा हवा में सांस लो। कपड़े कम पहनो। खुले हवादार साफ मकानों में रहो, ताजा कुएं का जल पीओ। धूप व ठण्डी हवा से मत डरो। बिना भूख मत खाओ। मांस-मदिरा को मत छुओ। नशा मत करो।

बस! यही उपरोक्त कार्य आपको पूर्ण स्वस्थ, दीर्घजीवी बना सकते हैं और इसी मार्ग पर चलकर आप बीमारियों से बचकर सुखी हो सकते हैं और यह काम खुद ही कर सकते हैं इसलिए स्वयं ही शरीर को विकार रहित रख सकते हैं और आप अपनी करनी से डाक्टरी या आयुर्वेदिक इलाज से अपने को बचा सकते हैं, क्योंकि इन लोगों के पास जाने पर तो आप सुरक्षित रह सकें—यह बड़ी संशय की बात है।

बस ! अपना इलाज स्वयं करो। अगर अपने शरीर की रक्षा करके नीरोग रहोगे तो किसी भी इलाज की जरूरत नहीं होगी और बद-परहेजी लापरवाही करोगे तो बीमार जरूर होगे और फिर भी तो वैद्य, डाक्टर, हकीम अथवा मृत्यु के पंजे में भी शायद आपको फंसना पड़ेगा, सोच लो।

प्राकृतिक उपचार या आपरेशन

वर्तमान सभ्ययुग में विज्ञान का बोलबाला है। लोग कहते हैं कि विज्ञान ने हर तरह उन्नति की है। सबसे अधिक उन्नति औषधि-विज्ञान ने की है। उसमें भी चीर-फाड़ की विद्या अपने शिखर पर पहुंच गई है। बड़े-बड़े व छोटे-छोटे सभी मामलों में अधिकांश आपरेशन की शरण ली जाती है।

अधिकतर चीर-फाड़ फोड़े-फुन्सी, रसोली, नासूर, अण्डवृद्धि, ग्रन्थियां, मुत्र, हड्डी टूटना, गर्भ जनित रोग व उदर तथा आंतों के रोगों में नेत्ररोग व पथरी आदि में की जाती हैं। रोगी को कष्ट न हो इसलिए बेहोशी लाकर चीर-फाड़ करते हैं। मैं यह नहीं कहता कि आपरेशन हर हालत में अनावश्यक व हानिकर होता है और न आधुनिक युग में यह आशा ही की जा सकती है कि चीर-फाड़, काटा-कूटी बिल्कुल बन्द हो जाए, लेकिन इतना कहे बिना अवश्य न रहूंगा कि आज ९५ फीसदी आपरेशन बिल्कुल जरूरी नहीं है और उसके बजाय स्वाभाविक उपचारों से काम लिया जा सकता है, जिनमें न कुछ खर्च करना पड़ता है, न कुछ कष्ट उठाना पड़ता है और न भयंकर आपरेशनों से प्राण जाने का ही भय रहता है।

मगर क्या आजकल के भूले हुए औषधि-विज्ञान के गुलाम लोग चीर-फाड़ की भूल को अपने दिमाग से हटा देंगे? क्या वे सीधे-साधे स्वाभाविक उपचारों का प्रयोग करेंगे? आवश्यकता यह है कि जो लोग आपरेशन के पक्षपाती हैं उन्हें समझ लेना चाहिए कि संसार में ऐसे अचूक व सरल उपचार भी है जिनसे वे सभी कष्ट व पीड़ाएं निस्सन्देह दूर की जा सकती हैं, जिन्हें आज सर्व साधारण बिना आपरेशन असंभव, असाध्य समझते हैं। लोग पहले तो चीर-फाड़ का नाम सुनते ही डर जाते हैं और उनकी पूरी कोशिश यह रहती है कि किसी भी प्रकार बिना आपरेशन ही उनके रोग कम या नष्ट हो जाएं। पर वे जब अन्य उपाय करके निराश हो जाते हैं तो मजबूर

होकर मौत के मुंह में जाने को तैयार हो जाते हैं। जो आपरेशन कराकर जीवित रह जाते हैं वे अपने को भाग्यशाली धन्य समझते हैं। मनुष्य जाति के लिए यह भी एक पाप है। प्रकृति विरुद्ध जीवन की यह एक सजा है जो अन्य उपाय से टलना असंभव है। यह भी जानते हैं कि आरेशन हो जाने पर भी बहुतों के कष्ट नहीं मिटते। अस्तु ! अब मैं भिन्न रोगों में होने वाले आपरेशनों के कष्ट वर्णन करूंगा और साथ ही यह भी कि किन-किन उपायों से वे रोग शीघ्र ही मिलाए जा सकते हैं।

आजकल लोगों के फोड़े-फुन्सी बहुत हो जाते हैं—अस्वाभाविक खान-पान आदि से रक्त दूषित होकर मल-पदार्थ इकट्ठे हो जाते हैं, वे ही मल-पदार्थ फूटकर निकलते हैं और फोड़ों का रूप धारण कर लेते हैं। जिन लोगों की जीवन शक्ति अधिक प्रबल होती है उनके फोड़े शीघ्र पककर अपने आप फूट जाते हैं और उन्हें कष्ट नहीं होता, किन्तु कमजोर जीवन शक्ति वालों के फोड़े फूटते नहीं और कष्टप्रद हो जाते हैं। अनेक मलहम पुल्टिस बांधने पर भी नहीं फूटते और निराश रोगी फोड़े को चिरवाते हैं, और धीरे-धीरे उन्हें आराम आता है—कष्ट तो बड़ा भारी उठाना पड़ता है—मगर गीली चिकनी मिट्टी की पट्टी बराबर बांधने से फोड़े आदि शीघ्र फूटकर निश्चय अच्छे हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। कठिन मामलों में पथ्य भोजन आदि की आवश्यकता है।

इसी प्रकार रसोली भी, जो आपरेशन से काटकर फेंकी जाती है, वह भी गीली चिकनी मिट्टी की पट्टी व स्वाभाविक आहार, स्नान आदि से ठीक हो जाएगी। नासूर का भी आपरेशन किया जाता है। डाक्टरों का विश्वास है कि चीर-फाड़ से नासूर समूल नष्ट हो जाएगा परन्तु उनकी यह भूल है—जब तक नासूर से बहने वाले पीप आदि को बन्द न किया जावेगा, नासूर कभी जड़ से नहीं जायगा—अगर एक जगह छेद बन्द हो जाएगा तो दूसरी जगह फूट निकलेगा—नासूर की स्थाई चिकित्सा केवल प्राकृतिक उपचारों से ही होगी।

लेखक ने कई निराश और आपरेशन से असफल नासूर के रोगियों को स्थायी रूप से ठीक किया है, यही अनुभव किया है कि नासूर की अचूक चिकित्सा केवल प्राकृतिक चिकित्सा है, अन्य उपाय सब व्यर्थ व हानिकर होते हैं। विधि सहित केवल मिट्टी की पट्टियां व स्वाभाविक आहार, स्वाभाविक स्नान आदि से ही कठिन से कठिन असाध्य समझे जाने वाले नासूर अच्छे हो गये हैं। क्या इस ओर हम सदा ही उदासीन रहेंगे ? क्या हम सदा झूठे औषधि विज्ञान के गुलाम बने रहेंगे ? अण्ड वृद्धि रोग खासकर अमीर लोगों में पाया जाता है और इसमें भी चीर-फाड़ ही की जाती है, क्योंकि



२६

सर्व साधारण चीर-फाड़ के सिवाय इसके दूसरे उपचार जानते ही नहीं। मगर यह चीर-फाड़ खतरनाक होती है। अक्सर मौतें हो जाती हैं। बहुत-से रोगी फोतों से पानी निकलवा देते हैं, मगर शीघ्र ही धीरे-धीरे उनके फोतों में फिर पानी भर जाता है, वे बड़ा कष्ट उठाते हैं। वास्तव में अण्ड बृद्धि की स्थायी चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा ही है। जब तक उदर में पानी बनता रहेगा बराबर फोते बढ़ेंगे, इसमें चीर-फाड़ क्या कर सकती है ? फोतों में भरा हुआ पानी

व अन्य पदार्थ निकल जायं और फिर उनका बनना बन्द किया जाय, तभी अण्डवृद्धि रोग स्थायी रूप से अच्छा हो हकता है, यह तभी हो सकता है जब विधि पूर्व मिट्टी के प्रयोग किये जावें और स्वाभाविक आहार आदि उपचार साथ-साथ किये जावें। फिर हमें अंड वृद्धि रोग मिटाना बायें हाथ का खेल नजर आयेगा। मगर आज तो सब जगह सर्जरी विद्या आदि का साम्राज्य है, सीधे-सादे प्राकृतिक उपचारों को कौन मानता है ?

गर्भ जनित बालक अन्दर रह जाता है और मर जाता है। डाक्टर पेट के अन्दर उसे काटकर टुकड़े करके निकालते हैं जो कष्ट और बेशरमी बेचारी स्त्रियों को उठानी पड़ती है उसे ईश्वर ही जानता है। अक्सर मौत हो जाती है, पर इसकी चिन्ता किसे है ? जिन्हें चिन्ता है, उन्हें इस विषय से बिलकुल अनभिज्ञता है और जो जानते हैं उनकी जेब गरम होने का यह अच्छा मौका हाथ लगता है। उनकी रोजी तो हमारी अज्ञानता और रोगों पर ही निर्भर है।

इस विषय में इतना ही कहना है जिनके घर में स्त्रियां ऐसे कष्ट पाती हैं उन्हें प्राकृतिक चिकित्सा को समझ कर स्त्रियों को स्वाभाविक रहन-सहन सीखना चाहिए, ताकि उन्हें यह दुर्दिन न देखना पड़े। यदि अभाग्यवश ऐसा समय आ जाय तो प्रसव पीड़ा होते ही गर्भिणी के पेट पर गीली चिकनी मिट्टी की पट्टी विधिपूर्वक बांधना चाहिए। इससे बालक शीघ्र बाहर आ जायेगा और अन्य रक्तादि की ग्रन्थियां आदि भी शीघ्र ही निकल आवेंगी। इसके लिए सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा का सीखना आवश्यक है तभी सच्चा कल्याण हो सकता है। क्या ही अच्छा हो यदि ये सब बातें हमारी स्त्रियां सीख जाये, फिर भय न रहेगा। उदर, आंतों के रोग व अन्य रोग, जो स्वाभाविक रहन-सहन से होते हैं, सभी मिट्टी की पट्टियों व स्वाभाविक उपचारों से ठीक हो सकते हैं। हम लोग आजकल सच्चे निदान से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। मलमूत्र बन्द हो जाने पर लोग कई लेप करते फिरते हैं और आखिर में सलाई डलवा कर मलमूत्र कराया जाता है जिससे

अक्सर मर भी जाते हैं। सीधी-साधी मिट्टी की पट्टियों से अवश्य सफलता मिलेगी। मैं ऐसे कई रोगियों को जानता हूं जिन्हें अंग्रेज डाक्टरों ने आपरेशन कराने को कहा था और यह कहा था कि चीर-फाड़ के बिना बड़ा खतरा है। और वे ही रोग अदीठ, हाथ गलना, गुस आदि अन्य स्वाभाविक उपचारों के साथ-साथ केवल गीली चिकनी मिट्टी की पट्टियों से ठीक हो गये। लोगों ने आश्चर्य प्रकट किया, फिर भी हम लोगों की आंखें इस चिकित्सा प्रणाली की ओर से बन्द हैं।

जो लोग अपार कष्ट उठाते हैं और अपने रोगों की चिकित्सा असम्भव समझते हैं उन्हें अवश्य एक बार अचूक और दैवी प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली की परीक्षा करनी चाहिए। फिर उन्हें इसके प्रभाव पर आश्चर्य होगा। अन्त में पाठकों से मेरी प्रार्थना है कि वे ध्यान पूर्वक इसका मनन करें और परीक्षा भी करें। वास्तव में सबसे बड़ा धर्म कहा है कि दुखी, रोगी मनुष्यों का रोग व दुख दूर कर दिया जाय और मेरी समझ में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार करने से ही देश का सच्चा कल्याण हो सकता है, सर्जरी से नहीं।

कैंसर, मोतियाबिंद और पथरी

आज के सभ्य युग में बदगोश्त (कैंसर), मोतियाबिंद, पथरी आदि रोग तेजी से फैलकर मानव-समाज का भक्षण कर रहे हैं। जो लोग इन रोगों के शिकार होते हैं उनकी जांच करने पर पता चला है कि उनके शरीर में विटामिन की कमी है जैसाकि अमरीका के चरोपैथिक एसोसिएशन ने प्रकट किया है।

कैंसर और मोतियाबिंद के रोगी के बाल भूरे या सफेद होने लगते हैं और अक्सर उन्हें रतौंधी (Night blindness) रोग भी होता है—इसका भी कारण उनके शरीर में विटामिन ए की भारी कमी है। यह डा. कार्लटन M. D. अमरीका का मत है।

इस विटामिन ए की कमी क्यों होती है ? इसका कारण यही है कि लोग स्वास्थ्य रक्षा के नियमों को नहीं जानते और अनाप-शनाप मुरदा खुराक खाते रहते हैं। इसलिए इन रोगों से बचना हो तो प्रकृति की ओर लौटो ।

बड़े खेद का विषय है कि आज हमारे किसान तम्बाकू, अफीम, पोस्त आदि घातक वस्तुएं उगाते हैं पर हरे शाक, फल आदि का उन्हें शौक नहीं है। दूध का भी आजकल अभाव है। अव्वल तो वैसे ही राक्षस लोग गायों का वध कर डालते हैं, फिर रहा सहा पैसे के लोभी व्यापारी व दूध बेचने वाले दूध का मक्खन निकाल लेते हैं या पानी मिला देते है। इसके सिवा उस सारहीन दूध को भी खूब औटाकर हम बिलकुल निकम्मा बनाकर पीते हैं—तब भला रोग क्यों न आवेंगे।

अच्छा हो लोग बादाम, पिस्ता या खोपरे का विधि पूर्वक सेवन करें क्योंकि इससे उनके शरीर को नैसर्गिक तैल मिल जायगा। जो लोग मछली के तेल या अन्य प्राणियों के जिगर या अण्डे खाने की राय देते हैं उनसे हम सहमत नहीं है। दूसरे के प्राणों का हरण करके अपने प्राण बचाना यह महा नीचता व घोर पाप है। लोग मक्खन, कच्चा धारोष्ण दूध, मलाई, हरे शाक, गाजर, टमाटर नहीं खाते जिनमें विटामिन प्रचुर मात्रा में होता है। जो लोग थोड़ा बहुत इन चीजों को खाते हैं वे इन्हें उबालकर, मसाले मिलाकर इन्हें साररहित व मुर्दा बनाकर खाते हैं।

बहुत-से लोगों के दांत जादा मिठाई वगैरह खाने से खराब होकर उनमें पीप पड़ जता हैं इसलिए ऐसे उखड़े, गले हुए व खूब जड़ से हिलने वाले दांतों को निकाल बाहर करना ही श्रेयस्कर है, परन्तु याद रखिये ! सख्त मजबूत दांतों को उखाड़ना एक भयंकर भूल है।

अलबत्ता खराब गले, सड़े, हिलते दांत मुख में रहकर अनेक रोग पैदा करते हैं, उन्हें निकलवाना ज्यादा अच्छा है।

जिन लोगों को गरमी हो चुकी है और औषधि सेवन द्वारा उसे दबाकर उस बिष को रक्त में मिला दिया है वे भी कैंसर के व अधोपन या पथरी के शिकार आगे जाकर हो जाते हैं।

जिन्हें पथरी हो गई है, उन लोगों की आंतें साफ करके केवल टमाटर गाजर हरी तरकारियों, मूली, पालक, बथवा, चौलाई के रस पर रखा गया और उनकी पथरी बिना आपरेशन ही रसों के प्रभाव से घुलकर पेशाब की राह निकलकर वे अच्छे हो गये हैं।

इसी प्रकार मोतियाबिंद वाले बीमार व रतौंधी वाले रोगी भी अन्य उपचारों के साथ (ठंडी हवा स्नान, जल स्नान, लंघन, फलाहार के साथ) केवल टमाटर, गाजर व हरे शाकों का रस पीकर रोग मुक्त हो गए हैं और आंखें साफ व तेज हो गई हैं।

इसलिए सोचिए ! रोगी होना या निरोग होना आप पर खुद निर्भर है। प्राकृतिक चिकित्सा का अध्ययन कीजिए और पहले ही इस प्रकार का खान-पान रखिए कि कैंसर, मोतियाबिंद, पथरी आदि रोग होने ही न पावें और हो भी जाय तो तुरन्त प्रकृति के नियमों पर चलें। अगर ऐसा नहीं होगा तो रोगी रूपी दानव आपको आ दबोचेगा और अनेक औषधियां, चीर-फाड़ की सहायता से भी शायद ही आप अपने को मृत्यु से बचा सकेंगे।

एपेंडिसाइटीज

प्राकृतिक उपचार या आपरेशन

क्षय आदि घातक रोगों की तरह एपेंडिसाइटीज रोग भी तेजी से फैलकर मनुष्य समाज को भारी यातनाएं पहुंचा रहे हैं। जनता में इस रोग के विषय में बड़ा भ्रम फैला हुआ है कि यह रोग केवल शस्त्र क्रिया (आपरेशन) से ही ठीक हो सकता है और किसी इलाज से यह बीमारी नहीं जा सकती—इसी अंध विश्वास के कारण बेचारे अज्ञान रोगी इस रोग से बड़े दुखी रहते हैं और अंत में आपरेशन कराकर अपने आपको रोग मुक्त समझते हैं। अनेक अभागे रोगी आपरेशन में खत्म हो जाते हैं। मजे की बात तो यह है कि आपरेशन से एपेंडिसाइटीज की बीमारी ठीक हो गई तब तो सफलता का सेहरा डाक्टर के सिर पर बांधा जाता है, लेकिन अगर रोगी चीरफाड़ में मर गया तो उन्हें कोई दोषी नहीं ठहराता केवल भाग्यदोष या हरि इच्छा कहकर सन्तोष कर लिया जाता हैं।

मैं निश्चय पूर्वक कहूंगा कि एपेंडिसाइटीज रोग विना शस्त्र-क्रिया के अवश्य ठीक होता है। अनेक बार के प्रत्यक्ष अनुभव ने यह भली-भांति सिद्ध कर दिया है कि केवल स्वाभाविक उपचारों द्वारा अन्य रोगों की भांति यह रोग भी समूल नष्ट हो जाता है—केवल अत्यन्त बढ़ी हुई अवस्था में जब एपेंडिक्स (उपांत्र) में मवाद या पीप भरकर वह सड़ने या गलने लगती है तभी आपरेशन की जरूरत हो सकती है। यदि डाक्टर साहब को रोगी समाज की भलाई का तनिक ध्यान या सद्भावना हो, उन्हें इस कठिन रोग का मूल कारणों पर ध्यान देकर प्रकृति के उपचारों द्वारा ही इसे ठीक करना चाहिए। यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह रोग बाहर से नहीं आता; बल्कि शरीर के अन्दर ही दीर्घकालीन कठिन मलावरोध (कब्ज) के कारण उत्पन्न होता है—

यह कीटाणु जन्य हरगिज नहीं है। लोग बिना सोचे जो जी में आया खाते रहते हैं। अत्यन्त भारी, तीक्ष्ण, चिकने विकृत पदार्थ खा-खाकर वे आमाशय तथा आंतों को बिगाड़ लेते हैं—बड़ी आंत में बहुत समय तक दुर्गन्धित मल के पड़े रहने से व सड़ने से एपेंडिक्स (उपांत्र) विकृत होकर उसमें सूजन पीड़ा आदि उत्पन्न हो जाते हैं और अन्त में पीप पैदा होकर यह भाग गलने लगता है।

खेद की बात है कि जनता मलावरोध दूर करने के लिए सरल स्वाभाविक उपाय एनीमा, लंघन, फलाहार, शाकाहार, दुग्धपान आदि को छोड़कर जुलाब, चूर्ण, काढ़े, गोली आदि हानिकारक वस्तुओं का सेवन करती है, जिससे क्षणिक लाभ होकर रोग उल्टा स्थाई हो जाता है। यदि जनता यह बात अच्छी तरह जान जाय कि अन्य सभी रोगों की तरह एपेंडिसाइटीज प्रकृति विरुद्ध खान-पान, गंदे रहन-सहन आदि का परिणाम है तो वह कभी चीर-फाड़ की जोखम नहीं उठाएगी। बात यह है कि जब आप यह जान जायेंगे कि अग्निमन्द हो जाने से तथा पुराने कब्ज से ही यही बीमारी पैदा हुई है तो आप जरूर जठराग्नि को तेज करने की व कब्ज को दूर करने की कोशिश करेंगे, ताकि रोग की जड़ ही जाती रहे।

एपेंडिक्स के नश्तर लगाकर उसे काटकर फेंक देना इस रोग का सच्चा इलाज नहीं है। इससे केवल रोग के लक्षण दब सकते हैं, क्योंकि एपेंडिक्स को हटा देने पर भी रोग का मूल कारण कठिन मलावरोध व आंतों की गंदगी व सड़न दूर नहीं होती; बल्कि वह बढ़ जाती है जैसा कि अनुभव ने अनेक बार दिखा दिया है।

शल्य-क्रिया से न कब्ज दूर होता है और न आंतें साफ होती हैं और न बेचारे रोगी का स्वास्थ्य ही ठीक होता है। अलबत्ता सर्जन, डाक्टर साहब को फीस के रूप में बड़ी रकमें मिलती हैं और यही कारण है कि अधिकांश सर्जन अज्ञान रोगियों को भय दिखाकर उन्हें चीर-फाड़ करने की सलाह देते हैं और बेचारा रोग पीड़ित, दर्द से

दुःखी रोगी और कोई उपाय न देखकर चीर-फाड़ कराने को तैयार हो जाता है। हमें इस बात पर हार्दिक खेद है कि बहुत-से सर्जन यह जानते हैं कि एपेंडिसाइटीज, टांसिल आदि बिना चीर-फाड़ केवल प्राकृतिक उपचारों से ही ठीक हो सकते हैं फिर भी स्वार्थवश रोगियों को आपरेशन कराने की राय देते हैं। यह एक अपराध है।

अनेक पाश्चात्य प्रसिद्ध अनुभवी सर्जन, डाक्टर, जो पहले चीर-फाड़ को ही एपेंडिसाइटीज का एक-मात्र इलाज मानते थे, लिखते हैं कि हर प्रकार की एपेंडिसाइटीज रोग लंघन, फलों का रस पीना, एनीमा व ठंडे जल की पट्टी व विश्राम से अवश्य ठीक होता है—इसमें संदेह नहीं है। डाक्टर विलियम हार्वड हे अमेरिका निवासी तो इस रोग में चीर-फाड़ के बड़े विरुद्ध हैं। उनका मत है कि इन रोगों में चीर-फाड़ करना बीमार के प्रति भारी अन्याय है।

कुदरती इलाज

सच पूछा जाय तो इस रोग का एक-मात्र रामबाण इलाज लंघन है। विधिपूर्वक ठंडे जल की पट्टी, उपवास, वस्तिक्रिया व फलों के रस पीने से यह रोग अवश्य ठीक होता है जैसा कि हजारों बीमारों पर किये गए प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है। यह बात जरूर है कि इस बीमारी में बीमार की बैचनी बढ़ जाती है, वह डरने लगता है लेकिन धैर्य रखकर प्राकृतिक चिकित्सा करने से भय का कारण नष्ट हो जाता है।

दो-तीन दिन तक रोगी को पूर्ण विश्राम करना चाहिए और साधारण ताजा कुंए के जल के सिवा कुछ भी नहीं खाना या पीना चाहिए। दर्द ज्यादा हो तो साधारण गरम पट्टी व ठंडे जल की पट्टी पीड़ा के स्थान पर बार-बार दिन में कई बार रखना चाहिए। पहले दो-तीन दिन तक करीब आधा सेर या तीन पाव गुनगुने जल का एनीमा लेना चाहिए, ताकि बड़ी आंत का नीचे का भाग साफ हो जाय—और बीमारी आगे न बढ़े—यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि

रोगी को एनीमा लेने में पीड़ा या कठिनाई हो तो एनीमा नहीं देना चाहिए।

तीसरे-चौथे दिन रोगी को कुछ शांति मालूम देगी और सूजन तथा पीड़ा में भी फर्क पड़ जायगा। इस समय बीमार बिना कष्ट सरलता से पूरा एनीमा ले सकेगा अर्थात् सेर-डेढ़ सेर पानी आंत में चढ़ सकेगा। यह क्रिया (वस्ति) रोजाना तब तक जारी रखनी चाहिए जब तक कि बड़ी आंत पूरी तरह साफ न हो जाय और सूजन (पीड़ा) पूरी न मिट जाय। तीसरे-चौथे दिन से आगे एक-दो सप्ताह तक रोगी को केवल संतरा, मौसमी, अंगूर अथवा किशमिश, मुनक्का आदि के रस पर रहना चाहिए। बहुत ज्यादा पेट भरकर रस नहीं पीना चाहिए। इतना-सा लेना चाहिए कि भूख मिट जाय। दिन में तीन बार लेना ठीक रहेगा। ताजा ठंडे जल की पट्टी भी दो-तीन बार रखनी चाहिए। नई एपेंडिसाइटीज दूर करने के लिए यह चिकित्सा सर्वश्रेष्ठ रहेगी और दर्द व पीड़ा, सूजन निश्चय ही दूर हो जायगी। पुराने रोग में अधिक समय लगेगा।

सूजन व दर्द मिट जाने के बाद रोगी को कुछ दिन अर्थात् एक या दो सप्ताह रसदार फल खाकर रहना चाहिए। बिना नमक डाले तरकारियों का रस भी लिया जा सकता है। भोजन पेट भर खाने से तथा ठोस गरिष्ठ तेज पदार्थों के सेवन से रोग भयानक हो सकता है। इसलिए जल्दबाजी कभी नहीं करनी चाहिए। इसके बाद एक या दो माह तक थोड़ा दूध, फल, हरे शाक व थोड़ी खिचड़ी, दलिया आदि पथ्य व जल्दी पचने वाली कोमल चीजों का सेवन करना चाहिए। अगर कब्ज दूर करना हो तो बजाय रोटी के फल व हरे शाक आदि अधिक लेना चाहिए। भोजन खूब चबाकर खाना चाहिए। साबित ग्रास निगलना भी रोग का कारण है।

बीमार को चाहिए कि शुद्ध वायु में धीरे-धीरे घूमे और साधारण ताजा जल से रोज स्नान करे और स्नान करते समय दाहिनी कोख

(जहां पीड़ा थी) जलधार डाले—कसकर कपड़ा कभी न पहने। खास कर एपेंडिसाइटीज के बीमार को चाहिए कि धोती ढीली बांधे। कसकर बांधना भी इस रोग का कारण है। भारी जूते व तंग मोटे कपड़े भी हानिकर तथा त्याज्य हैं। इसके सिवा जल्दी सोना, जल्दी उठना, अधिक श्रम न करना, प्रसन्न रहना, बिना भूख न खाना, कपड़े कम पहनना, मसाले, सफेद चीनी, नशा व दवा से परहेज रखना यह भी बड़े लाभप्रद और स्वास्थ्य को स्थिर रखने वाले प्रयोग हैं।

यदि बीमार ऐसा करेंगे तो वे चीर-फाड़ की नारकीय पीड़ा व परेशानियों तथा खर्चे से बच सकेंगे और स्थाई स्वास्थ्य प्राप्त कर सकेंगे। साथ ही उनकी एपेंडिक्स, जो उनके शरीर का एक आवश्यक अंग है, विकाररहित होकर शरीर में यथा-स्थान बनी रहेगी और मल विसर्जन की आवश्यक क्रिया में आंतों को सहायता देगी।

प्रकृति की आवाज सुनो

मनुष्य का स्वास्थ्य

आरम्भ में सृष्टि रचना के समय मनुष्य, शरीर व मन से सर्वथा निरोग निर्विकार उत्पन्न हुआ था। भगवान् की रचना अपूर्ण या दोष युक्त नहीं हो सकती और यह बात भी समझ में नहीं आ सकती कि ईश्वर जान-बूझकर अपने ही रूप मनुष्य को पापी, रोगी, कुरू प, अल्प जीवी या अंगहीन उत्पन्न करता है। इसीलिए सतयुग में लोग दीर्घ जीवी, निष्पाप और सर्वथा सुखी थे।

परन्तु इसके बाद मनुष्य जाति ने प्रकृति से मुंह मोड़ लिया और वह पथ भ्रष्ट हो गई। परिणाम यह हुआ कि आज मनुष्य जाति में सच्चा आरोग्य बिल्कुल लुप्त हो गया है। हर एक घर में रोग, पाप व दुःख फैल रहे हैं। बाल्यावस्था तक पीड़ा व रोग साथ लगे ही रहते हैं। प्रेम, भ्रातृभाव,उदारता के स्थान में घृणा, ईर्ष्या, कपट, पाप, व्यभिचार, अत्याचार का साम्राज्य हो रहा है। सुख-शांति ढूंढ़े भी नहीं मिलती। इसका कारण क्या है ? प्रकृति विरुद्ध जीवन। जंगल का जानवर, बच्चे, पशु-पक्षियों को कैसे शिक्षा देता है कि इस तरह नहाओ, यह खाओ, यह पीओ, यह पहनो। केवल प्रकृति की आवाज, अन्तःकरण और इन्द्रियां (आंख, कान, नाक, जिव्हा आदि) इन्हीं से सब कुछ पहचाना जाता है।

सच पूछा जाय तो आजकल के मनुष्यों से हमें आरोग्य व दीर्घ जीवन की कुछ भी शिक्षा नहीं मिल सकती, क्योंकि वे विज्ञान (Science) के भूत से ग्रसित हैं और इसीलिये हमें पथ भ्रष्ट करने के सिवा हमारी कोई भलाई नहीं कर सकते।

परन्तु प्रकृति कभी भूल नहीं कर सकती और न कभी धोखा दे

सकती है। इसलिये हमें श्रद्धा पूर्वक प्रकृति के सच्चे मार्ग पर अटल रहना चाहिए। जो लोग प्रकृति के मार्ग को छोड़ देते हैं और दवाइयों के भ्रम जाल में पड़ जाते हैं वे अनेक रोगों व आपत्तियों के शिकार बने रहते हैं, परन्तु स्वतन्त्र प्रकृति के जंगली पशु-पक्षी, मनुष्य आदि रोग व पाप या अकाल मृत्यु जानते ही नहीं। अलबत्ता मनुष्य के अधिकार में आते ही पशु-पक्षी भी रोगी व अल्पायु व दुखी बन जाते हैं, क्योंकि मनुष्य स्वयं प्रकृति विरुद्ध जीवन के कारण नाना प्रकार की व्याधियों से ग्रसित है। वह जानवरों को भी प्रकृति विरुद्ध जीवन बिताने को मजबूर करता है। आग से पकी चीज खाने से, गंदी जगह रहने से, दवा खाने से बेचारे जानवर भी रोगी होकर मर जाते हैं।

जरा निष्पक्ष भाव से सोचिये जितनी अधिक औषधियां बढ़ रही हैं उतने ही रोग समूह व अकाल मृत्यु संख्या बढ़ती जा रही है। क्या यह स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि औषधियां रोग और अकाल मृत्यु घटा नहीं बढ़ा रही हैं ? परन्तु हम रूढ़ियों को दूर नहीं कर सकते। प्रकृति के नियम अटल हैं। वह अपने नियमों के पालन करने वालों को अक्षय आरोग्य, दीर्घ जीवन, सौंदर्य, बल प्रदान करती है जैसा कि, जंगली पशु-पक्षियों व जंगली जातियों से भली-भांति देखा जा सकता है। इसके विपरीत उसके नियमों की अवहेलना करने पर वह कठिन से कठिन दण्ड देती है। जैसा कि हम मनुष्य जाति में देख रहे हैं—असंख्य रोग, अकाल मृत्यु, कुरूपता, पाप आदि।

इसलिए हर एक अवस्था में, हर एक रोग में मनुष्य रोग मुक्त तभी हो सकता है जब एक बार फिर प्रकृति की ओर लौटे। अन्यथा आरोग्य असम्भव है।

प्रकृति अपने पाठ गन्दे कमरे में या पुस्तकों से नहीं सिखाती। वह अन्तःकरण और इन्द्रियों द्वारा साफ-साफ सब बातें बताती है। ध्यान से सुनिये और सीखिये।

बच्चे कितनी जल्द भोजन परीक्षा कर लेते हैं। जानवर शीघ्र अपनी खुराक खाने लगते हैं।

मनुष्य में बुद्धि है—जब तक बुद्धि का उपयोग प्रकृति के उद्देश्यानुसार किया गया मनुष्य दीर्घजीवी, निरोग रहा—परन्तु विज्ञान के आविष्कार ने मनुष्य जाति को रोगी और अल्प आयु बना दिया है।

परन्तु प्रकृति के मार्ग की ओर जाने वालों के लिए अनेक कठिनाइयां हैं। रोग जन्तुओं की व्याख्या, विटमिन्स की समस्या, पोषक तत्व, सरदी आदि बातों की चर्चा छिड़ जाती है। हर एक मनुष्य को स्वयं सोचना चाहिए कि सच्चा आरोग्य व दीर्घ जीवन शहरों के गन्दे घरों में, नरक तुल्य अस्पताल और औषधालयों में, प्रत्यक्ष जहर दवाइयों में, दिल हिलाने वाले भयंकर यमद्वार सदृश आपरेशन घरों में है या सुन्दर वन में, बाग-बगीचों में, प्राकृतिक झरनों में, अमृत तुल्य फलों में, रोशनी, धूप, हवा, शीतल जल आदि प्रकृति के साम्राज्य में है। बस इनको समझ लेने के बाद उसे दवाखानों या अस्पतालों में अपने रोगों की परीक्षा और चिकित्सा के लिए भटकते हुए दुःखी, परेशान और निराश नहीं होना पड़ेगा।

क्या हर एक मनुष्य अपने रोग स्वयं दूर कर सकता है?

रोग परीक्षाओं की निःस्सारता

प्रकृति देवी पशु-पक्षी, मनुष्य सभी को समान रूप से आदेश देती है। उसकी इच्छा यह नहीं है कि उसका श्रेष्ठ प्राणी उसके उपदेशों से वंचित रहे। उसकी यह रचना है कि मनुष्य स्वयं अपनी व्याधियों को मिटा सकता है और इसके लिए किसी भी सहायक की या किसी औषधि की व औजार की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है केवल अन्तःकरण की आज्ञानुसार चलने की। बस फिर सच्चा आरोग्य प्राप्त करना बायें हाथ का खेल है। दुर्भाग्य से आजकल के लोग उल्टी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

बहुत-से प्रकृतिवादी यह मानते हुए भी कि रोग परीक्षायें व्यर्थ व

हानिकर हैं, व्यर्थ ही रोगों की हालत में रोग परीक्षा की राय देकर अपने उद्देश्य से गिर जाते हैं और बहुत-से तो लोभ या अज्ञानवश दवाइयां तक दे डालते हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वे अब तक सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा को नहीं समझे हैं और न ऐसी भावनाओं से सर्व साधारण की भलाई हो सकती है।

सच बात तो यह है कि प्रकृति के उद्देश्यों को भलीं-भांति समझ लेने के बाद तुरन्त यह मालूम हो जाता है कि रोगों की चिकित्सा किस प्रकार करें।

जब हम यह जान चुके कि रोग प्रकृति विरुद्ध भोजन व गन्दी हवा आदि से होता है तो फिर रोग के नाम से या उसकी परीक्षा कराने से क्या लाभ हो सकता है ?

अगर प्रकृति की ऐसी इच्छा हो कि हम रोग की हालत में या आरोग्य अवस्था में शरीर के भीतर के अङ्गों को और उनमें होने वाली सभी क्रियाओं आदि को साफ-साफ देखें तो वह मनुष्य शरीर को चमड़े से इतना न ढकती। कांच की तरह आर-पार दिखाई देने वाली वस्तु बनाती या उसके किवाड़ बनाती है।

परन्तु ऐसी बात नहीं है, प्रकृति की इच्छा यह नहीं है कि रोगों की परीक्षा की जावे या उनके भिन्न-भिन्न नाम रखे जावें। इसलिये रोग परीक्षाएं अक्सर अत्यन्त हानिकारक होती हैं और रोगियों को भ्रम डालकर उन्हें नष्ट कर देती हैं।

लेखक ने स्वयं अपनी आंखों से अनेक बार यह देखा है कि बेचारे रोगी अपने रोगों की परीक्षायें कराते कराते ही संसार से चल बसे, इलाज तो दूर। यह कैसी भीषण प्रथा है।

मुझे आजकल के लोगों की इस बुद्धि पर खेद हो रहा है कि वे अपने रोगों की परीक्षा और नाम जानने की बड़ी लालसा रखते हैं और उसके लिए बहुत पैसा खर्च करते हैं और परेशानी उठाकर भी

आरोग्य लाभ करने में असफल होते हैं। यह सदा ध्यान में रखने की बात है कि चाहे कितने ही ध्यान से नाड़ी देखी जाय आंख, जीभ, पेशाब, नाखुन, छाती आदि की जांच की जाय या मूत्र परीक्षा, रक्त परीक्षा की जाय पर कभी भी रोग या उसकी अवस्था का सच्चा ज्ञान इनसे नहीं हो सकता।

प्रकृति के रहस्य बहुत गहरे व गूढ़ हैं और जितनी अधिक परीक्षाएं होती हैं उतनी ही भिन्न-भिन्न बातें खड़ी होती हैं और रोगी का धैर्य छूट जाता है।

लेखक ने अनेक रोगियों का हाल देखा है कि उन्हें चिकित्सकों ने परीक्षा करके असाध्य बता दिया था और वे इन झंझटों को छोड़कर स्वाभाविक जीवन बिताने लगे और भले-चंगे हो गये। बहुधा ऐसा भी हुआ है कि रोगियों ने अपनी व्याधियों को असाध्य समझ लिया और चिन्ता से ही मर गये।

जितनी परीक्षायें होती हैं, रोगी उतने ही अधीर और व्याकुल होते जाते हैं। उनका अच्छा होना या न होना ही परीक्षा पर निर्भर रहता है। रोग कुछ होता है, दवा कुछ दी जाती है। एक वैद्य कुछ रोग बताता है। डाक्टर तीसरी ही बात बताते हैं। हकीम नई ही बीमारी बताते हैं। सबकी परीक्षाएं अलग, दवाइयां अलग! इसी जाल में लाखों बेमौत मर रहे हैं।

रोग परीक्षाओं से बहुत-से नये रोग उत्पन्न हो रहे हैं। जैसे भ्रम व्याकुलता, अशांति, घबराहट, चिन्ता आदि जिनकी तरफ कुछ ध्यान नहीं दिया जाता।

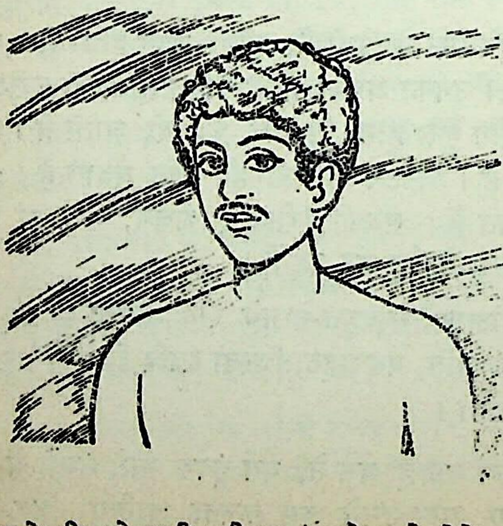
वास्तव में बड़े ही प्रेम से, धैर्य पूर्वक मीठे शब्दों में रोगी से बातें करना चाहिए और उससे प्रेम करना चाहिए। यह चिकित्सा का पहला अंग है।

रोगी मनुष्य स्वयं यह जानता है कि मैं बीमार हूं और उसकी

रोग पीड़ा, व्याकुलता व कमजोरी का हाल जितना अच्छी तरह उसे अनुभव होगा कभी चिकित्सकों को नहीं हो सकता, चाहे वह कितना ही श्रेष्ठ चिकित्सक हो।

परन्तु आज जमाना ढोंग व दिखावे का है। प्राकृतिक चिकित्सा में कोई आडम्बर नहीं है, इसीलिए लोग विश्वास नहीं करते। ऐलोपैथी, आयुर्वेद, होमियोपैथी आदि में बहुत-सा सामान रोगियों के हृदय को आकर्षित करने के लिए मौजूद है। इसीलिए रोगी उधर अन्धों की तरह टूट कर पड़ रहे हैं।

जो कोई रोग परीक्षा में चतुर है, वह अपने रोगी के हृदय को मुग्ध करके काफी रुपया कमा सकता है, क्योंकि आजकल के लोगों की प्रवृत्ति अपने रोगों के नाम जानने की तथा परीक्षा कराने की ओर बहुत बढ़ गई है। बहुत-से ऐसे निपुण नाड़ी परीक्षा करने



वाले तथा दूर से ही रोग की परीक्षा करने वाले देखे व सुने गए हैं, जिनकी बुद्धि पर आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता, परन्तु खेद है कि वे केवल परीक्षक ही हैं, वे रोगी को अच्छा बिल्कुल नहीं कर सकते हैं।

बहुत-से वैद्य, डाक्टर, हकीम, भली-भाँति जानते हैं और कहते हैं कि रोग परीक्षाएं व्यर्थ हैं; उनसे कुछ लाभ नहीं है परन्तु आजकल के लोग चाहते हैं कि उनके रोगों की जांच की जाय, नाम रखा जाय, मूत्र परीक्षा, रक्त परीक्षा, कफ परीक्षा की जावे। इसके बिना उन्हें संतोष ही नहीं होता। इसीलिए रोगियों को प्रसन्न रखने के लिए ऐसा किया जाता है और रोगियों को प्रसन्न रखने के लिए अनेक प्रकार के टॉनिक, धातु, रस, माजून, गोलियां आदि दी जाती हैं मानो उनसे आरोग्यता प्राप्त हो ही जायगी।

यह बात बिल्कुल सच है कि आजकल सीधी-साधी प्राकृतिक चिकित्सा को लोग नहीं अपनाते, क्योंकि इसमें न दवाइयां हैं, न चीर-फाड़, न टीका, परन्तु यदि कोई प्रकृतिवादी चिकित्सक औषधियों की निरर्थकता व हानियों को जानते हुए भी अपने अन्तःकरण के विरुद्ध दवाइयां देता है तो वह अपनी आत्मा को ही ठगता है।

जो लोग प्राकृतिक चिकित्सा के महत्व को समझते हैं वे कभी दवाइयां व चीर-फाड़ के आडम्बर में फंसना पसन्द नहीं करेंगे। प्राकृतिक चिकित्सा में सत्य और ईमानदारी के सिवाय आडम्बर का लेश भी नहीं है।

इसलिये रोगी प्राणियों की भलाई के लिए कष्ट भी सहन करना पड़ता सच्चे प्राकृतिक चिकित्सक इसकी परवाह नहीं करते।

जब कभी रोगी की परीक्षा करने के लिए यत्न किया जाता है उस समय सदा ही हमारी अन्तरात्मा विरोध करती है। इसी प्रकार आपरेशन, चीड़-फाड़ के समय रोगी व डाक्टर दोनों का हृदय कांपने लगता है जिससे स्पस्ट जाहिर होता है कि ये दोनों हीं कार्य अर्थात् रोग परीक्षा व चीर-फाड़ आदि प्राकृतिक विरुद्ध हैं और कभी भी शरीर के लिए हितकर नहीं हो सकते।

हमारे दुर्भाग्य की बात है कि लोग रोगी शरीर के अन्दर की बातों को जानने की इच्छा करते हैं और यह भी कि रोग साध्य है

या असाध्य मानो ईश्वर से अधिक बुद्धिमान हम हैं और यही भावना हमारे कष्टों की जड़ है। लोग रोगी मनुष्यों को आडम्बरों द्वारा ठगते हैं, इसका अन्दाजा नहीं हो सकता। परन्तु मूर्ख मनुष्यो ! इन आडम्बरों में मत फंसो। इनसे कोई लाभ की आशा नहीं है। रोग परीक्षाएं, औषधियां, चीर-फाड़ व प्रकृति विरुद्ध उपचार कभी हमें आरोग्य प्रदान नहीं कर सकते।

सभी रोगों का मूल कारण हमारा प्रकृति विरुद्ध जीवन है और हमें आरोग्य प्राप्ति के लिए सभी प्रकार के रोगों से ग्रसित प्राणियों को स्वाभाविक जीवन बिताना सिखाना चाहिए और इसके लिए हमें किसी रजिस्टर्ड कालेज की आवश्यकता नहीं है और न किसी औषधालय या अस्पताल की। हमें केवल अन्तःकरण की आज्ञानुसार चलना चाहिए। फिर ईश्वर सब कार्य स्वयं ठीक करेगा।

जब रोग परीक्षा, औषधालय, अस्पताल, डाक्टर, वैद्य, दवाओं के कारखाने हमारे लिए अनावश्यक व हानिकर हैं तो इनमें सहयोग देना या इनमें धन खर्च करना व्यर्थ है। जो लोग इनसे जीवन निर्वाह करते हैं उन्हें स्वाभाविक चिकित्सा व फलों की खेती से जीवन बिताना उचित है।

रोगी मनुष्यों की अजीब कष्टमय स्थिति है। वे एक-न-एक पुस्तक ढूंढते ही रहते हैं। कभी वैद्य के पास जाते हैं तो कभी डाक्टर के पास, कभी अंग्रेजी दवा लेते हैं तो कभी जड़ी-बूटी। इसी प्रकार दिन-रात भटककर धन खर्च करके भी रोगों के द्वारा परास्त होकर शीघ्र मर जाते हैं। इसमें दोष किसका है ?

क्या जङ्गली जातियां, वन के पशु-पक्षी इस प्रकार रोगों से दुःख पाते हैं ? इसलिये एक बार फिर प्रकृति को समझिये। स्वाभाविक जीवन बिताइये।

संसार में बढ़ते हुए रोग समूह की रोक-थाम तथा सच्चा सार्वजनिक स्वास्थ्य तभी संभव है जब देश में स्वाभाविक जीवन का पाठ

पढ़ाया जावे और हर एक बच्चा, जवान, बूढ़ा और स्त्री स्वयं अपने रोगों का इलाज आप कर ले अन्यथा लाखों औषधालय व मेडिकल कालेज व क्षय-निवारक संस्थाएं खोलने से भी संसार सुखी नहीं हो सकता। कभी भी इन झूठे उपायों से लोग निरोग व दीर्घजीवी नहीं बन सकते। सदा रोना-कलपना बना ही रहेगा।

आज लोगों को स्वयं अपना चिकित्सक होने की शिक्षा देना महान कठिन है और लोग चौंकते हैं कि कभी स्वयं अपना इलाज भी आप कर सकते हैं, परन्तु यह नितान्त भ्रम है। इस रहस्य को समझ लेने के बाद संसार से अकाल मृत्यु, घोर कष्ट, दारिद्रय व शोक समूह भाग जायेंगे।

जिन रोगों को हम पहाड़ समझ रहे हैं, जिनको दूर करने के लिए दूसरों के मुंह ताकते हैं, उन्हें खूब पैसा देकर भी असफल होते हैं, वे ही रोग प्रकृति के सिद्धान्तों को समझ कर उनके अनुकूल चलने से हमारे सामने खेल-मात्र रह जायेंगे। प्रकृति की शरण में जाते ही रोग समूह इस प्रकार नष्ट हो जायेंगे जिस प्रकार भगवान का नाम जपने व उसकी शरण में जाने से सभी पाप व दुःख नष्ट हो जाते हैं। उदाहरणार्थ; क्षयरोगी सब इलाज छोड़ बन में जरनों के पास, पहाड़ की तराई में सुन्दर दृश्यों में जाकर पड़ रहे, जमीन पर ही सोवे, वस्त्रों का त्याग कर दे, निर्मल जल में स्नान करे, फल, मेवा, दूध, शाक आदि खाये तो अवश्य ही रोग मुक्त हो जायेगा, परन्तु कितने क्षय रोगी अस्पतालों में सड़ कर मर रहे हैं? सरकार कितना रुपया उन पर खर्च करती है और कितनी सफलता मिलती है?

घावों व चोटों की चिकित्सा

घावों और चोटों के सम्बन्ध में पूरा हाल तो दूसरी पुस्तक में लिखा जाएगा, लेकिन इतना यहां भी अवश्य लिखता हूं कि घावों व चोटों में गीली मिट्टी की पट्टियां तथा जल का प्रयोग, गद्दियां आदि आश्चर्यजनक पूर्ण लाभ दिखाते हैं। घायल सिपाही या जख्मी अपने

हाथ से मिट्टी या जल को घावों पर लगा सकता है। मिट्टी के प्रयोगों से व जल को गद्दियों से जैसा मैं अपनी पुस्तकों में बता चुका हूं, हर प्रकार के घाव व चोट शीघ्र अच्छे हो जायेंगे और संसार से बहुत-से अनावश्यक चीर-फाड़, काटा-कूटी दूर हो सकेंगे और पृथ्वी पर लूले-लंगड़े फिरते नजर न आवेंगे।

मिट्टी को गीली करके घाव व चोट पर रखना काफी है और जल में पोड़ित जख्मी भाग को डबो रखना या पानी में भीगी गद्दी घाव या चोट पर रखने से इलाज हो जाता है। लंघन व फलाहार भी जरूरी है।

प्राकृतिक चिकित्सा के कुछ रहस्य व करामातें

एक रोगी, जिसको स्नायु रोग बहुत अर्से से था पुराना रोगी था, नौ मास तक प्राकृतिक इलाज किया, क्योंकि वह सब इलाज कराकर हार गया था। पहले भी बिजली, भाप आदि से थोड़ा लाभ हुआ था पर पूर्ण आराम न हुआ। उसके इस दीर्घ रोग का कारण यह था कि उसने दुनियां की देखा-देखी चेचक का टीका लगवाया था और इससे उसको बचपन में चेचक, लाल बुखार, दस्त, खांसी आदि तेज बीमारी नहीं हुई थी और बाद में कभी जुकाम, बुखार, दस्त आदि न हुए थे। वह खुद व दुनियां इसे बड़ा अच्छा समझते थे, परन्तु वास्तव में ऐसा समझना बड़ी भूल थी, क्योंकि इस रोगी की जीवन शक्ति इतनी कमजोर थी कि अपने अन्दर मौजूद मैल को बल-पूर्वक तेज बीमारी उत्पन्न करके बाहर नहीं फेंक सकती थी और इसीलिए बड़ी भयानक बीमारी ने घर कर लिया था।

अगर यह रोगी प्रकृति के अनुकूल इलाज न करता तो जल्द पागलखाने या श्मशान-भूमि पहुंच जाता, परन्तु सौभाग्य से प्रकृति की शरण में आ गया जिसका पूरा हाल नीचे दिया जाता है।

इलाज शुरू करते के बाद ही रोगी के शरीर पर बहुत-से फोड़े-

फुन्सी हो गए जो मिट्टी के उपचारों से शीघ्र उत्तम परिणाम सहित अच्छे हो गए और रोगी को भारी शांति मिली। और भी कई कष्ट, हैजा के से चिन्ह, पेचिश आदि इसे होते रहे और शरीर का पुराना मैल निकलता रहा और रोगी सुधरता गया। अन्त में उसे बड़े जोर का बुखार आया। रोगी का चेहरा पीला दिखाई देने लगा और वह शरीर से बहुत दुबला हो गया था, परन्तु दृढ़ चित्त, साहसी रोगी ने हिम्मत न छोड़ी। उसने बनावटी औषधालयों व अस्पतालों में जाने की अपेक्षा प्रकृति की शरण में मरना अच्छा समझा।

वह इस तेज बुखार की हालत में एक सुन्दर, खुली हवादार झोंपड़ी में रखा गया। आजकल की तरह बन्द पक्के गन्दे मकानों में नहीं। यह झोंपड़ी चारों तरफ से बारहदरी की तरह खुली हुई रखी गई। परदे नहीं दिये गए हालांकि मौसम बारिश का था और उस समय सर्दी पड़ने लगी थी और आश्चर्य तो यह था कि उस समय झोंपड़ी के अन्दर बड़ी तेज ठंडी हवा आ रही थी और रोगी के नंगे शरीर पर सीधी लग रही थी। उसे शीत नहीं आया। कभी-कभी उस रोगी को बीमारी की हालत में बाहर नंगा टहलाया जाता था और कभी-कभी ठंडे जल से उसकी इच्छानुसार स्नान कराया जाता था। मगर हर स्नान या ठंडे प्रयोग के बाद गर्म कंबलों में लपेटकर पसीना भी लिवाया जाता था।

वह रोगी लगभग भूखा रहता था, कुछ न खाता था। इस तरह कुछ ही दिनों में उसे रोग से छुटकारा मिल गया। मल-पदार्थ ढीले हो चले—नाक मुंह से रींट, कफ, खून गिरने लगा और काफी पसीना भी आया। बुखार जाता रहा।

इस बुखार के बाद उसका स्वास्थ्य अत्यन्त अच्छा हो गया। जो लाभ उसे नौ मास के इलाज में न हुआ था वह इस थोड़े समय में हो गया और उसका बरसों का पुराना रोग भी चला गया। शरीर नवीन व सुन्दर हो गया।

अब जरा सोचिए ! इससे सस्ता, सुन्दर व बिना खतरे का इलाज दूसरा कौनसा है। क्या दवा के उपचारों से ऐसा लाभ हो सकता है।

आज हमारे रोगियों की हीन दशा को देखिए। उन्हें काल कोठरी में कैदी की भांति रखा जाता है, परदे लगा दिए जाते हैं, कपड़े उढ़ा दिए जाते हैं, दवा पर दवा जबरदस्ती पिलाई जाती है, प्यास लगने पर ठंडा पानी भी उन्हें नहीं दिया जाता और फिर वे मर जाते हैं तो घर वाले रो-रोकर उनकी आत्मा को कष्ट देते हैं। अगर सौभाग्य से रोगी बच गए तो अनेक नए रोग उन्हें आ घेरते हैं। मैंने सैकड़ों रोगियों को आंखों देखा है जो मोतीझारा, चेचक, मियादी बुखार आदि से उठने पर अनेक बीमारियों में फंस गए। किसी को दमा हो गया, किसी को गठिया, कोई पागल हो गया तो कोई क्षयी हो गया। नया रोग पुराना हो गया, परन्तु इन बातों की तरफ ध्यान कौन दे। हमें तो झटपट इलाज चाहिए, पीछे हमारा जीवन ही नष्ट क्यों न हो जाए।

लोगों की यह धारणा बिल्कुल झूठी है कि बलवान लोग ही ठंडी हवा, पानी, मिट्टी के प्रयोग, उपवास आदि सहन कर सकते हैं, कमजोर नहीं। हवा तो हर एक रोगी को हर हालत में लाभ पहुंचाती है और पक्के बंद मकानों में रहने से तन्दुरुस्त भी बीमार हो जाता है, फिर बुखार का बीमार ऐसी जगह मर जाए तो आश्चर्य ही क्या है।

मैं हर प्रकार के बुखार के रोगी व सभी पुराने बीमारों को सलाह देता हूं कि वे दुनियां की मौजूदा रूढ़ि में पड़कर जीवन नष्ट न करें; बल्कि दृढ़ चित्त से स्वाभाविक जीवन बितायें इसी में उनका परम कल्याण है।

भला सोचिए! स्वास्थ्य और जीवन रक्षा के लिए शुद्ध वायु अत्यन्त आवश्यक है पर क्या बीमार के लिए वह अनावश्यक है ? नहीं बीमार को २४ घंटे शुद्ध वायु जरूरी है। इसलिए जो रोगी स्वयं या दूसरे लोगों के बहकाने में आकर शुद्ध वायु से अपने शरीर को दूर रखते

हैं, अर्थात् दिन-रात बंद मकानों में और कपड़ों से लदे रहते हैं वे भयंकर भूल करते हैं और अपने हाथों अपने लिए कब्र खोदते हैं।

इसी अन्ध विश्वास से चेचक, मोतीझारा, मलेरिया आदि में लाखों प्राणी अन्धेरे कमरों में हवा से दूर रखे जाकर अकाल मारे जा रहे हैं और जो इन रोगों से बच जाते हैं वे अंगहीन कुरूप हो जाते हैं। यह दोष किसका ? रूढ़ियों का, समाज का, वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का ? क्या इससे साफ़ साबित नहीं होता कि इन कोमल कलियों को समय से पहले तोड़ लिया गया ?

मैंने ऐसे अनेक बच्चों को देखा है जो चेचक में बाहर नंगे फिरते थे, खुली हवा में सोते थे और लाख मना करने पर भी स्वतन्त्रता से खुले स्थान में खेलते थे और इसी से शीघ्र भले-चंगे हो गए। चेचक शीघ्र ठीक हो गई। इसके विपरीत हजारों ऐसे निरपराव बच्चों को चेचक में मरते देखा है जो अंधेरे बन्द कमरों में कपड़ों में ढककर रखे गए। दवा पिलाई गई, मंत्र झाड़े किये गए मगर उनमें से ९५ फीसदी मारे गए।

आज बीमारी होते ही बजाय स्वाभाविक उपचारों के हम लोग औषधालय या अस्पताल में जाते हैं और कपोल कल्पित हानिकर दवाइयां बिना जांच अनाप-शनाप पेट में डाल लेते हैं और जो लोग दवा बेचते हैं या देते हैं वे बुद्धिमान या हितैषी समझे जाते हैं।

परन्तु प्रकृति के अचूक अमृत तुल्य उपचारों की सदा अवहेलना की जाती है और हंसी उड़ाई जाती है और प्राकृतिक चिकित्सकों की कहीं पूछ नहीं है और उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, परन्तु कुछ भी हो सत्य की विजय होती है।

जरूरी हिदायतें

हर एक रोग में चाहे वह पुराना हो या नया—रोगी के पेट पर गीली मिट्टी की पट्टी विधि पूर्वक नियमानुसार बांधना चाहिए। १ से ३ घण्टे तक रखें।

इसी प्रकार हर एक रोग में व निरोग हालत में भी नंगी धरती पर (सड़क या आंगन में नहीं) नंगे पांव बिना जूते चलना अत्यन्त उपयोगी है। २५ फीसदी रोग तो मनुष्यों को जूता पहनने से ही होते हैं। कपड़े कम पहनने चाहिए।

स्नान के बाद मलकर पानी सुखा देना बड़ा ही अच्छा नियम है। हर एक रोग में लगभग एक से ही उपचार किए जाने चाहिए। भिन्नी कारण और वर्गी करण के फेर में न पड़ना चाहिए क्योंकि सभी रोगों का कारण एक है। कुपिता मलाः और चिकित्सा भी एक है, 'स्वाभाविक जीवन'।



१८

यह ध्यान में रखने की बात है कि रोगी को आराम होने में जो समय लगेगा वह रोग की हालत व चिकित्सा विधि पर निर्भर होगा। जिस रोगी की जठराग्नि प्रबल होगी, उसे आराम जल्दी होगा, जिसकी अग्नि मन्द है उसे अधिक समय लगेगा। साथ ही बन्द तंग घरों में रहने से इलाज देर से होगा। जंगल या बाग में रहकर शीघ्र लाभ होगा।

सच पूछा जाए तो आजकल के अस्पताल व औषधालय नरक तुल्य

हैं। उनमें रोगी जाते हुए भय से कांपते हैं, डरते हैं, घृणा करते हैं और मजबूर होकर ही जाते हैं। बच्चे तो बहुत ही डर भागते हैं। क्यों? इसलिए कि उनकी आत्मा ऐसा करने से मना करती है। परन्तु एक प्राकृतिक सुन्दर रम्य नेचर सेनेटोरियम में जाते ही हृदय बाग-बाग हो जाता है। वहां से दूर होने को जी नहीं चाहता, क्योंकि सच्चा आरोग्य वहीं पर है।

इसलिए बराबर मेरी हर एक रोगी से प्रार्थना है कि वह चाहे किसी रोग से ग्रसित हो दृढ़ चित्त होकर प्राकृतिक चिकित्सा आरम्भ कर दे और घर वालों की या दूसरे अज्ञान ग्रसित लोगों की बातों पर ध्यान न दे, उसे स्वयं अन्तःकरण की आज्ञानुसार स्वाभाविक जीवन बिताना चाहिए।

यदि किसी समय जल स्नान, हवा स्नान, मर्दन आदि किसी उपचार पर अरुचि हो तो उस समय उस क्रिया को बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि बिना इच्छा के हर एक उपचार असफल हो जाता है। रोगों की चिकित्सा में सदा स्वतन्त्रता होनी चाहिए न कि दबाव। लोग अपने बच्चों पर, बड़ों पर कितना अन्याय करते हैं जो जबरदस्ती उन्हें दवा पिलाते हैं।

चाहे आपको चर्मरोग हो, चाहे उदर रोग, चाहे क्षय हो या दमा, स्त्री रोग हो या कर्ण रोग, गठिया हो या लकवा, मलेरिया या निमोनिया हो या चेचक हो—आप फौरन रोग के लक्षण उत्पन्न होते ही स्वाभाविक उपचार शुरू कर दीजिए और निश्चिंत हो जाइए।

यह बिल्कुल फिजूल बात है कि बीमार होने पर आप वैद्य, हकीम या डाक्टर को बुलाकर रोग की परीक्षा करावें कि बीमारी क्या है। इनसे जल्दी हानियां होती हैं।

रोग चिकित्सा के अमूल्य व अचूक नियम

हर एक बीमारी में आगे लिखे नियमों का अवश्य पालन किया जाना चाहिए—

१—रोगी को साफ, ताजा खुली हवा में रखना चाहिए। अन्धेरे बन्द कमरों में मत रखो। जंगल या बाग में रखो तो बहुत ही उत्तम है वरना बिल्कुल हवादार खुली जगह रखो।

२—पीड़ित स्थान पर व पेडू पर विधि-पूर्वक मिट्टी की पट्टी बांधना चाहिए।

३—मौसम व रोगी का बलाबल देखकर नग्न स्नान, हवा स्नान व धूप स्नान अवश्य कराया जावे।

४—प्राकृतिक जल स्नान (Natural bath) भी अवश्य कराया जाना चाहिए, जल के अन्य प्रयोग भी जरूरी हैं।

५—रोग व रोगी की परिस्थिति देखकर मालिश भी करना बहुत जरूरी है, मालिश स्वस्थ मनुष्य से करानी चाहिए।

६—रोगी को जब तक जोर से भूख न लगे कुछ भी खाने को नहीं देना चाहिए। अपच में भोजन करना भयानक भूल है।

७—भूख लगने पर बीमार को उसकी रुचि अनुसार फल, मेवा, दूध आदि स्वाभाविक पदार्थ कच्चे ही खिलाना चाहिए। भारी चीज हरगिज मत दो। बाद में हल्का अन्न देना चाहिए।

८—रोगी को खुले स्नान, जंगल में घूमना परम हितकर है। अधिक कमजोर हो तो सवारी में ही बिठाकर जंगल की साफ हवा खिलानी चाहिए।

९—जितनी देर हो सके नंगे पांव ज़मीन पर टहला जावे। जूते भारी व तंग नहीं होने चाहिए।

१०—सोने व बैठने में पृथ्वी की शक्ति का उपयोग यथाशक्ति किया जावे।

११—बीमार से सच्चा प्रेम करना चाहिए। घृणा हरगिज न की जावे। वास्तव में तो सभी रोगों का कारण व इलाज एक

है, पर सर्व साधारण के परिचय के लिए कुछ उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं, ताकि हर एक मनुष्य आसानी से इस इलाज को समझ सके। मान लीजिए आपको मियादी बुखार या मोतीझारा (भाव) है तो आप कमरे की सारी खिड़कियां व दरवाजे खोल दीजिए चाहे मौसम जाड़े ही क्यों न हो। फिर रोगी को उसकी इच्छानुसार प्राकृतिक जल स्नान कराइए और उसके बाद उसे धूप में बिठाकर या गरम रजाई या कम्बलों में लपेटकर पसीना लाने की कोशिश करें। रोगी को जितनी देर हो सके कपड़े उतारकर नग्न स्नान, हवा स्नान कराइए और फिर उसी तरह गर्मी पहुंचाइए। हवा स्नान जंगल में हो तो और भी अच्छा है। पेडू पर गीली चिकनी मिट्टी भी दो बार बांधी जावे। इससे दस्त खुलकर पचकर होगा। भोजन बन्द रखा जावे। भूख लगने पर थोड़े फल व दूध दिए जावें। ऐसा करने से अति शीघ्र अवश्य यह भयानक रोग समूल नष्ट हो जाएगा। कब्ज हो तो एनीमा देवें।

यह बात प्रत्यक्ष देखकर व जानकर भी कि सभी रोग प्राकृतिक उपचारों से मिट जाते हैं। लोग खामखां दवा के इलाज की हिमायत करते हैं। बीमार के मिलने-जुलने वाले दोस्त, रिश्तेदार बड़ी ही सहानुभूति दिखाते हैं। भूख न होने पर भी वे मोह व अज्ञानवश मरीज को कुछ खाने को मजबूर करते हैं और उलटा उसके रोग बढ़ने या मृत्यु का कारण बनते हैं, रोगी शरीर पानी मांग रहा है मगर लोग गरम व थोड़ा पानी पिलाते हैं और दवा रूपी जहर जबरदस्ती गले में उतारते हैं, जिससे शीघ्र रोगी बे मौत मर जाता है। अधिक स्नेही लोग पहुंचते हैं वे बीमार के कमरे की खिड़कियां बन्द करा देते हैं और दरवाजे में परदा डलवा देते हैं। आजकल यह सच्चा स्नेही माना जा रहा है। मगर अफसोस! पाठकरण अगर आप स्वयं

ये बातें जानते हों तो दूसरों पर इतना निर्भर न रहना पड़े और न धन खर्च हो, न अकाल मृत्यु या दुःख उठाना पड़े।

पुराने रोगों में क्षय, जलोदर, दमा, कुष्ठ, गठिया आदि में ऊपर लिखे सभी स्वाभाविक उपचार करना उचित है, परन्तु पुराने रोगों में लगातार धैर्य व दृढ़ता-पूर्वक महीनों व वर्षों तक इलाज जारी रहना चाहिए, तभी पूर्ण लाभ होगा।

सभी फेफड़े के रोगों में छाती पर गीली मिट्टी की पट्टियों व शुद्ध हवा में रहना अत्यन्त जरूरी है। पेट की व अन्य बीमारियों में भी मिट्टी के प्रयोग अति आवश्यक हैं, परन्तु इनमें भी फलाहार बड़ा जरूरी है। इसके बिना व जल्दी व पूर्ण आराम होना कठिन है।

हां, बहुत-से लोग आजकल सुबह पहले खाने बैठ जाते हैं और यह ख्याल लोगों के दिल में जमा हुआ है कि दस बजे तक जरूर भोजन कर ही लेना चाहिए। परन्तु यह धारणा बिल्कुल गलत है और इसके कारण हानियां होती हैं। प्रकृति के उद्देश्यों के अनुसार स्वस्थ मनुष्यों को भी बारह बजे से पहले तो भोजन नहीं करना चाहिए। शाम को भोजन करना चाहिए। अगर ऐसा न हो सके तो थोड़ा-सा ही सुबह खाना चाहिए। बीमारों को तो सुबह कुछ न खाकर तीसरे पहर या शाम को भोजन करना चाहिए। आरोग्य प्राप्त करने व दीर्घजीवी बनने की इच्छा करने वालों को ऐसा ही नियम बना लेना चाहिए। चाहे दुनियां के लोग कुछ भी कहें, हकीम, डाक्टर, वैद्य कुछ भी सलाह दें, परन्तु आप प्रकृति के मार्ग पर दृढ़ रहें, कभी निराशा न होगी। आरोग्य-लक्ष्मी अवश्य मिलेगी। अनेक धातु-भस्में, रस टॉनिक, यह सब फलों व दूध के मुकाबले में क्या चीज हैं। दवाइयां सदा शरीर का नाश करेंगी. दूध व फल सदा ही लाभ करेंगे। यह नियम अटल है और किसी के टाले नहीं टल सकता।

इतना जरूर सोच लेना चाहिए कि अगर प्राकृतिक उपचार करने पर भी जल्दी लाभ न दिखाई दे तो शांत व दृढ़ रहना चाहिए।

लोगों के बहकावे में आकर दवा, इंजेक्शन या चीर-फाड़ के फंदे में पड़ना उचित नहीं है। प्राकृतिक उपचारों से आरोग्य प्राप्त होना असंभव है और हमें बिना जाने उनसे बड़ी हानियां होती हैं।

मलेरिया को मच्छरों से, प्लेग को चूहों से व क्षय को कीटाणुओं से पैदा होना कहा जाता है और जनता में बड़ा भ्रम फैल रहा है, पर यह धारणाएं गलत हैं। स्वाभाविक जीवन बिताने वालों के लिए यह बातें व्यर्थ सी हैं, वास्तव में मलेरिया आंतों में मल जमने व रक्त अशुद्ध होने से होता है। मच्छर सफाई करते हैं। अन्त में मैं समाज से अपील करूंगा कि वह प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार करे।

प्राकृतिक चिकित्सा के कालेज (Naturo-Pathie College) व स्कूल खोले जाने चाहिए। व्याख्यानों द्वारा जनता में प्रचार होना चाहिए और प्रकाशन विभाग के द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा साहित्य प्रकाशित होना चाहिए। कन्या पाठशालाओं में भी यह शिक्षा दी जानी चाहिए। तभी हमारे भावी नागरिक, लड़के व लड़कियां इस योग्य बन सकेंगे कि वे वैद्य, डाक्टर, हकीमों की अनुचित दासता व गुलामी से बचकर अपने रोगों का इलाज आप कर सकेंगे और आरोग्यता के विषय में पूर्ण स्वतन्त्र होंगे। दूसरों के भरोसे न रहेंगे। आजकल के अज्ञानी लोगों की भांति वैद्य, डाक्टर, हकीमों के द्वार पर अपने आरोग्य की भीख मांगने न जाएंगे। क्या शारीरिक स्वराज्य सबको प्यारा नहीं है।

राजनैतिक स्वराज्य के लिए सर्वस्व अर्पण करने वाला समाज क्या अपने शरीर के आरोग्य के लिए सदा पराधीन गुलाम ही रहना पसन्द करेगा?

आरोग्य प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ स्थान कौन-से हैं

१—स्वास्थ्य को खो देने पर इस बात की खोज होती है कि रोगी का स्थान बदल दिया जावे। वास्तव में सर्वसाधारण जिन घरों में

रहते हैं, वे अनेक रोगों का कारण होते हैं, क्योंकि आजकल लोग अपने घरों को ऐसा बन्द बनाते हैं कि रोशनी व हवा अन्दर भी न जा सके। ऐसे नरक-तुल्य घरों में रहते हुए औषधि-सेवन से निराश रोगी बाहर आरोग्यता प्राप्त करने जाना चाहते हैं।

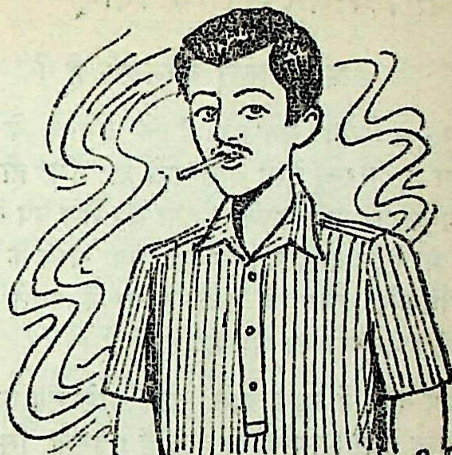
२—ऐसे बीमारों को आजकल के डाक्टर, वैद्य अक्सर समुद्र के किनारे समुद्र की हवा खाने भेज देते हैं, परन्तु मैं इस मत का विरोधी हूं क्योंकि मनुष्य का असली निवास-स्थान जंगल, पहाड़ की तराई आदि स्थान हैं। मनुष्य मुर्गाई या बगुला नहीं है कि उसे समुद्र तट पर रहना ही पड़े। उसे तो हरा-भरा, वृक्षों से आच्छादित स्वच्छ जल-युक्त स्थान चाहिए। इसलिए मेरी राय में समुद्रतट पर रहना इतना लाभदायक नहीं हो सकता। जंगल, पहाड़ की तराई, मैदान अच्छे हैं।

३—साथ ही बहुत ऊंचे पहाड़ों पर जाकर रहना भी उतना अच्छा नहीं जितना कि उनकी घाटियों में या नीचे रहना। पहाड़ों पर जरूरत से ज्यादा सरदी पड़ती है। बर्फ जमती है। इतना जरूर है कि क्षय आदि रोगों में ऐसे स्थान बड़े उपयोगी होते हैं, परन्तु हर एक रोगी न तो ऐसी जगह जाकर रह सकता है, न हर एक रोगी ऐसी सख्त सरदी सहन कर सकता है।

४ – मेरी राय में आरोग्यदायक स्थान बन है। जंगल कैसा सुन्दर होता है। अनेक हरे-भरे वृक्षों की शोभा, सुन्दर फूलों की शोभा, पक्षियों का सुन्दर गान, जीवन-दायक शीतल मंद हवा! कैसा उत्तम शांत स्थान होता है। ऐसे स्थान पर रोगी शीघ्र रोग-समूह से छूट जाता है, क्योंकि वहां हर एक चीज आरोग्यप्रद है, शुद्ध खुली ताजी हवा, सुन्दर भूमि, हरे-भरे वृक्ष सभी रोगों को हटाकर स्वास्थ्य-दायक हैं।

५—स्वास्थ्य-लाभ के लिए विदेशों में समुद्र पार जाना भी उतना ही भ्रम है जितना समुद्रतट। जिस प्राणी को प्रकृति ने जहां के लिए

रचा है वहीं की जलवायु उसके अनुकूल होगी। इसलिए जीवन से निराश सभी रोगियों को एक बार घर व ग्राम, नगरी का मोह छोड़-



१६

कर जंगल में प्रकृति देवी की गोद में जाकर आरोग्य-रूपी धन को खोजना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा के लिए

श्रेष्ठ ऋतु कौन-सी है ?

१—बहुत-से लोग समझते हैं कि इलाज के लिए गरमी का मौसम अच्छा है, परन्तु ऐसी बात नहीं है, वैसे ही अधिकांश रोग, क्षय आदि अन्दरूनी गर्मी बढ़ने से होते हैं। तेज धूप सहन नहीं होती। जानवरों में भी ऐसा देखा गया है कि धूप खाने के लिए बाहर आते हैं, परन्तु अधिकांश समय वे ठंडी साया में रहते हैं। भैंस पानी में पड़ी रहती है। मनुष्यों का भी यही हाल है।

२—गरम देशों में रहने वाले लोग काले रंग के, भद्दी शक्ल के, ठिगने, कमजोर तथा अल्प-जीवी होते हैं। इसके सिवाय इन देशों में कोढ़, बुखार, क्षय, खुजली आदि रोग बहुत फैलते हैं और लाखों इनसे कष्ट पाकर मर रहे हैं, सर्द मुल्कों के लोग दीर्घ-जीवी, सुन्दर बलवान होते हैं। वहां रोग भी बहुत कम होते हैं।

३—यह बात जरूर है कि सूर्य के प्रकाश से रोग पदार्थों का नाश होता है और धान भी गरमी से पकता है, परन्तु अधिक धूप सहन करने वाला कमजोर हो जाता है। शरीर में अधिक गर्मी बढ़कर बुखार आदि रोग हो जाते हैं और अन्दरूनी गर्मी से ही कमजोर होकर अक्सर मर भी जाते हैं।

४—मेरी राय में ठंडी हवा का स्नान आरोग्य प्राप्ति व बलिष्ठ बनाने का सर्वश्रेष्ठ साधन है। नंगे शरीर पर ताजा ठंडी हवा के लगने से सभी नसें बलवान हो जाती हैं और शरीर ताजा हो जाता है।

५—जो इलाज गर्मी के मौसम में छः माह में होगा, वह सर्दी में डेढ़ या दो माह में हो जाएगा। जाड़े के मौसम में ठंडी हवा का स्नान

व जल-स्नान थोड़ी ही देर लिए जा सकते हैं, परन्तु आश्चर्यजनक असर दिखाते हैं। बड़े-बड़े रोग, जो अनेक औषधियों व चीर-फाड़ से दूर न हो सके थे, केवल फलाहार से, मिट्टी के उपचारों से, मर्दन, उपवास आदि व ठंडी हवा के स्नान से समूल नष्ट हो गए हैं।

६—बसंत ऋतु वं पतझड़ ये दोनों ही चिकित्सा के लिए अच्छे हैं। इन ऋतुओं में वृक्षों आदि में भी परिवर्तन होता है और प्रकृति नवीन रूप धारण करती है। गर्मी के मौसम में प्रातःकाल और सायं-काल ठण्डी-ठण्डी हवा के स्नान अति आरोग्यदायक होते हैं, बारिश के मौसम में शीतल बूंदों में नहाना तथा जंगल में हरे-भरे मैदानों में घूमना और नंगे बदन वहां की ताजा हवा शरीर को लगाना मुर्दा शरीरों में प्राण संचार करने वाला है। बहुत-से गर्मी से मरे हुए तुरन्त उसी समय के रोगी इससे जी उठते हैं।

नंगे पांव चलना बड़ा ही स्वास्थ्यप्रद नियम है, परन्तु गीली धरती व गीले घास पर चलने से उससे अठ गुना अधिक लाभ होता है। अनेक नेत्र व सिर रोग इससे भाग जाते हैं। सारे शरीर की गर्मी भभका, घबराहट, बेचैनी ऊपर लिखे उपायों से दूर हो जाते हैं। जो लोग सदा गर्म बन्द कमरों में रहते हैं और गर्म प्रदेशों में रहते हैं, उनकी जठराग्नि बिल्कुल मंद पड़ जाती है, वे सदा बीमार रहते हैं, कभी सच्चा आरोग्य व सुख नहीं प्राप्त करते।

आज समाज में खासकर स्त्रियों में जीवन-शक्ति की कमी है, उन्हें गर्मी में बहुत गर्मी लगती है, जाड़े में जाड़ा बहुत लगता है, जरा भी मेहनत सहन नहीं होती। यह सब खराबी मेवा, फल व दूध के आहार से तथा नंगे बदन खुली ताजा व ठण्डी हवा में रहने से अवश्य दूर हो जायगी—इसमें संदेह नहीं है।

इसका मतलब यह नहीं है कि प्राकृतिक चिकित्सा में कष्ट ही कष्ट है आराम नहीं है, बल्कि आप धूप स्नान, हवा स्नान, जल स्नान के बाद गरम कपड़े पहनकर गरम कमरों में आराम से रह

सकते हो परन्तु लाभ तो ठण्डी हवा से ही होगा ज्यों-ज्यों आप प्रकृति के निकट आवेंगे त्यों-त्यों आपका स्वास्थ्य इतना सुधरता जायगा कि कपड़े, मकान, दवाइयां, मसाले आदि व नशा से आपको घृणा हो जायगी।

जितना अधिक ठण्डी हवा में कोई रहेगा जठराग्नि उतनी ही प्रबल होगी अलबत्ता बाद में गरमी लाना जरूरी है। ठण्डे पानी की अपेक्षा ठण्डी हवा अधिक बल व आरोग्यदायक होती है। बहुत कमजोर, खून जिनके शरीर में कम हो ऐसे रोगियों को तो अधिकांश हवा स्नान उपयोगी होता है, जल स्नान नहीं।

जिन लोगों को मैदान में जंगल में जाने का सौभाग्य न हो वे खिड़कियां खोलकर कमरों में नग्न स्नान कर सकते हैं। खासकर स्त्रियां और बच्चे। अलबत्ता हवा स्नान बिल्कुल नग्न होकर किया जाना चाहिए। कमरा बंद रखा जा सकता है। इसलिये सर्दी-ठण्ड के डर को हटा देना उचित है। अधिकाधिक ठण्डी हवा में वदन को खोलिये और आरोग्य लक्ष्मी आपके हाथ में है। जो लोग इस प्रकार प्रकृति के नियमों का पालन दृढ़ चित्त से करना सीख लेंगे उन्हें फिर अपने आरोग्य के लिए कभी न तो चिन्ता करनी पड़ेगी और न चिकित्सकों के द्वार पर आरोग्य की भीख मांगनी पड़ेगी।

प्राकृतिक चिकित्सा का वास्तविक सच्चा स्वरूप

१—जो सोना असली है उसकी बात कुछ और होती है नकली सोने में वह बात नहीं हो सकती। इसी प्रकार सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा भी कोई चीज है। उसमें बनावटीपन आने से वह बात नहीं रहती। आजकल लोगों ने प्राकृतिक चिकित्सा में अनेक कृत्रिम उपचार शामिल करके उसको विगाड़ दिया, जब झूठे अस्वाभाविक उपचार उसमें मिल गये तो पूर्ण लाभ भी नहीं होता। इसके सिवाय बहुत-से प्राकृतिक चिकित्सकों में मतभेद होने से भी इसे धक्का पहुंच गया।

२—प्रकृति के गूढ़ रहस्यों की खोज करने के बाद प्रीच निज ने यह सिद्धान्त निकाला था कि जल से सब रोग दूर होते हैं। इसके बाद डा० स्क्राथ ने यह और आविष्कार किया कि पतली चीजें न खाकर अगर मनुष्य ठोस पदार्थ खाय तो वह निरोग रहेगा, बीमार न होगा। फादर नीप का कहना है कि जूते पहनने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, आयु क्षीण होती है, आंखों की ज्योति कम होती है और साथ ही नपुंसकता भी हो जाती है इसलिए कल्याण व आरोग्य की कामना करने वालों को यथाशक्ति नंगे पांव चलना चाहिए। उनका यह भी सिद्धांत है कि मेह में भीगना स्वाभाविक है और ईश्वर की इच्छा है कि अन्दरूनी गरमी से व्याकुल नर शरीर मेह की प्राणदा शीतल बूंदों से शांति लाभ करे, इसीलिए उसने अपनी चिकित्सा प्रणाली में जल से भीगी चादर का प्रचार बढ़ाया।

फादर नीप का यह भी कहना था कि गरम पानी से स्नान करना हानिकारक है इसलिए इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

श्री एडाल्फ जुस्ट का यह मत है कि मनुष्य मकानों में रहने से बीमार होता है, इसलिए अगर कोई मनुष्य आरोग्य या दीर्घायु की कामना करे तो उसे चाहिए कि वह बजाय औषधि-सेवन के शुद्ध ताजी हवा में रहे, कपड़े यथाशक्ति कम पहने, केवल भूख लगने पर ही (दूध, फल, मेवा, शाक) आदि खाए, जमीन पर सोवे तभी वह व्याधियों से मुक्त होगा। औषधियों से कभी रोग दूर नहीं होते केवल बाहरी लक्षण दूर होकर शरीर सदा के लिए और निकम्मा हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के चमत्कार

पुरानी गठिया—एक साठ वर्ष के बूढ़े को कई वर्षों से गठिया का रोग था। घुटने सुज गये थे और भारी पीड़ा होती थी, अब वह चल-फिर भी नहीं सकता था। भाप, सूर्य किरण चिकित्सा, रंगीन कांच के प्रयोग आदि से पूर्ण लाभ नहीं हुआ था। उसकी हालत खराब

होती गई और अन्त में डाक्टरों ने कहा कि एक पांव काटना पड़ेगा। ऐसे समय में मेरी पुस्तकें उसके हाथ लग गईं। उन्हें पढ़कर अपने प्राकृतिक स्नान, रोशनी हवा के स्नान, फलाहार, उपवास आदि किए और कुछ ही महीनों में वह बिल्कुल अच्छा हुआ। उसके घर वालों व मित्रों को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि बिना किसी दवा या चीर-फाड़ किए इतना बड़ा रोग इतनी जल्दी अच्छा हो गया और टांग कटने से रह गई।

मोटापा या भारीपन—एक महाशय शरीर से बहुत मोटे हो गये थे। हाथ-पांव फूल कर कुप्पा हो गये थे। जरा सी दूर चलने में आप हांपने लगते थे। अनाज की एक बोरी से आपका वजन कम न था। अनेक बीमारी घर करने लगी थीं। आप गृहस्थ सुख से वंचित थे। आपने मुझसे राय पूछी। मैंने कहा आपको पुरानी कब्ज है इसी से आपका वजन बढ़ गया है।

इन महाशय को ४ माह तक अन्न छोड़ना पड़ा केवल कच्चा दूध, फल, मेवे, हरे शाक आदि खाकर रहे। प्राकृतिक जल स्नान काफी देर तक दोनों समय कराया जाता था। जंगल में कुछ देर घुमाया भी जाता था। रोशनी व हवा का स्नान, धूप स्नान आदि विधि पूर्वक कराये जाते थे। नंगे पांव, नंगे सिर रहने की खास हिदायत थी। कभी-कभी एक-दो दिन का उपवास भी कराया जाता था।

इन प्रयोगों ने चार माह में ३५ सेर वजन घटा दिया, शरीर हल्का हो गया, बीमारियां सब जाती रहीं। पुनः पुरुषत्व आ गया, मोटे पद्दड़ शरीर वाले भला मनुष्य जीवन का क्या उपभोग कर सकते हैं। उनके लिए दुनिया भार है। वे इस प्रणाली से पूर्ण रूप से सुखी हो सकते हैं।

मिरगी के दौरे—एक मनुष्य को नौ साल से मिरगी के दौरे आते थे। बेचारा डाक्टरी, आयुर्वेदिक, हिकमत सबसे निराश हो चुका था। उसकी हालत इतनी खराब हो चुकी थी कि वह काम करने के योग्य भी न रहा। घर से अनादर होने लगा। मूर्च्छा में वह पृथ्वी पर गिर

पड़ता था और मुंह में झाग से आ जाते थे। रोगी अपने जीवन से निराश होकर आत्महत्या का विचार करने लगा। उसने होमियोपैथी का इलाज कराया, जिससे क्षणिक अल्पलाभ तो दिखाई दिया पर रोग बना ही रहा, क्योंकि इन अस्वाभाविक उपचारों से रोग समूह नष्ट नहीं होता।

सच्चे स्वाभाविक उपचारों से उसे शीघ्र लाभ हुआ। इलाज इस प्रकार किया गया—कपड़े उतारकर ठण्डी हवा में नंगे रहना, ठंडे पानी का जल स्नान, धूप स्नान व पसीना लेना, खुली हवा में घूमना, बिना कुछ बिछाए जमीन पर सोना, बैठना व चलना, भोजन में वह मेवा, हर प्रकार के गीले, ताजे व सूखे फल, कच्चा दूध, थोड़ी अलूनी व सूखी रोटी हरे शाक आदि खाता था। दोपहर तक उसे कुछ भी भोजन नहीं दिया जाता था। पृथ्वी पर सोने में वह बड़ा ही आनन्द मानता था।

लगभग २।। मास के इस निरन्तर इलाज से वह रोगी स्वस्थ, ताजा व प्रसन्न था। उसका यह कहना था कि मुझे सबसे अधिक लाभ रात को जमीन पर खुली हवा में नग्न सोने से हुआ है। उसका यह भी कहना था मुझे स्वप्न में भी ऐसी आशा न थी मेरा ऐसा भयानक रोग, जिसे डाक्टर, वैद्य, हकीम असाध्य कह चुके थे, वह बिना किसी दवा के ऐसे सीधे-साधे प्राकृतिक उपचारों से ठीक हो जायगा।

इसके बाद यह हमारे यहां से अपने घर चला गया और इलाज जारी रखा। मगर आज तक फिर कभी स्वप्न में भी उसे दौरा नहीं आया। सच है, अगर आज मिर्गी, हिस्टीरिया आदि के रोगी—चाहे वे स्त्री हों या पुरुष—अपने दिल से दवा के भूत को दूर करके प्रकृति की शरण लें तो अवश्य उन्हें पूर्ण सफलता मिल सकती है। मगर चूंकि दुनियां की दवा लेती है, नुस्खे-काढ़े पीती है फिर सभी क्यों न उसी गड्ढे में गिरें। भेड़ और ऊंट भी तो अंधों की तरह देखा-देखी काम करते हैं, फिर मनुष्यों का ही क्या अपराध है?

कठिन पुराना सिर दर्द व बहरापन

एक मनुष्य अपने मकान की छत से गिर पड़ा था, जिससे उसके सिर में सख्त चोट आई थी। उस मनुष्य का रक्त दूषित था, शरीर मैल से भरा हुआ था। चोट लगने से सहज ही सिर में मवाद भर गया। उसे भारी सिर पीड़ा होने लगी। वह ज्ञान शून्य हो गया। पहले से भी वह एक कान से कम सुना करता था, क्योंकि विजातीय द्रव्य मैल उसके कान के परदे में भर गया था। डाक्टरों ने चीरा भी दिया था और उसे ऐसा ख्याल हो गया था कि कान का परदा फट गया है। उसे एक आंख से भी कुछ कम दिखाई देता था। डाक्टरों ने उसे असाध्य कहकर छोड़ दिया था।

निराश होकर रोगी प्राकृतिक चिकित्सा के लिए आया। दो माह में वह ठीक हो गया। १५ दिन में ही आराम नजर आने लगा। ठंडी हवा ने उसे बड़ा लाभ पहुंचाया। उसके दिल में यह बात जमी हुई थी कि सरदी लग जाने से ही मनुष्य बीमार होता है, मगर अब उसे पहले-पहल यह जान पड़ा कि ठंड सरदी हमारे शरीर के लिए अत्यन्त लाभप्रद व जरूरी है और जो लोग इससे हटकर अपने शरीर को सदा गरम रखते हैं वे बड़ी भारी भूल करते हैं और पछताते हैं।

प्राकृतिक उपचारों से उसका शरीर निर्मल हो गया। सिर की व्यथा मिट गई। इतना ही नहीं आखिरी दिनों में वह अपने बहरे कान से भी सुनने लगा, क्योंकि कान के परदे का मैल दूर हो गया था। उसने बाद में घर पर भी इलाज जारी रखा। इलाज यह था—कटि-स्नान, नंगे पांव रहना, हवा का नग्न स्नान, फलाहार आदि। यह रोगी पहले रोटी आदि खाने का आदी था और दुनियां की तरह समझता था कि अन्न के बिना मनुष्य जिंदा नहीं रह सकता या बहुत दुर्बल हो जाता है, परन्तु मेवा, फल व दूध के आहार पर रहने से उसके विचार बदल गए, क्योंकि अब वह अधिक प्रसन्न, निरोग, चपल व बल-वान था।

उसे यह भी अनुभव हो गया था कि आग से पके तमाम पदार्थ मुर्दा खुराख हैं। उनमें पोषक तत्त्व नहीं रहते, इसलिए अगर कोई मनुष्य सदा नीरोग रहना चाहे तो सभी चीज स्वाभाविक अवस्था में खावे और अगर वह ऐसा न कर सके तो रोगी होने पर ही ऐसा करे तो वह अवश्य ही रोगों के फंदे से छूट जायगा।

पेट की बीमारियां

एक मनुष्य, जिसकी आयु ४० वर्ष थी, कई दिनों से मंदाग्नि से पीड़ित था। उसे अक्सर उल्टी-दस्त हो जाते थे। रोग परीक्षा से यह सिद्ध हो गया था कि पेट में बदगोश्त (Cancer) है। वह अच्छी तरह भोजन नहीं पचा सकता था। कमजोर बहुत हो गया था, नाना प्रकार की दवाइयां, भस्में, पर्पटी आदि उसकी सहायता न कर सकी थीं; उल्टा इनसे रोग बढ़ रहा था। पैसा भी खूब खर्च हो रहा था। चिकित्सकों के हाथ अच्छे रंग जाते थे।

निराश रोगी प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह में लाया गया। उसी रोज उसने तीस उल्टियां कीं। उसे बाग में हवादार खुली झोंपड़ी में रखा गया और कपड़े उतार दिये गए, गीली चिकनी मिट्टी की पट्टी उसके पेट में बांधी गई और घंटे-घंटे से पट्टी बदल दी गई, इससे उसकी उल्टी (कै) होना बन्द हो गया। जब पट्टी उतारी जाती थी फिर कै शुरू हो जाती थी।

उसे प्राकृतिक स्नान व नग्न हवा स्नान भी विधिपूर्वक कराये जाते थे। दस दिन वह रहा, उस अरसे में उल्टी बिल्कुल बंद हो गई। भूख भी लगने लगी, दस्त बंधकर आने लगे, रोगी को नींद भी खूब आने लगी, लगभग एक मास में वह ठीक होकर अपने घर पर चला गया।

मंदाग्नि संग्रहणी का रोग आज कितनों के जीवन नष्ट कर रहा है। कितने व्यक्ति हजारों-लाखों रुपये खर्च करके भी इसमें कष्ट

पाकर मारे जाते हैं, अपने पीछे बेचारी स्त्री व बच्चों को बिलखता छोड़ जाते हैं। मगर इसके लिए दोषी कौन है ? दोष है वर्तमान शिक्षा प्रणाली का वरना इतना अन्धेर क्यों रहे।

हम लोगों में यह भावनाएं दृढ़ जम गई हैं कि रोग पूर्व जन्म के पापों का फल है, पर ऐसा नहीं है। रोग इसी जन्म के प्राकृतिक नियमों के उल्लंघन को सजा है। इसके सिवा आरम्भ से ही बोतल देवी की आराधना शुरू हो जाती है। बचपन से ही औषधालय, अस्पताल जाने की लत पड़ जाती है। कोई यह कोशिश नहीं करता कि स्वयं अपना इलाज आप कर लें।

कोई मनुष्य मोटर तो खरीदे और उसे चलाना व रखना सुधारना न जाने तो उसके बराबर मूर्ख कौन होगा। उसे सदा ड्राइवर आदि के भरोसे रहना पड़ेगा, परन्तु जो स्वयं मोटर का सब काम जानता है उसे फिर पराया मुंह क्यों ताकना पड़ेगा ?

आरोग्य कहां है ?

क्या स्वास्थ्य दवा या चीर-फाड़ से मिल सकता है ?

बार-बार के अनुभव से सिद्ध हो चुका है कि औषधियां, शस्त्र-क्रिया, इंजेक्शन आदि केवल रोगों के लक्षणों को दबा सकते हैं, रोगों को समूल नष्ट नहीं कर सकते और वर्तमान चिकित्सा पद्धति मनुष्य जाति को दिन-दिन अधिक रोगी और अल्प जीवी बना रही है।

खेद ! लोग दवा खाकर अपना धन और शरीर दोनों सभी नष्ट कर रहे हैं। याद रखिये ! शरीर में रोगों को दूर करके उसे नीरोग रखने को शक्ति मौजूद है, पर लोग अज्ञान व नासमझी से उल्टे उपाय करते हैं और पथ भ्रष्ट हो रहे हैं।

प्राकृति शरीर की साफ करके फिर से ठीक-ठीक काम करने योग्य बनाने के लिए रोग-निवारक कष्ट उत्पन्न करती है, इसलिए उसके कार्यों में बाधा पहुंचाना मानो अपने हाथों शरीर का नाश करना है।

शरीर के रोग-निवारक प्रयत्नों में दवा, चीर-फाड़, इंजेक्शन, टीका, बिना भूख खाना आदि द्वारा बाधा पहुंचाने से व्यर्थ ही बहुत-सा धन खर्च हो जाता है, रोग दूर हो जाने में बहुत दिन लग जाते हैं, बड़ी भारी पीड़ायें और यातनायें भोगनी पड़ती हैं, छोटे-छोटे रोग बढ़कर भयानक रूप धारण कर लेते हैं और बहुधा लोग समय से बहुत पहले मौत के मुंह में चले जाते हैं, क्योंकि रोगों को अच्छा करना केवल प्रकृति ही जानती है—मनुष्य बिल्कुल नहीं जानता है।

मिसाल के लिए जुकाम को लीजिये—जुकाम कुछ भी नहीं सिर्फ शरीर की सफाई के लिए किया गया एक प्रयत्न है, जिसके द्वारा वह अपने अन्दर भरे हुए मैल को नाक या मुंह के जरिये बाहर फेंकता है और जब वह अपनी सफ़ाई पूरी कर चुकेगा जुकाम स्वयं ही मिट

जायगा। इसमें दवा देने की क्या जरूरत है। अगर दवा के जरिये आप जुकाम दूर करने की कोशिश करते हैं तो आप अव्वल तो प्रकृति के रोग-निवारक प्रयत्न में बाधा डालते हैं, दूसरे आप दवाइयों या डाक्टर-वैद्यों की फीस में अपना पैसा बरबाद करते हैं, तीसरे आप अपना कीमती समय नष्ट करते हैं, चौथे आप जुकाम को दवा के जरिये दबाकर सिर दर्द, बुखार, दमा या क्षय जैसे भयानक रोगों को निमन्त्रण देते हैं!

दूसरा उदाहरण लीजिये! एपेंडिसाइटिज या आंतों की सूजन के लिए आमतौर पर लोग शस्त्र क्रिया को ही एक मात्र इलाज समझ रहे हैं। लोगों को मालूम नहीं है कि अन्य रोगों की भांति आंतों का यह रोग केवल नियमित उपवास, एनीमा, पूर्ण विश्राम, जल के प्रयोग व फलाहार आदि सीधे-सादे प्राकृतिक उपचारों से बड़ी सुगमता से अच्छा किया जा सकता है और हजारों-लाखों रोगी रोग मुक्त हो चुके हैं किन्तु लोग अपनी आदतों व अंध विश्वास को नहीं हटाते।

वे झट सर्जन, डाक्टर को बुलाते हैं और वह अपने अस्त्र-शस्त्र आपरेशन का सामान लेकर आता है और एपेंडिक्स को चीरा देकर निकाल देता है.और रोगी समझता है कि मैं अच्छा हो गया और सर्जन समझता है कि मैं सफल हो गया, परन्तु बात कुछ और ही है। रोगी का हृदय कमजोर हो जाता है, आयु घट जाती है और बहुधा अनेक अधिक भयानक रोग, बदगोश्त आदि हो जाते हैं। ऐसे रोगी आजन्म कष्ट भोगते हैं।

कैसा आश्चर्य है कि हमारे डाक्टर, वैद्य आधुनिक चिकित्सा के सभी साधनों से युक्त होकर भी रोगों के इलाज में बड़े असफल हो रहे हैं इसका कारण यह है कि वे लोग सर्वथा गलत सिद्धान्तों पर चल रहे हैं। मुझे बड़े अफसोस के साथ लिखना पड़ता है और लिखते बड़ी लज्जा आती है कि रोगी और चिकित्सक व जन साधारण शरीर के विकारों या रोगों के बारे में बहुत अनभिज्ञ हैं। उन्हें कोई जानकारी

नहीं है। इससे तो यही लाख दरजे अच्छी बात है कि सभी अस्पताल, दवाखाने व दवाइयों की दूकानें बन्द कर दी जावें, ताकि लोग दवा लेने की आदत छोड़ दें और पथ्य से रहने लगें।

जब दवाखाने उठ जायेंगे तो लोग स्वयं प्रकृति की शरण में जाकर अपना इलाज स्वयं कर लेंगे और अनाप-शनाप दवाइयां खाकर अपने शरीर का सत्यानाश नहीं करेंगे और फिर लोग इतनी जल्दी मौत के मुंह में नहीं जायेंगे। दवा तो मानव-जाति का सबसे बड़ा दुश्मन है। पर लोग दवा को विज्ञान और प्राणदाता कहकर पुकारते हैं, पर मेरा मत तो इससे सर्वथा भिन्न है। दवा केवल अज्ञानता और प्राणनाशक है।

यदि चिकित्सक वास्तव में ठग नहीं हैं तो वे अज्ञानी अवश्य हैं, क्योंकि वे दवा की असलियत और उसके वास्तविक कुप्रभाव को समझने में भारी गलतियां करते हैं। सच पूछा जाय तो बड़े-बड़े पुराने प्रसिद्ध डाक्टर, वैद्य भी निदान व चिकित्सा और मानव-शरीर पर होने वाले दवा के प्रभाव को अब तक नहीं समझ सके हैं।

दवा केवल कपोल कल्पित वस्तु है और ऐसी ही रहेगी। कौन जानता है कि सिर दर्द, संधिवात या हृदय रोग, बुखार कैसे ठीक होते हैं। यद्यपि लोग इन रोगों से मुक्त जरूर होते हैं पर कैसे? क्या वे दवा से ठीक होते हैं? हरगिज नहीं। उन्हें प्रकृति अच्छा करती है।

प्रसिद्ध विद्वान डाक्टर सर विलितम हावर्डहे लिखते हैं—"मेरा बहुत दीर्घ कालीन अनुभव है कि औषधि विज्ञान कल्पित व धोखे की टट्टी है।" आगे वे लिखते हैं—"मैं पहले एक बड़ा डाक्टर था, हर साल तीन-चार हजार रोगी मेरे जेर इलाज रहते थे, इन रोगियों पर मैंने इस प्रकार अनुभव किये हैं—

रोगियों के एक भाग को बाकायदा अस्पताल की एलोपैथिक दवाइयां दी जाती थीं और परिणाम व कारण का कुछ विचार नहीं

था। दूसरे भाग को रंगीन पानी और साधारण गोलियां (होमियोपैथी) दी गईं और उनको यह भेद नहीं बताया गया। तीसरे प्रकार के रोगियों को कुछ भी न देकर स्वस्थ रहने के नियम सिखाता और दवा की कहानियां समझाता रहता, परन्तु ऐसे लोग मुझसे नाराज थे कि डाक्टर साहब हमारी तवज्जह नहीं रखते और दवा भी नहीं देते, कैसे बीमारी अच्छी होगी।

निराश व खिन्न होकर ऐसे रोगी घर जाते और लाचार होकर प्रकृति पर निर्भर रहते। पर आश्चर्य ! ऐसे सभी रोगी अच्छे हो गए थे और जिन लोगों को रंगीन पानी या होमियोपैथी की केवल चीनी आदि की निर्दोष गोलियां गईं थीं उनमें कोई-कोई एक-आध मरे बाकी लगभग सब अच्छे हो गए—लेकिन जिन लोगों को अस्पाल की एलोपैथिक दवाइयां दी जाती थीं उनमें करीब २० फीसदी मर जाते थे और ३० फीसदी को कठिन पुराने रोग आ घेरते थे।"

क्या रोग व अकाल मृत्यु का कारण अग्नि है ?

मनुष्य जाति के अधःपतन, रोगों की वृद्धि व उत्पत्ति का, अकाल मृत्यु का तथा पापों का कारण एक मात्र अग्नि का आविष्कार है। अग्निदेव की सहायता से ही वह इस कदर प्रकृति के मार्ग से हटकर विनाश के गढ़े में गिर रहा है।

सृष्टि के आरम्भ में, आदि काल में मनुष्य स्वाभाविक कच्चा आहार करता था इसलिये वह सदा रोग रहित था, स्वप्न में भी वह दुखी न होता था। मदिरा, मांस और दवाइयां जानता भी न था। किन्तु सभ्य मनुष्य नें अग्नि का आविष्कार किया और उसी की सहायता से वह अनेक तरह के भोज्य-पदार्थ रोटी, मिठाई, आचार, चटनी, मुरब्बे, चाय बना सका। आगे जाकर उसने नशे के लिए शराब बनाई जिसके कुप्रभाव से उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई और वह अनेक पाप कर्म करने लगा और आग से पके आहार से वह बीमार होने

लगा तो उसने रोग हटाने के लिए नाना भांति की दवाइयां तैयार कीं जिनसे वह और भी अधिक बीमार व अल्पजीवी हो गया।

आज जिस ठाठ-बाट, विलासी सामग्री, सैर-सपाटे में मनुष्य आनन्द का अनुभव कर रहा है वह केवल भुलावा है और इनका अन्त सदा दुखदाई होता है। अग्नि के बिना यह सब असंभव था।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि मनुष्य का अधःपतन केवल अग्नि के उपयोग के कारण हुआ है, परन्तु आज मनुष्य को अपने शत्रु और मित्र की पहचान नहीं है, आज वह अग्नि को वरदान व परम हितकारी समझकर उसकी पूजा करता है और यह मानता है कि उसी के कारण वह सुखी हुआ है।

प्रोमीथियस की कथा से साफ प्रगट है कि देवों ने मनुष्यों के अग्नि के आविष्कार का कैसा घोर विरोध किया था और यह कि अग्नि के उपयोग करने का उसे कैसा कठोर दंड मिल रहा है और यह कि कैसे-कैसे दुःख, रोग, पाप, संताप अग्नि के कारण मनुष्य को कष्ट दे रहे हैं।

मांस को स्वादिष्ट बनाकर खाने की लालसा से प्रोमीथियस स्वर्ग से आग को चुराकर पृथ्वी पर ले आया। इस पर लार्ड जीजस बड़ा ही कुपित हुआ। उसने प्रोमीथियस को जंजीरों से जकड़कर पहाड़ से बांध दिया जहां पर गृद्ध आकर उसका कलेजा खा गये।

परन्तु उसका ज़िगर खाये जाने के बाद फिर नवीन पैदा हो जाता और इस प्रकार गीधों को बराबर नई खुराक मिलने लगी और प्रोमीथियस को बार-बार महान् कष्ट होने लगा। इस पर देवों ने पंडोरा को भेजा और उसके साथ सभी रोग, कष्ट, पाप और दुख भी आ गये।

अगर आप ध्यान पूर्वक देखेंगे तो साफ-साफ समझ में आ जायगा कि किस प्रकार मनुष्य जाति अग्नि के कारण भयानक कष्ट झेल रही है।

यदि संसार में अग्नि न हो तो मनुष्य के लिए मांस रूपी अत्यन्त घृणित अभक्ष्य वस्तु खाना सर्वथा असम्भव हो जाय, क्योंकि अग्नि के बिना वह अनेक मसाले मिलाकर उसे भून या पका नहीं सकता। दूसरे अगर आग न हो तो वह लोहे से छुरी, तलवार, कटार, बन्दूक, गोली तैयार नहीं कर सकता और इनके बिना वह बेचारे गरीब जानवरों की हत्या भी नहीं कर सकता। इसके सिवा आग के बिना किसी प्रकार की शराब, अफीम, गांजा, चरस भी पीना असम्भव है क्योंकि ये चीजें आग से ही बनकर तैयार होती हैं। तम्बाकू भी बिना आग के कोई नहीं पी सकता। इसलिए तम्बाकू से होने वाली अपार हानियों का भी कारण अग्नि ही है। कच्ची तम्बाकू कोई नहीं खा-पी सकता।

आज संसार में जितनी तेज औषधियां, भस्में, मिक्सचर, काढ़े, अरिष्ठ, गोली आदि तैयार होती हैं, लगभग सभी को बनाने में आग का ही उपयोग होता है। इसलिए मांस भक्षण, मदिरा पान, नशा और दवा का उपयोग अग्नि के ही कारण सम्भव है और इसीलिए इनके उपयोग से मनुष्य भयानक रोगों का शिकार होकर जल्दी मर रहा है।

यह बात प्रत्यक्ष है कि आग में पकाने के बाद अच्छी से अच्छी खूराक मुर्दा, साररहित और गरिष्ठ हो जाती है और ऐसी सेंकी हुई, पकाई हुई, मसाले, मीठा, नमक आदि मिली हुई खूराक ही मनुष्य को बीमार, अल्प जीवी और कुरूप तथा पापी बनाती है।

जरा जंगल के जानवरों के जीवन पर निगाह डालिए। वे कच्चे शाक, तरकारी, पत्ते, चारा खाकर कैसे सुन्दर व रोग रहित रहते हैं। वे तभी बीमार होते हैं जब वे मनुष्य की आधीनता में आ जाते हैं, जो उन्हें अन्धेरे बन्द गंदे स्थानों में रखता है, कपड़े उढ़ाता है, आग से पके उबले पदार्थ खिलाता है और दवाइयां देता है।

आप लोग जानते ही हैं कि दूध बेचने वाले लोग अक्सर जानवरों को काकड़े, जौ, गुवार, आलू, खल व अन्य चीजें उबालकर आग से पकाकर खिलाते हैं, आग से पकने पर हर एक चीज मुलायम होने से, विना चबाए झट से गले में उतर जाती है और उसमें लार अच्छी तरह नहीं मिलती, इसलिए वह अच्छी तरह न पचकर पेट में सड़ती है और रोग पैदा करती है। ऐसे अस्वाभाविक आग से पके चारा, बांट खाने से जानवर जल्दी ही मोटे, फफ्फस, भद्दी शक्ल के, सुस्त और बीमार हो जाते हैं। ऐसे जानवर दीखने में मोटे-ताजे मालूम होते हैं, पर वे दरअसल बीमार और सुस्त रहते हैं और जल्दी अनेक व्याधियां उन्हें आ घेरती हैं।

वहुत समय तक आग से पके सार-रहित पदार्थ जरूरत से बहुत ज्यादा व बिना चबाए खाते रहने से उनका मेदा थककर बिल्कुल निकम्मा हो जाता है और पहले वह थोड़ी-सी स्वाभाविक खुराक से पूरा पोषण शरीर को देता था और अब बहुत अधिक खाकर भी उसका रस न बनने से शरीर को उचित पोषण नहीं मिलता है।

जानवर जब स्वाभाविक भोजन को आग से पकी हुई हालत में खाने से ही बीमार हो जाते हैं, तो जरा सोचिए! हम मनुष्यों का क्या हाल होगा जो अस्वाभाविक भोजन भी करते हैं और उस खुराक को अनेक प्रकार से सुखा, पीसकर, काटकर, सेंककर, उबालकर, मसाले व मीठा मिलाकर रोज दोनों-तीनों समय खाते हैं।

अव्वल तो हम लोग वैसे ही ऐसी चीजें खाते हैं जो प्रकृति ने हमारे खाने के लिए नहीं बनाई हैं। इसके सिवा हम आग से पकाकर अनेक वस्तुएं मिलाकर उन्हें निःसार, गरिष्ठ और हानिकर बना लेते हैं। ऐसी हालत में गौर कीजिए उस खुराक से हमारा कैसा सर्वनाश, कैसी हानियां होती होंगी—इसका अनुमान लगाना कठिन है।

लगातार आग से पकी चीजें खाने से शरीर के पाचक अंग शीघ्र ही खराब हो जाते हैं और शरीर में विजातीय द्रव्य (मैल) बनना शुरू हो जाता है जो कि समस्त रोगों और विकारों का मूल कारण है।

यह विजातीय द्रव्य मनुष्य शरीर को बदल देता है। इसके संचय के कारण फोड़े, फुन्सी, खाज, खुजली, कोढ़, सूजन, बुखार, सिर-दर्द आदि रोग पैदा होने लग जाते हैं और शरीर की आकृति भिन्न हो जाती है।

मनुष्य इन विकारों व रोग-निवारक कष्टों के मूल कारणों को समझने की चेष्टा नहीं करता। वह अपनी बुद्धि से बनाए मिथ्या उपायों से इन रोग-निवारक कष्टों को चीर-फाड़ से, मलहमों के लेप से, अनेक गोलियों से, काढ़े व इंजेक्शनों द्वारा दबाने की कोशिश करता है।



परन्तु परिणाम उल्टा होता है। रोग घटने के बजाय बढ़ते हैं, क्योंकि हर रोग नया विजातीय द्रव्य, आग से पके आहार के कारण बनता रहता है और नई-नई व्याधियां पैदा होती रहती हैं। अपने ही अज्ञान, नासमझी व मूर्खता के कारण मनुष्य रोग के असली कारण को नहीं समझता और इसलिए झूठे उपाय करके वह रोज-रोज अधिक बीमार व दुःखी रहता है, उसके कष्ट व पीड़ाएं कभी समाप्त नहीं होतीं।

जब तक वह प्रकृति की ओर नहीं लौटता, वह दुःखी और रोगी

ही बना रहेगा और अपने किए की सजा पाएगा। तो फिर क्या रोग-समूह, अकाल-मृत्यु व कष्टों से बचने का कोई उपाय ही नहीं? अवश्य है। अब भी मनुष्य यदि अपनी खूराक आग से पकाना छोड़ दे और केवल स्वाभाविक पदार्थों को स्वाभाविक कच्ची अवस्था में खाने लग जाए तो रोगों के विनाशकारी चंगुल से बच सकता है।

आज भी अगर लोग दूध को कच्चा, फीका, धारोष्ण पीने लगें औटाएं नहीं, केवल फल, हरे शाक, कन्द-मूल, हरा-कच्चा अन्न व मेवे-जात खाने लगें तो फिर वे कभी बीमार ही न होंगे और फिर न उन्हें किसी डाक्टर की जरूरत है, न चीरफाड़ की, न वैद्य की जरूरत है न दवाइयों की और न ही उसे नरसों की जरूरत है और न जच्चा घरों की।

जरा ध्यान देकर देखें, स्वाभाविक जल कैसा शांतिदायक, ताजगी लाने वाला, मधुर और हृदय को प्रिय होता है और आग से गर्म करने पर वह कैसा फीका हो जाता है, खाल और नाड़ी-समूह तथा ज्ञान-तन्तुओं को कैसा कमजोर बना देता है। ठीक इसी प्रकार गर्मागर्म चीजें खाने से दांत, जीभ, कण्ठ, पेट और आंतों पर भी बड़ा घातक प्रभाव पड़ता है, इसीलिए उचित है कि सभी प्रकार की खुराक ठण्डी करके खाई जावे, गर्मागर्म कभी न खावे, न गर्म पीवे, वर्ना थोड़े दिन में इसका खराब असर होकर आपको भारी नुकसान उठाना पड़ेगा।

मान लीजिए आज दुनिया में इतनी सब्जी, साग, फल, मेवा, दूध व कच्चे हरे अन्न हैं कि मनुष्यों के लिए काफी हैं, तो वह अगर उन्हें स्वाभाविक कच्ची अवस्था में खाएगा तो गर्म चीज खाने की नौबत ही न आवेगी और गर्मागर्म चीजें खाने से होने वाली हानियों से वह बच जाएगा।

इसके सिवा कच्चा नैसर्गिक आहार करने पर इस बात का भय बिल्कुल नहीं रहेगा कि वह जरूरत से ज्यादा खा सकेगा, क्योंकि कोशिश करने पर भी स्वाभाविक वस्तुओं को जरूरत से ज्यादा खाना

महाकठिन है, लेकिन प्रकृति-विरुद्ध चीजें, आग से पकी, मीठा, मसाले मिले पदार्थ, हलुवा, पक्वान्न, मीठी चीजें, अचार, मुरब्बे, नमकीन चीजों आदि को मनुष्य बड़ी सरलता से जरूरत से ज्यादा खा जाता है और भारी कोशिशें करने पर भी वह जीभ को वश में नहीं रख सकता और ज्यादा खाकर बीमार हो जाता है।

संसार में जितने पाप, अत्याचार, हत्याएं, अपराध, चोरी-डाके आदि हो रहे हैं उनका भी मूल कारण अग्नि का उपयोग ही है। जब तक मनुष्य फलाहारी, शाकाहारी, कन्द-मूल आहारी व दुग्धाहारी था, तब तक वह सभी विकारों और पापों से रहित था, जैसा कि प्राचीन इतिहास से पता चलता है। अग्नि से पके पदार्थों के आहार से केवल रोग ही उत्पन्न नहीं होते; बल्कि सभी मानसिक विकार अपराध वृत्ति उत्पन्न होती है, क्योंकि शरीर और अन्न का गहरा सम्बन्ध है।

शरीर में विकार होने से मन भी विकृत हो जाता है और नाना भांति की दुष्ट भावनाएं उत्पन्न होती हैं, केवल फलाहारी, शाकाहारी जीव ही ब्रह्मचारी, तपस्वी, निष्पाप रह सकते हैं—ऐसा हमारे धर्म-शास्त्र कहते हैं।

रात-दिन आग से पके पदार्थ, रोटी, मिठाइयां, मसाले, अचार, मांस, मदिरा, नशीली चीजों से मनुष्य की बुद्धि विकृत व भ्रष्ट हो जाती है। देव स्वरूप शरीर राक्षसी-वृत्ति का हो जाता है, व्यभिचार, चोरी, हत्या, चुगली, कपट करने लगता है। इन सब पापों से दूर रहने के लिए वह नीति-शास्त्र का अध्ययन करता है, परन्तु वह मन को वश में करने में असमर्थ होता है। और यह जानते हुए भी कि पाप का परिणाम बुरा होता है, वह बार-बार दण्ड पाने पर भी मजबूर होकर फिर पुराने अपराध करके कष्ट पाता है।

केवल अग्नि की सहायता से ही मनुष्य ने भवन निर्माण किया, शिक्षा-शालाएं, फैक्टरी आदि बनाई और ईंट-पत्थर चूना, लकड़ी,

सीमेंट के बड़े-बड़े घर, मकान, बंगले व शहर बनाए, जिनमें रहने से वह दिन-दिन कमजोर और बीमार रहने लगा।

जब तक मनुष्य ने आग की सहायता से अपने रहने को पक्के मकान नहीं बनाए थे वह बड़ा बलवान, दीर्घजीवी और निरोग रहता था, क्योंकि वह पहले जंगल में रहता था, पृथ्वी माता की गोद में सोता था, जहां वन की शुद्ध आरोग्यदायक वायु उसके नग्न शरीर को रात-दिन स्पर्श करके प्राण और शक्ति प्रदान करती थी और वह सदा प्रसन्न और सुखी रहता था।

भूमि पर सोने से पृथ्वी की रोग-नाशक शक्ति उसके शरीर को अपार शक्ति प्रदान करती थी और सुन्दर वृक्षों की छाया में झरनों के सुन्दर प्रवाह के निकट रहकर वह संसार के सभी झंझटों, चिन्ताओं, छल-कपट-पाखण्ड और अत्याचारों से दूर था।

किन्तु उसने प्रकृति का मार्ग छोड़ दिया और आग में पकाकर चूना, सीमेंट, पत्थर, ईंट, लकड़ी से बड़े-बड़े मकानात बनाए और उनमें रहने लगा। इन मकानों की गंदी जहरीली हवा से उसका शरीर बिगड़ गया और फेफड़ों को शुद्ध हवा न मिलने से वे कमजोर होकर मनुष्य दीर्घ-रोग, क्षय, दमा आदि का शिकार होकर जल्द मरने लग गए।

इसके सिवा मनुष्य ने कपड़े की भारी मिलें, कल-कारखाने, यंत्र आदि भी केवल अग्नि की सहायता से ही बनाए, जिनमें उपयोग के लिए काफी कपड़ा तैयार होने लगा और फिर मनुष्य ने छाल या वृक्षों के पत्ते से लज्जा-मात्र ढंकने की आदत छोड़ दी और उनकी आवश्यकताएं और इच्छाएं बढ़ गईं। उसने पहनने के लिए मोजे, धोती, पाजामा, पैंट, लंगोट, बनियान, स्वेटर, कमीज, कुरता, वास्केट, कोट, शेरवानी, टोपी, पगड़ी, साड़ी, लहंगे, जंफर आदि नाना प्रकार के वस्त्र कई रंग के बनाए और अपने नंगे शरीर को उनसे अच्छी तरह ढका रखने लगा।

इसका परिणाम यह हुआ कि जो शरीर पहले नंगा रहता था, वह नंगा न रहकर वस्त्राच्छादित रहने लगा और उसके शरीर के मल-पदार्थ व विष, जो पहले रात-दिन अबाधित रूप से रोम-कूपों में होकर निकलते थे, वे कपड़े पहनने के कारण अधिकांश शरीर के अन्दर ही रहने लगे और साथ ही शुद्ध वायु, जो पहले खाल के छिद्रों में होकर शरीर में प्रवेश करती थी और खाल को सजीव व ताजा रखती थी, अब कपड़े पहनने से शरीर को अच्छी तरह स्पर्श नहीं कर सकती और न रोम-कूपों में प्रवेश कर सकती है और इसीलिए शरीर के आवरण को शुद्ध वायु न मिलने से वह मल ग्रसित, विषाक्त, कमजोर और बीमार हो गया और यह भी केवल अग्नि के उपयोग का ही परिणाम है।

रात-दिन मिलों व कल-कारखानों, फैक्टरियों, इंजनों आदि से जहरीले कोयले का धुआं उठता रहता है और समस्त वायु को दूषित बना रहा है इसलिए कल-कारखानों, मिलों व खानों में काम करने वालों का स्वास्थ्य बहुत ही गिरा हुआ रहता है और जिस शहर में जितने ज्यादा कारखाने व मिल होते हैं वहां के लोग उतने ही रोगी, कमजोर और अल्पजीवी होते हैं। क्या बिना अग्नि के यह सब सम्भव है ? हरगिज नहीं।

अब जरा और भी सुनिए—पहले जब रेल, मोटर, जहाज, साइकिल, बग्घी, तांगे आदि नहीं थे, मनुष्य को पैदल नंगे पांव एक जगह से दूसरी जगह जाना पड़ता था और इस प्रकार उसे काफी कसरत हो जाती थी और वह व्यायाम करने से बलवान रहता था। लेकिन आग के उपयोग से रेल, मोटर, साइकिल, ट्राम बनाकर उनकी सवारी का वह ऐसा आदी और आरामतलब हो गया कि दस कदम पैदल चलना भी उसे बुरा लगता है और सुस्ती, ऐय्याशी व आरामतलबी से वह कमजोर व बीमार हो गया है।

अस्तु, आज भी अगर लोग रूढ़िवाद को छोड़ दें और धीरे-धीरे

अग्नि का उपयोग छोड़ते जायं तो उन्हें बड़ा लाभ हो सकता है। अव्वल यह कि बेचारी औरतें रात-दिन की रसोई पकाने की झंझट से बच जाएं, अन्धेरी धुआं भरी रसोई में रहने व आग के पास बैठने से उनके स्वास्थ्य और सौंदर्य की जो हानि होती थी उससे उन्हें छुटकारा मिल जाए और वे पहले से अधिक स्वस्थ व सुन्दर बन जाएं और प्रदर, हिस्टीरिया, सिर दर्द से वे फिर कष्ट न पावें।

इस तरह जो समय बचे उसमें वे अपने पति-पुत्र आदि की स्वास्थ्य रक्षा के कार्य, भगवान की पूजा आदि कर सकती हैं। इतना ही नहीं जब स्त्रियां अग्नि का उपयोग छोड़कर पति-पुत्रादि को केवल फल, शाक, कंद, मूल, दूध, अन्न आदि खिलायेंगी और स्वयं भी वही आहार करने लग जाएंगी तो घर में किसी भी रोग, शोक के लिए गुंजाइश ही नहीं रहेगी और उन्हें आजकल की तरह अपने प्राणाधार पति अथवा अत्यन्त प्रिय सन्तान की मृत्यु का दारुण दुःख कभी न देखना पड़ेगा।

अग्नि के उपयोग से जो परिवार रात-दिन मिठाइयां, रोटी, मसाले, नशीली चीजें, मांस, मदिरा, अण्डे, दवा तैयार करके उन्हें खाकर रोग, कलह, पाप और आपदाओं का घर बना रहता था, जहां रात-दिन रोना-कल्पना होता था वे ही घर अग्नि के उपयोग छोड़कर स्वाभाविक आहार स्वाभाविक अवस्था में खाने के कारण ऐसे सुखी हो गए कि रोग, दुख-शोक आदि का नाम भी न रहा।

ऐसे परिवारों के लोग केवल कच्चा धारोष्ण दूध, ताजा फल, हरे शाक, कंद, मेवा, हरे अन्न खाकर धर्मात्मा, दीर्घजीवी व सुन्दर होते हैं, लेकिन इतना लिखने पर क्या यह आशा की जाए कि लोग सदियों से जमे हुए अन्धविश्वास, रूढ़िवाद व पुरानी आदतों को छोड़ देंगे।

किसी देश में कोयलों की खानों में एक बार हड़ताल हो गई और वहां के घोड़े दस-बीस साल से रात-दिन जमीन के नीचे अंधेरे तहखानों में रहने के आदी हो चुके थे और बाहर की दुनियां व सूर्य का

प्रकाश आदि उन्होंने कभी न देखे थे। हड़ताल होने पर उन घोड़ों को वाहर सूर्य के प्रकाश में लाया गया तो वे बिल्कुल डर गए और पागलों की तरह चौंक गए और वापस अपने अंधेरे तहखानों में भाग-कर चले गए और वहां रहने लगे।

बिल्कुल वही हाल आप आज के मनुष्य का समझिए। आज अगर उसे आग के बिना पके स्वाभाविक आहार व उसके अनन्त लाभों का वर्णन किया जाए अथवा औषधियों की हानियां वताकर स्वाभाविक उपचारों की महिमा सुनाई जाए तो वह चौंक पड़ेगा और अपनी पुरानी आदतों को छोड़ने को तैयार न होगा। सच कहा है गोबर का कीड़ा गोबर में ही राजी रहता है। इसी प्रकार स्त्री भी फिर उसी अंधेरी धुआं भरी रसोई में रहना पसन्द करेगी, जहां उसके सुन्दर मुख पर पसीना बहता रहेगा और वह बजाय अत्यन्त रूपवती देवी के भद्दी शक्ल की डायन सरीखी वन जाएगी।

मनुष्य भी प्राकृतिक चिकित्सा की महिमा को नहीं सुनेंगे और इसे जंगली या अवैज्ञानिक चिकित्सा वताकर विश्वास नहीं करेंगे और वह पहले की तरह आग से पके पदार्थ खावेंगे और गंदे मकानों में रहेंगे व रात-दिन कपड़ों से लदे रहेंगे और इन प्रकृति विरुद्ध कार्यों से वह अवश्य बीमार होंगे और वह अस्पतालों, औषधालयों में जाकर दवा रूपी जहर पीकर व्यर्थ ही रोग मुक्त होने की चेष्टा करेंगे और नाना भांति के दीर्घ रोगों से कष्ट पाकर समय से बहुत पहले संसार से कूच कर जाएंगे।

गृह देवियो ! न जाने कब भगवान कृष्ण अवतार लेंगे और तुम्हें सच्चा ज्ञान सुनाकर इस अज्ञान रूपी अंधकूप से निकालेंगे। शराबी, नशेबाज आदमी भली-भांति उसकी बुराइयों को जानते हुए भी इस घृणित आदत को नहीं छोड़ सकता। व्यभिचारी, वेश्यागामी काम के वश होकर जान बूझकर विनाश के गढ़े में गिरता है। विद्यार्थी दुर्बल शरीर लिए पढ़ाई के भार से लदा हुआ बड़े कष्ट से अध्ययन करता है,

पर वह उसे छोड़ नहीं सकता। इसी प्रकार स्त्री भी संसार के समस्त रोग, शोक, अकाल मृत्यु व दुःख का कारण चूल्हा या अंगीठी से अपने को दूर नहीं कर सकती।

बालक कितना सुन्दर व निर्दोष होता है और जब तक मां का दूध पीता है बड़ा रूपवान रहता है, किन्तु आग से पके आहार का आरम्भ करते ही उसका रूप-रंग बिगड़ने लग जाता है। सौंदर्य केवल शुद्ध रक्त पर निर्भर है और शुद्ध रक्त स्वाभाविक आहार पर निर्भर है, फलाहारी का रक्त ही पूरी तरह शुद्ध होता है।

मनुष्य जाति के शीघ्र बूढ़े होने का कारण भी उसका अस्वाभाविक आग से पका हुआ आहार है। जानवरों को देखिए! उनमें बूढ़े और जवान की पहचान करना कठिन है। जैसा कि मनुष्यों में। बूढ़े जानवर आमतौर पर जवानों से अधिक सुन्दर, बलवान और सुखी होते हैं।

लेकिन आज मनुष्य कठिनता से ५० वर्ष की आयु में पहुंचता है और जब वह बूढ़ा हो जाता है तो एकाएक पित्त वायु उसे आ घेरते हैं, घर वाले उससे घृणा करते हैं और वह भयानक यातनायें भोगता है। यदि ऐसे लोग भी अपना आहार बदल दें और कच्चा धारोष्ण दूध, फल, हरे शाक, कन्द, मेवा, हरा अन्न आदि अमृत तुल्य पदार्थ खाने लग जाएं तो उनका जीवन बड़ा ही सुखी हो जाए और उनकी आसन्न मृत्यु बहुत दिनों बाद और सुख से होगी।

अग्नि का उपयोग छोड़ देने से मनुष्य की आवश्यकताएं भी बहुत कुछ कम हो सकती हैं और रोजगार-कमाई की उतनी अधिक चिन्ता न करनी पड़ेगी और खर्च बहुत घट जाएंगे, क्योंकि अभक्ष्य आग से पके आहार करने के साथ ही मनुष्य का अधःपतन आरम्भ हुआ है।

आयुर्वेद, एलोपैथिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली में क्या अन्तर है ?

नीचे लिखे उदाहरणों से पाठक अच्छी तरह समझ जाएंगे कि प्रचलित आयुर्वेदिक, एलौपैथिक आदि इलाज की प्रणालियों में और प्राकृतिक चिकित्सा में कितना अन्तर है।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि औषधि-विज्ञान की नींव बिल्कुल खोखली है और रोगों के निदान विषयक उसकी धारणा सर्वथा मिथ्या और दोष युक्त है और इलाज के तरीके इतनें बुरे और गलत हैं कि वे रोग को घटाने की बजाय उल्टा बढ़ाकर वेचारे रोगी के शरीर को और भी खराब कर देते हैं, किन्तु नैसर्गिक चिकित्सा पद्धति सच्चे सिद्धान्तों को खिलाती है और इसके उपचारों द्वारा शरीर सर्वथा रोग रहित बना दिया जाता है।

उदाहरण नं १—मोहन एक व्यक्ति है जिसे जुकाम हो जाता है और वह इलाज के लिए निकट के अस्पताल या औषधालय में जाता है जहां उसे बताया जाता है कि तुम्हें सरदी लग गई है और उसे कुनीन या काढ़ा दिया जाता है और उसके असर से एक-दो दिन में जुकाम मिट जाता है। और डाक्टर, वैद्य व रोगी दोनों समझते हैं कि मामला खतम हो गया लेकिन बात ऐसी नहीं है। मामला मिटा नहीं बढ़ गया है। न तो वैद्य महोदय न डाक्टर साहब को या रोगी को ही खयाल है कि सरदी-जुकाम हवा लगने से नहीं हुआ था; वल्कि सच्चा कारण यह था कि मोहन का शरीर प्रकृति विरुद्ध आग से पके आहार के कारण विजातीय द्रव्य से अत्यन्त पूरित था और शरीर ने अपनी सफाई करनें के लिए कचरा बाहर फेंकने के लिए जुकाम पैदा किया था।

परिणाम यह होता है कि जुकाम में बहने वाला मवाद, गंदगी या फुजला, नाक मुंह, गला या आंखों में होकर आसानी से निकल नहीं सकता जैसा कि प्रकृति चाहती है और मोहन दवा के जरिए यह

समझकर कि न ज़ाने नजला कब तक बहेगा उसे बन्द कर देता है। और फिर यह विजातीय द्रव्य या गन्दगी, जिसे शरीर बलपूर्वक बाहर फेंक रहा है, डाक्टर या वैद्य की दवा के असर से वापस शरीर की नसों में धकेल दिया जाता है और उसके कारण शरीर की रोग निवारक क्रिया में बाधा पड़ जाती है और वह गंदगी अन्दर रहकर जुकाम से अधिक कष्टदायक, स्थाई और भयानक रोग पैदा कर देती है। कालांतर में मोहन बार-बार डाक्टर-वैद्यों की दवाइयां लेता है और शरीर के रोग-निवारक प्रयत्नों पर कुठाराघात करता रहता है और अन्त में वह गठिया या संधिवात का शिकार हो जाता है।

यह है आजकल की अन्ध प्रथा, दवा भक्ति और भेड़िया पंथ ! शरीर के हर आरोग्यप्रद प्रयत्न को दवा के जरिए दबाया जाता है। जरा सोचिये ! जो गंदगी या मैल, कचरा, नाक या मुंह के जरिए बह रहा था वह कहां चला गया और उसका क्या हो गया। वैद्यराज और डाक्टर साहब या हकीमजी कभी यह बात सोचने का कष्ट नहीं करते। न मोहन को ही ध्यान होता है कि आखिर नाक-मुंह से बहने वाली गंदगी कहां जाकर गायब हो गई। दोनों ही उसका बहाना बन्द करके सतुष्ट और प्रसन्न होते हैं।

कोई भी यह ख़याल नहीं करता कि शरीर से बहने वाली गंदगी बाहर निकल जाना अच्छा है या शरीर के अन्दर रह जाना। वे नहीं जानते कि जुकाम हमारा शत्रु नहीं परममित्र है। हमें उसका विरोध न करके स्वागत करना चाहिए। उन्हें मालूम नहीं कि रात-दिन भूख बिना, अनाप-शनाप, बिना चबाए, तामसी, गरिष्ठ, प्रकृति विरुद्ध पदार्थ, मिठाइयां व मसाले आदि खाकर लोग शरीर में काफी मात्रा में गंदगी, कचरा, जहर भर लेते हैं और जुकाम उसी इकट्ठे हुए जहर या मैल को शरीर से बलपूर्वक निकालकर उसे स्वच्छ निरोग बनने वाली एक क्रिया है।

अस्तु, दवा लेकर मोहन अच्छा हो जाता है। वैद्यराज व डाक्टर

महोदय अपनी सफलता पर प्रसन्न होते हैं और समझते हैं हमनें रोग पर विजय प्राप्त कर ली, किन्तु किस मूल्य पर यह भविष्य बतावेगा।

आइये अब हम इसके विपरीत दशा पर प्रकाश डालें। औषधि-विज्ञान क्या करता है, वह हमने देख लिया है। अब प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली क्या करती है, उसे देखें।

सोहन एक व्यक्ति है। वह प्राकृतिक चिकित्सा ग्रन्थमाला की कुछ पुस्तकें अकस्मात देखता है और उन्हें पढ़ता है। और जब उसे जुकाम हो जाता है तो वह दवाखानें या अस्पताल में न जाकर प्राकृतिक चिकित्सा से सम्मति लेता है।

सोहन को तुरन्त उसके द्वारा यह सूचना दी जाती है कि जुकाम होने का कारण ठण्डी हवा या ठण्डा पानी नहीं है; बल्कि विरुद्ध खान-पान के कारण उत्पन्न विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकलने के लिए किया गया शरीर का एक प्रयत्न मात्र है और यह कि उसनें प्रकृति के दिये हुए अमृत-तुल्य पदार्थ ताजा फल, हरे शाक, कन्द, मूल, कच्चा धारोष्ण दूध, मेवे जात आदि न खाकर अत्यन्त हानिकर गरिष्ठ वस्तुएं, सफेद चीनी, बारीक आटे की रोटी, घी, वनस्पति, मांस, अण्डे, मसाले, अचार, मुरब्बे, नशे को चीजें खाकर शरीर को अत्यन्त गन्दा और निकम्मा बना डाला है और अब उसकी अन्दरूनी मरम्मत व सफाई की जा रही है।

सोहन यह शंका करता है कि शायद खराब मौसम या रोग-जन्तुओं के प्रभाव से जुकाम हो गया है, परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा उसे बताया जाता है कि यदि वह स्वाभाविक आहार करनें वाला है और उसके शरीर में कचरा या मैल नहीं है तो किसी रोग-जन्तु या खराब मौसम का कोई असर उसके शरीर पर नहीं पड़ सकता।

उसे समझाया जाता है कि जुकाम, बुखार आदि तीव्र रोग बुरे नहीं अच्छे होते हैं और जुकाम के जरिए जितनी अधिक गन्दगी

व कचरा शरीर से निकलेगा उतना ही उसके शरीर का हित होगा और भावी स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा, अलबत्ता उसे अब प्रकृति-विरुद्ध आहार करके अपने शरीर में कचरा पैदा न होने देना चाहिए।

अब सोहन को भली-भांति विदित हो जाता है कि जुकाम, सर्दी लगना कोई आकस्मित घटना या विपत्ति नहीं है; बल्कि प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने का अनिवार्य दण्ड है।

साथ ही सोहन जान जाता है कि रोग केवल उसकी खुद की बद-परहेजियों व अज्ञान का फल है और इसके लिए उसे किसी मौसम, रोग-जन्तु अथवा बाहरी घटनाओं को दोषी नहीं ठहराना चाहिए; बल्कि भविष्य के लिए शिक्षा ग्रहण करके अपनी भूलों का पश्चाताप करना चाहिए।

उसे याद रखना चाहिए कि यदि उसे वर्तमान कलि-काल में पूर्ण स्वस्थ, व्याधि-रहित रहना है तो उसे संयम रखना ही होगा। खान-पान, रहन-सहन, विषय-भोग आदि में उसे प्रकृति के नियमानुसार चलना होगा और इन्द्रियों को विजय करना होगा।

जिस समय सोहन प्राकृतिक चिकित्सा के आरोग्यमन्दिर से बाहर निकलता है तो वह पहले की अपेक्षा प्रसन्नचित्त और अधिक बुद्धि-युक्त होकर आता है। और उसके पास घृणा के योग्य हानिकर गोलियों का बक्स या दवा रूपी विष की बोतलें नहीं होतीं, जिनका खराब असर न चिकित्सक जानते हैं न रोगी और जिनसे केवल रोगों के लक्षण दबाए जा सकते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सक की सम्मति लेने पर उसे छोटे उपवास, फला-हार, गर्म जल का निमज्जन स्नान (Hotimmersion bath), भोजन सुधार, व्यायाम आदि उपचार करने को कहा जाता है, जिनसे रोग का मूल कारण विजातीय द्रव्य भली-भांति शरीर से बाहर निकल जाता है, अन्दर नहीं रहता और शरीर अधिक निरोग हो जाता है, साथ ही

इन उपायों से अगर कोई और भी रोग पहले का शरीर में मौजूद हो तो वह भी दूर हो जाता है। क्या इतना लिखने पर आपकी समझ में अच्छी तरह यह बात आ गई कि प्राकृतिक चिकित्सा और दवा के इलाज में क्या अन्तर है ? और यह कि दवाखाने खोलना पुण्य है या पाप ? उपकार है या अपकार ? धन का सदुपयोग है या दुरुपयोग ?

उदाहरण नं० २—चीर-फाड़ विद्या की शानदार विजय का एक नमूना।

मि० श्याम को एपेंडिसाइटीज (आंत के एक भाग में सूजन व पीड़ा) नाम का रोग हो जाता हैं। उसे तत्काल अस्पताल में लाया जाता है, जहां आपरेशन करके उसकी एपेंडिक्स (आंत का सूजा हुआ विकृत भाग) निकाल दिया जाता है और कुछ दिन अस्पताल में रखे जाने के बाद उसे "अच्छा" बताकर रुखसत दे दी जाती है और घर वाले समझते हैं श्याम को स्थाई रूप से रोग से छुटकारा मिल गया। किन्तु बात ऐसी नहीं है, आंतों का एक भाग (एपेंडिक्स) बाहर निकलने से शरीर रूपी मशीन का एक पुरजा कम हो जाता है और उसकी बजाय कोई दूसरा भाग उसका काम नहीं कर सकता।

जरा ध्यान दीजिए! वास्तविक मामला क्या है ? श्याम जाहिरा तौर पर बिल्कुल स्वस्थ मालूम देता है, अचानक बिना किसी पूर्व कष्ट के ही उसके दाहिने भाग में पीड़ा होती है और डाक्टर साहब को बुलाया जाता है जो आकार तजवीज करते हैं कि उसे एपेंडिसाइटीज (आंत की बीमारी) है और इसकी शस्त्र क्रिया करना लाजमी है।

अज्ञान श्याम व घर वाले डाक्टर साहब की तजवीज मान लेते हैं। श्याम को आंत का विकृत भाग काटकर फेंक दिया जाता है मानो कष्ट व पीड़ा का मूल कारण केवल वह आंत का भाग था, जिसे हटा दिया गया है।

कैसा अंध विश्वास ! कैसी मूर्खता और कैसा रूढ़िवाद जन समु-

दाय में फैला हुआ है ! रोगी और चिकित्सक कैसी मिथ्या कल्पना किये हुए हैं कि श्याम के खान-पान और रहन-सहन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वे नहीं जानते कि श्याम को दीर्घकाल से मलावरोध की शिकायत है और यह कि वह अपनी इस खतरनाक बीमारी से छुटकारा पाने के लिए बहुत-से धूर्त व पाखंडी चिकित्सकों की इश्तहारी दवाइयां काफी मात्रा में ले चुका है, अनेक प्रकार के साल्ट, जुलाब, रेचक पदार्थ खा चुका है जिनको मुक्त कंठ से प्रशंसा की जाती है।

उन्हें क्या पता है कि कुछ मास पहले श्याम को कई दिन तक अनेक प्रकार की दस्तवार दवाइयां, गोली आदि खाने पर भी दस्त नहीं लगा था और फिर गरम जल के एनीमा से दस्त कराया गया था। डाक्टर-वैद्य दोनों ही इतनी गहरी खोज करने का कष्ट नहीं करते।

आपरेशन कराकार श्याम खुशी-खुशी घर आ जाता है और घर वाले तथा श्याम संतुष्ट हो जाते हैं कि कष्ट से छुटकारा मिल गया। मगर खेद कि भयानक मलावरोध ने श्याम का अब भी पीछा नहीं छोड़ा है और अब एपेंडिक्स भी काटकर फेंक दी गई है जिससे बड़ी आंत और भी कमजोर हो गई है। एक ऐसे उपयोगी भाग को काटकर फेंक दिया गया है जो बड़ी आंत के कार्य (मल निवारण) में भारी सहायता करता था और चिकने रस के द्वारा मलावरोध उत्पन्न नहीं होने देता था जिसके कारण श्याम आज भी दुःखी है।

अब आपने आधुनिक शस्त्र क्रिया के कुप्रभाव को समझ लिया।

प्रकृति मूर्ख नहीं है जो उसने एपेंडिक्स आंतों के साथ ही पैदा की है और अवश्य ही आंतों के कार्यों में उसका बड़ा भारी हाथ है और शरीर में उसका रहना अत्यन्त आवश्यक है और उसके बाहर निकलने पर आंतों का एक भाग कम होकर उसका काम आंतों को ही करना पड़ता है जो बहुत बुरा है, परन्तु डाक्टर व सर्जन लोग अपने

अज्ञान को छुपाते हैं और भोली मूर्ख जनता को झूठे विश्वास दिलाकर अंधकार में डाल रहे हैं और रोग के कारण को दूर न करके रोग पीड़ित स्थान को काटकर फेंक देते हैं और बीमार को आजन्म रोगी व कमजोर बना देते हैं।

याद रखिए! एपेंडिसाइटीज रोग कभी हो नहीं सकता जब तक कि दीर्घकाल से मलावरोध की शिकायत न हो और इसका कारण यही है कि ज्यादा दिन मल भरा रहने से आंत का यह भाग (एपेंडिक्स) सूज जाता है और बड़ी आंतों में काफी मात्रा में मल व पाखाने की गांठें भरी हुई होने से रक्त दूषित होकर बुखार भी आ जाता है और यह कि रोज-रोज प्रकृति विरुद्ध आहार करते रहने से यह मल आकर आंत में भरता रहता है और आंतें कमजोर होने से यह मल बाहर अच्छी तरह नहीं निकल पाता और आंतों में ही सूखता व सड़ता रहता है और यही एपेंडिसाइटीज का मूल कारण है।

पुराना मलावरोध और एपेंडिसाइटीज रोग साथ-साथ चलते हैं लेकिन आज के डाक्टर-वैद्य इस सीधे-सादे सिद्धांत को भी भूल रहे हैं— क्यों न हो अगर वे ऐसा न करें और चीर-फाड़ का जाल न फैलावें तो उनकी अपार सम्पत्ति, वैभव, धन-दौलत सब नष्ट हो जाय और फिर उन्हें कौन पूछे ?

अपने स्वार्थ और अज्ञान के वशीभूत होकर चिकित्सक लोग बेचारे बीमारों की एपेंडिक्स को काटकर फेंक देते हैं और उन्हें कह देते हैं कि बीमारी काटकर बाहर फेंक दी गई।

अब अच्छे हो गए हो—लेकिन बेचारे भाग्यहीन रोगी क्या जानें कि रोग की जड़ तो कब्ज थी और वह दूर न होकर पहले से बढ़ गई है और अब आए दिन मलावरोध की शिकायत बढ़ती जाती है, क्योंकि खान-पान व रहन-सहन में कोई सुधार नहीं किया जाता क्योंकि डाक्टर-वैद्य कहते हैं बीमारी से इसका सम्बन्ध नहीं है।

श्याम के मामले से पाठकों को अच्छी तरह मालूम हो गया होगा कि प्रचलित शस्त्र क्रिया औषधियों की भांति शरीर के भावी स्वास्थ्य पर बड़ा ही घातक व हानिकर प्रभाव डालती है, क्योंकि वह रोग के भावी लक्षण मात्र दूर करती है और रोग के कारणों को दूर करने में सर्वथा असमर्थ है। वह केवल रोग को और भी अधिक बढ़ाती है और रोगी की आयु घटाकर समय से बहुत पहले श्मशान में पहुंचा देती है।

आज शस्त्र क्रिया की बदौलत हजारों-लाखों रोगियों के टाँसिल, एपेंडिक्स आदि भाग काटकर फेंक दिये जाते हैं और उनका जीवन कष्टमय बन जाता है व हजारों तो आपरेशन टेबल पर ही समाप्त हो जाते हैं।

अब हम दूसरी दिशा का दिग्दर्शन कराते हैं और यह बताते और दिखाते हैं कि अगर श्याम को प्राकृतिक चिकित्सा का ज्ञान होता तथा वह शस्त्र क्रिया कराने के बजाय किसी प्राकृतिक चिकित्सक से सम्मति लेकर उसके अनुसार चलता तो क्या परिणाम होता। पहली बात तो यह होती कि वह चीर-फाड़ की राय हरगिज नहीं देता। एक सच्चे प्राकृतिक चिकित्सक की राय से श्याम कभी धोखे में नहीं फंसाया जा सकता था, जैसा कि अन्य चिकित्सक लोभवश रोगियों को फंसाकर उनका जीवन नष्ट कर देते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सक फौरन यह जान जाता कि रोग का मूल कारण श्याम को रहने वाली पुरानी कब्ज की शिकायत व आंतों की कमजोरी ही है और कुछ नहीं। और वह श्याम को पूरी तरह लंघन कराता या थोड़ा फलों का रस देता और पीड़ित भाग पर बारी-बारी से विधि पूर्वक गर्म जल की पट्टियां और शीतल जल की गद्दी रखता जिससे पीड़ा दूर हो जाती।

इन प्रयोगों से दो-एक ही दिन में श्याम की पीड़ा (दर्द) कम हो जाती और उसकी हालत इतनी सुधर जाती कि भली प्रकार आसानी

से गरम जल का एनीमा उसे दिया जा सकता था ; जिसका प्रभाव इतना अच्छा होता कि आंतों में भरा हुआ मल व गांठें बाहर निकल जातीं, आंतें बिल्कुल साफ हो जातीं और लगभग एक या अधिक से अधिक दो सप्ताह के अन्दर केवल जल और फलों के रस पर रहते हुए उसकी एपेंडिसाइटीज (आंत की सूजन व पीड़ा) पूरी तरह दूर हो जाती।

यह है शस्त्र क्रिया और प्राकृतिक उपचारों में फरक और भेद !

प्राकृतिक उपचारों द्वारा अच्छा होकर श्याम को अपने शरीर के अत्यन्त उपयोगी भाग एपेंडिक्स से हाथ नहीं धोना पड़ता, उसकी आंतों की अच्छी तरह सफाई हो जाती और पूरा आराम मिल जाता, जिससे वे अच्छी तरह काम करने लगती और उसे खूब अच्छी तरह भूख लगने लगती। इतना ही नहीं एक या दो महीने फलाहार पर रहने के बाद उसका स्वास्थ्य बहुत उत्तम हो जाता। मलावरोध सदा के लिए दूर हो जाता और दीर्घजीवी बनकर वह संसार के सभी सुख देख सकता था। किन्तु शल्य-क्रिया कराकर उसने एपेंडिक्स को खो दिया है, दिल कमजोर बना लिया है, कब्ज की शिकायत पहले जैसी बनी हुई है और उसकी जठराग्नि मन्द हो गई है, जिससे वह आजन्म दुःखी और रोगी बना रहेगा और अपने भाग्य को कोसता रहेगा।

उदाहरण नं० ३—नीचे लिखे उदाहरण से प्रकट हो जाएगा कि प्रचलित चिकित्सा पद्धतियां आयुर्वेद, एलोपैथी, हिकमत रोगों के केवल लक्षण दबाकर किस प्रकार रोग और अकाल-मृत्यु की वृद्धि करके संसार को दुःखी बना रही हैं।

शान्ती एक जवान लड़की है। उसे गठिया, संधिवात का बुखार है, उसका इलाज जब देशी दवाइयों से नहीं हुआ तो डाक्टर को इलाज के लिए बुलाया जाता है और वह सेलीसाइलेट का इंजेक्शन देकर या अन्य मिक्सचर पिलाकर उस बुखार को अच्छा कर देता है और कहा जाता है रोगिणी अच्छी हो गई, पर दुर्भाग्यवश दवा के घातक प्रभाव

के कारण ऐसा जान पड़ता है कि उसका हृदय कमजोर हो गया है, परंतु डाक्टर साहब यह कहकर तसल्ली देते हैं कि संधिवात के बुखार में सदा ही हृदय पर प्रभाव पड़ता है। बस बेचारी गरीब लड़की को अपने भाग्य के भरोसे पर छोड़ ड़िया जाता है, क्योंकि डाक्टर यह कह देता है कि इसका उसके पास कोई इलाज नहीं।

सच तो है ! डाक्टर महोदय अपना यन्त्र लगाकर गरीब लड़की के हृदय की परीक्षा करते हैं और उन्हें मालूम हो जाता है कि हृदय की धड़कन अनियमित हो गई है। अफसोस मन्द-भाग्य लड़की ! मैं क्या करूं तुम्हारा भाग्य है ! इसका कोई उपाय नहीं।

क्या डाक्टर साहब का यह कहना काफी है ? क्या इस थोथी तसल्ली से रोगी का हित होना संभव है ? नहीं, क्यों ?

डाक्टर साहब का उद्देश्य अच्छा है, भावना पवित्र है, बड़े परिश्रम से दवा दी है, रोगी को अच्छा करने की अभिलाषा भी है। परन्तु उन्हें बिल्कुल मालूम नहीं है कि बेचारी गरीब शांती के हृदय रोग का कारण बुखार नहीं; बल्कि उनका इलाज है।

डाक्टर साहब ने गठिया, संधिवात के बुखार को मिटाने के लिए और जोड़ों में स्थित यूरिक एसिड को घोलने के लिए बड़ी-बड़ी मात्राओं में रोगी को सैलीलाइट्स (अंग्रेजी दवा) खिलाई है जिसका हृदय पर ऐसा घातक प्रभाव पड़ा है कि उसने स्थाई रूप से उसे खराब कर डाला है।

डाक्टर साहब की दवा का कुप्रभाव यहीं समाप्त नहीं होता; बल्कि परिणाम यह होता है कि जोड़ों में स्थित विजातीय द्रव्य (यूरिक एसिड) सैलीसाइलेट्स दवा से घुल जाता है और रक्त-संचार के साथ-साथ हृदय में पहुंचकर वहां पहले ही इस दवा से बने हुए विकृत हृदय को और भी पीड़ा व कष्ट पहुंचाती है। (ख) इसके सिवा शरीर से बाहर निकाले जाने के लिए यह दवा गुर्दों में पहुंचकर वहां रुक जाती है और उन्हें पीड़ा पहुंचाती है और वहां सूजन हो

से गरम जल का एनीमा उसे दिया जा सकता था; जिसका प्रभाव इतना अच्छा होता कि आंतों में भरा हुआ मल व गांठें बाहर निकल जातीं, आंतें बिल्कुल साफ हो जातीं और लगभग एक या अधिक से अधिक दो सप्ताह के अन्दर केवल जल और फलों के रस पर रहते हुए उसकी एपेंडिसाइटीज (आंत की सूजन व पीड़ा) पूरी तरह दूर हो जाती।

यह है शस्त्र क्रिया और प्राकृतिक उपचारों में फरक और भेद !

प्राकृतिक उपचारों द्वारा अच्छा होकर श्याम को अपने शरीर के अत्यन्त उपयोगी भाग एपेंडिक्स से हाथ नहीं धोना पड़ता, उसकी आंतों की अच्छी तरह सफाई हो जाती और पूरा आराम मिल जाता, जिससे वे अच्छी तरह काम करने लगती और उसे खूब अच्छी तरह भूख लगने लगती। इतना ही नहीं एक या दो महीने फलाहार पर रहने के बाद उसका स्वास्थ्य बहुत उत्तम हो जाता। मलावरोध सदा के लिए दूर हो जाता और दीर्घजीवी बनकर वह संसार के सभी सुख देख सकता था। किन्तु शल्य-क्रिया कराकर उसने एपेंडिक्स को खो दिया है, दिल कमजोर बना लिया है, कब्ज की शिकायत पहले जैसी बनी हुई है और उसकी जठराग्नि मन्द हो गई है, जिससे वह आजन्म दुःखी और रोगी बना रहेगा और अपने भाग्य को कोसता रहेगा।

उदाहरण नं० ३—नीचे लिखे उदाहरण से प्रकट हो जाएगा कि प्रचलित चिकित्सा पद्धतियां आयुर्वेद, एलोपैथी, हिकमत रोगों के केवल लक्षण दबाकर किस प्रकार रोग और अकाल-मृत्यु की वृद्धि करके संसार को दुःखी बना रही हैं।

शान्ती एक जवान लड़की है। उसे गठिया, संधिवात का बुखार है, उसका इलाज जब देशी दवाइयों से नहीं हुआ तो डाक्टर को इलाज के लिए बुलाया जाता है और वह सेलीसाइलेट का इंजेक्शन देकर या अन्य मिक्सचर पिलाकर उस बुखार को अच्छा कर देता है और कहा जाता है रोगिणी अच्छी हो गई, पर दुर्भाग्यवश दवा के घातक प्रभाव

के कारण ऐसा जान पड़ता है कि उसका हृदय कमजोर हो गया है, परंतु डाक्टर साहब यह कहकर तसल्ली देते हैं कि संधिवात के बुखार में सदा ही हृदय पर प्रभाव पड़ता है। बस बेचारी गरीब लड़की को अपने भाग्य के भरोसे पर छोड़ ड़िया जाता है, क्योंकि डाक्टर यह कह देता है कि इसका उसके पास कोई इलाज नहीं।

सच तो है ! डाक्टर महोदय अपना यन्त्र लगाकर गरीब लड़की के हृदय की परीक्षा करते हैं और उन्हें मालूम हो जाता है कि हृदय की धड़कन अनियमित हो गई है। अफसोस मन्द-भाग्य लड़की ! मैं क्या करूं तुम्हारा भाग्य है ! इसका कोई उपाय नहीं।

क्या डाक्टर साहब का यह कहना काफी है ? क्या इस थोथी तसल्ली से रोगी का हित होना संभव है ? नहीं, क्यों ?

डाक्टर साहब का उद्देश्य अच्छा है, भावना पवित्र है, बड़े परिश्रम से दवा दी है, रोगी को अच्छा करने की अभिलाषा भी है। परन्तु उन्हें बिल्कुल मालूम नहीं है कि बेचारी गरीब शांती के हृदय रोग का कारण बुखार नहीं; बल्कि उनका इलाज है।

डाक्टर साहब ने गठिया, संधिवात के बुखार को मिटाने के लिए और जोड़ों में स्थित यूरिक एसिड को घोलने के लिए बड़ी-बड़ी मात्राओं में रोगी को सैलीलाइट्स (अंग्रेजी दवा) खिलाई है जिसका हृदय पर ऐसा घातक प्रभाव पड़ा है कि उसने स्थाई रूप से उसे खराब कर डाला है।

डाक्टर साहब की दवा का कुप्रभाव यहीं समाप्त नहीं होता; बल्कि परिणाम यह होता है कि जोड़ों में स्थित विजातीय द्रव्य (यूरिक एसिड) सैलीसाइलेट्स दवा से घुल जाता है और रक्त-संचार के साथ-साथ हृदय में पहुंचकर वहां पहले ही इस दवा से बने हुए विकृत हृदय को और भी पीड़ा व कष्ट पहुंचाती है। (ख) इसके सिवा शरीर से बाहर निकाले जाने के लिए वह दवा गुर्दों में पहुंचकर वहां रुक जाती है और उन्हें पीड़ा पहुंचाती है और वहां सूजन हो

जाती है और आगे जाकर नेफ्राइटिज आदि गुर्दों की बीमारियां पैदा हो जाती हैं जिनका इलाज बड़ा कठिन हो जाता है।

सर्व-साधारण इन बीमारियों को यह समझते और पूछते हैं क्या पुराना हृदय-रोग केवल ज्वर के बाद में कमजोरी से ही हो जाता है दवा से नहीं ? इसका जवाब यह है कि हृदय-रोग कभी स्वयं उत्पन्न नहीं होता और हर एक पुरानी बीमारी की तरह बुखारों को दवा-इंजेक्शन आदि से दबा देने पर ही यह दीर्घ-रोग उत्पन्न होता है और अगर बुखारों का इलाज प्राकृतिक ढंग से किया जाय तो कभी कोई बुरा असर या दीर्घ-रोग पैदा हो ही नहीं सकता।

क्योंकि बुखार शरीर की सफाई के लिए किया गया एक रोग-निवारक कष्ट ही है और इसके द्वारा शरीर अपने अन्दर भरे हुए कचरे, मैल, गन्दगी को बल-पूर्वक बाहर निकालकर उसे निर्मल बनाना चाहता है और यह कचरा उसके शरीर में खराब प्रकृति-विरुद्ध भोजन के कारण भर गया है, लेकिन लोग बुखार को अपना शत्रु, मृत्यु का दूत व अनिष्टकारी समझते हैं और अनेक प्रकार की देशी-अंग्रेजी दवाइयां खाकर उसे दबा देते हैं और समझते हैं बुखार अच्छा हो गया है।

मगर बात है इसके बिल्कुल विरुद्ध—ज्वर के द्वारा निकलने वाले मल-पदार्थ दवाइयों के प्रभाव से शरीर में ही रह जाते हैं और शीघ्र ही शरीर अनेक भयानक दीर्घ-रोगों का शिकार हो जाता है। अव्वल तो प्रकृति-विरुद्ध, आग से पके हुए, मीठा व मसाले मिले हुए, गरिष्ठ, बासी पदार्थों के खाने से पहले ही शरीर में काफी जहर, मैल, कचरा भरा हुआ था। अब देशी व अंग्रेजी दवा रूपी भयानक, घातक विष शरीर में और भर दिया जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि आगे जाकर नाना प्रकार के कठिन व पुराने रोग उत्पन्न होकर शरीर को धीरे-धीरे खोखला व जर्जर बनाकर समय से बहुत पहले ही श्मशान में पहुंचा देते हैं।

टीका, काढ़े, भस्म, गोली, इंजेक्शन, टानिक आदि अनेक विषैली दवाइयां नीचे लिखे दीर्घ-रोगों को जन्म देती हैं—

दमा, क्षय आदि छाती व फेफड़ों के रोग, कान बहना या कम सुनना, हृदय रोग, गुर्दों की सूजन व पीड़ा आदि, प्रमेह, नपुंसकता, प्रदर, पागलपन, मंदाग्नि, मलावरोध आदि अनेक काल स्वरूप व्याधियां शरीर में घर कर लेती हैं।

छोटे-छोटे क्षुद्र रोग, जो बड़ी सरलता से केवल उपवास, फला-हार, एनीमा, जल व हवा के प्रयोगों से ठीक हो सकते हैं, दवाइयों के घातक प्रभाव से भयानक दीर्घ-कालीन रोगों के कारण बनकर सर्व-साधारण को सर्वनाश के गर्त में गिरा रहे हैं।

दवा और प्रकृति के इलाज का अंतर

इसके सिवा लोगों में एक घातक रिवाज और फैला हुआ है कि वे बीमारों को, खासकर बुखार में, खाने को मजबूर करते हैं—चाहे भूख न भी हो और वे जबरदस्ती खिलाकर या तो उसकी मृत्यु का कारण बन जाते हैं या आजन्म दुःखी बना देते हैं।

इतना लिखने पर शायद पाठक समझ गए होंगे कि मनुष्य-जाति अब भी अपने शत्रु व मित्र की पहचान करने में कैसी भूलें कर रही है और औषधि वितरण करके, दवाखाने, अस्पताल खोलकर, टीका मुफ्त लगाकर हमारे देश का धनी वर्ग देश के स्वास्थ्य को रसातल में पहुंचा रहा है।

आइए ! अब हम अपने पाठकों को दूसरी तरफ ले चलें और उन्हें दिखावें कि अगर शांती प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी साहित्य पढ़ती और उसके अनुसार स्वयं या प्राकृतिक चिकित्सक की सम्मति से अपने रोग का इलाज करती तो उसका परिणाम क्या होता।

प्राकृतिक चिकित्सक प्रथम तो फीस ही डाक्टर, वैद्यों से बहुत कम लेता, दूसरे एक छदाम भी दवा-दारू या इंजेक्शन में उसे खर्च नहीं

करना पड़ता । वह तो शायद शब्दों में किसी भी दवा के प्रयोग की राय नहीं देता, स्पष्ट ही रोगी को बताता कि उसका यह वात-ज्वर (Rhuemeticfever) मौसम या ठण्डी हवा से पैदा नहीं हुआ है, बल्कि बहुत अधिक मात्रा में मांस, मछली, अण्डे, तेल, मसाले, मिठाइयां, नमक खाने से यह हुआ है और यह बता देता कि माता-पिता को आहार विषयक ज्ञान न होने से वे उसे रोज-रोज रोटी, आलू, चाय, बिस्कुट, वनस्पति घी से बने पकवान खिलाते रहे हैं और उनका यह ख्याल रहा है कि अण्डे, मांस, मिठाई, घी आदि से बच्चों को शक्ति प्राप्त होती है । इन्हीं पदार्थों के सेवन से वह रोग का शिकार हुई है ।

प्राकृतिक चिकित्सक शांती को उपवास करने की राय देता, आंतों को साफ करने के लिए रोजाना दो बार उसे गर्म जल का एनीमा देता, पीड़ा दूर करने के लिए गर्म व ठण्डे जल की पट्टियां लगाता और धार देता, केवल फलों पर रखता और इन प्रयोगों से शीघ्र दो-तीन सप्ताह में संधिवात का बुखार जड़ से अच्छा हो जाता और मल-पदार्थ शरीर से बाहर निकलकर शरीर पहले से अधिक स्वस्थ और निर्मल बन जाता ।

इन उपचारों से उसके हृदय पर कोई घातक प्रभाव नहीं पड़ता और पहले से अधिक स्वच्छ हो जाती और वह पूर्ण रूप से निरोग हो जाती । जब तक हमारे डाक्टर, वैद्य, सर्जन रोगों के असली कारणों को नहीं जानेंगे, जब तक कि वे रोग के बाह्य लक्षणों को दबाना छोड़कर मूल कारणों को दूर न करेंगे और जब तक वे औषधि-विज्ञान को तिलाञ्जली देकर प्राकृतिक चिकित्सा के विशेषज्ञ नहीं बनेंगे तब पक वह मनुष्य-जाति के लिए भार व उसके शत्रु ही बने रहेंगे और सर्व-साधारण किसी भी लाभ की उनसे प्राप्ति नहीं कर सकेंगे और रोगों से दुःखी ही बने रहेंगे ।

प्रकृति ही सच्ची चिकित्सक है

अगर आप चाहते हैं कि आज के सभ्य युग में रोगों से सर्वथा रहित, दीर्घ-जीवी व सुखी रहें तो सबसे पहले आपको डाक्टर, वैद्य, दवा, इंजेक्शन, चीर-फाड़ को सर्वथा त्याग देना चाहिए और यह दृढ़ विश्वास जमा लेना चाहिए कि प्रकृति ही सच्ची वैद्य है और उसके पथ पर चलनें से ही आरोग्य मिल सकता है।

खेद के साथ लिखना पड़ता है कि प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को जनता या सरकार—दोनों ही सहयोग नहीं दे रहे हैं; बल्कि मानव-जाति का सच्चा हित करने वाली, रोगों के आक्रमण से बचाकर स्वास्थ्य प्रदान करने वाली इस सुभग-सरल प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली को लोग नहीं अपनाते और सर्वनाश के गढ़े में गिराने वाली, धन, प्राण और सर्वस्व हरण करनें वाले औषधि-विज्ञान का प्रचार किया जाता है और करोड़ों रुपया उसके प्रचार में नष्ट किया जा रहा है।

हमनें आंखों यह बात देखी है कि इस नैसर्गिक उपचार पद्धति के आश्चर्यजनक लाभों को जानकर भी लोगों की देखा-देखी रूढ़िवाद के वशीभूत होकर इसे नहीं अपनाते। लाखों दीर्घ-रोगी, जो औषधि-विज्ञान से निराश हो चुके थे। जिन्हें संसार सूना दिखाई देता था, वे इस प्रणाली द्वारा रोग-मुक्त होकर सुखी हैं और असंख्य स्त्री-पुरुषों नें प्रकृति के पथ पर चलकर सदा के लिए अपने को व्याधि-रहित व सुखी बना लिया है।

हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रकृति ही रोगों को स्वयं अच्छा करती है, दवा या वैद्य, डाक्टर रोग नहीं मिटा सकते। प्रकृति नें शरीर को ऐसी शक्ति दी है कि वह स्वयं बिना किसी बाहरी दवा-दारू या उपचार के सभी व्याधियों को दूर कर सकता है। अलबत्ता प्रकृति के पथ पर चलते हुए उसे रोग-निवारण में सहयोग अवश्य देना चाहिए और इसी सिद्धांत पर प्राकृतिक चिकित्सक निर्भर है, यही उसका उद्देश्य है।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्यावली

आरोग्य

जनता के हित की दृष्टी से, रचना यह काव्य किया मैंने ।
बन औषध रोग हटें सबही, वह गुप्त रहस्य लिखा मैंने ।।
लाखों ने समझ लिया अबतो, प्राकृतिक चिकित्सा महिमा को ।
हो निराश डाक्टर वैद्यों से, जब कल्प वृक्ष माना इसको ।।
अपने शरीर पर कर प्रयोग, उन भली भांति यह जान लिया ।
रोगी या निरोगी रहना है, अपने हाथ यह मान लिया ।।
फिर भी कोटिक तो ऐसे हैं, जो रीति नहीं जानें इसकी ।
गुलाम डाक्टर वैद्यों के, औषधियां ही खाते उनकी ।।
विश्वास जमा उनका ऐसा, बस बिना दवा नहिं रोग हटें ।
चीरा-फाड़ी इंजेक्शन से, टीका बिन व्याधि कभी न कटें ।।
बहु बार परीक्षा करवाते, पेशाब पखाना दिखलाते ।
फिर रक्त जांच कफ जांच करा, करके भी शांति नहीं पाते ।।
निज का अनुभव बतलाता हूं, जो बीस साल में पाया है ।
प्राकृतिक चिकित्सा करके जो, परिणाम ध्यान में आया है ।।
सैकड़ों हजारों रोगी जो थे, निराश सब औषधियों से ।
थक चुके इलाज करा करके, बरबाद हुए वे औषधियों से ।।
बड़े-बड़े डाक्टर वैद्यों से, मोल दवा खाई कितनी ।
हास्पिटल औषधालय क्लीनिक में, आयु गंवा दीनी इतनी ।।
जिसने जो नुस्खा बता दिया, झट सेवन उसको कर लीना ।
बीमारी से छुटकारा हो, इस आशा में धन को खो दीना ।।
पर लाभ उन्हें कुछ भी न हुआ, मृग तृष्णा सम यह भान हुआ ।
घटने के बदले रोग बढ़े, दीरघ रोगों का जन्म हुआ ।।
जब रोग हटा न सके डाक्टर, लाइलाज ठहराया तुमको ।

धन समय स्वास्थ्य बरबाद किया, दोनों हाथों लूटा तुमको ।।
ओ भोली जनता जागो अब, प्राकृतिक चिकित्सा सीखो तुम ।
निज स्वास्थ्य और के हाथ न दो, धोखा खाओगे मानो तुम।।
परवाह नहीं उनको कुछ भी, रोगी चाहे मर ही जाए ।
निज फीस दवा की कीमत लें, फिर हो अच्छा या मर जाए ।।
सोचो तो कितनी खुशी होय, जब लोगों को मालुम होवे ।
बिन दवा हवा से व्याधि हटे, जल मिट्टी गुण मालुम होवे ।।

औषधि-विज्ञान

स्वर्गीय जुस्ट एडाल्फ नाम के, प्रकृति वादी जर्मन थे।
रोगी होकर औषधि लेकर भी, हो न सके वे चंगे थे।।
सत्तर डाक्टर मशहूर इकट्ठे, फिर भ चंगा कर न सके।
नाना विधि औषधि टानिक रस, देकर भी रोग हटा न सके।।
तब दुःखी निराश जुस्ट होकर, जंगल में जा डेरा कीना।
तज दवा भक्ति डाक्टर सेवा, प्रकृति का दृढ़ आश्रय लीना।।
हे ईश्वर क्या औषधि टीका, धात बूटी इंजेक्शन सब।
रोगों को अच्छा कर न सके, उल्टा बीमार बनावें सब।।
सोचा यह धोखे की टट्टी, जग ठगा रहा धन स्वास्थ्य सभी।
जंगल में रहने वाले क्यों, नर पशु पक्षी हैं स्वस्थ सभी।।
पशु-पक्षी सम रहना खाना-सोना उठना, और पीना सब।
नंगा रहना पृथ्वी सोना, फल खाना शुरू किया उन तब।।
कुछ काल नियम पालन करके, वे रोग रहित और स्वस्थ बने।
प्राकृतिक चिकित्सक और प्रचारक, औषधियों के शत्रु बने।।
लाखों निराश बीमारों को, उन बिना दवा के ठीक किया।
सौ ऊपर चार वर्ष जीकर, कुदरती इलाज प्रचा कया।।
प्राकृतिक चिकित्सा पर, रिटर्नटू नेचर पुस्तक लिखदी।
दुनिया को स्वास्थ्य मार्ग दिखला, औषधियों की त्रुटियां लिखदीं।।
उसको आधार बना अब मैं, सरदी का भय वर्णन करता।
डरना न कभी सरदी से तुम, अद्भुत गुण उसमें हैं कहता।।
गीली धरती ठंडा पानी, ठंडी वायु से लोग डरें।
हैं रोगोत्पादक मारक यह, रोगी अरु वैद्य बखान करें।।
सरदी से बचो कहें डाक्टर, वरना जुकाम हो जावेगा।
खांसी बुखार या निमोनिया, गठिया भी आन दबावेगा।।

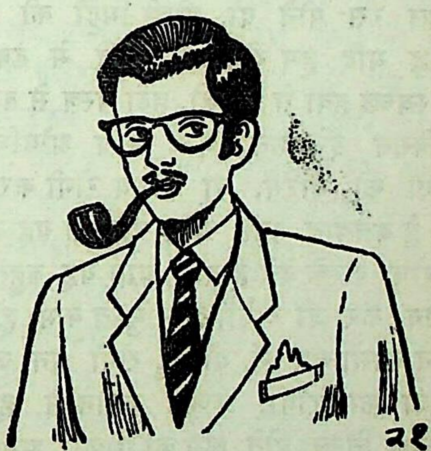
अज्ञानी जन उनको यह सब बातें, सुन-सुन डर जाते हैं।
ज्यादा कपड़े भारी कपड़े पहनें, दुर्बल हो जाते हैं॥
गुण दायक बल दायक सरदी, उससे तो दुनिया डरती है।
घातक मारक टीका व दवा, अंधी हो इनको लेती है॥
हा खेद आज हम स्वास्थ्य शत्रु, औषधि को मित्र समझते हैं।
हम फलाहार अरु दुग्ध कल्प, सरदी को शत्रु समझते हैं॥
इससे ही रोग समूह बढ़ा, और स्वास्थ्य रसातल चला गया।
दीरघ रोगों का जोर हुआ, बहु धन विदेश में चला गया।
अरबों रुपयों के दवा लिफ औज़ार विदेशों से आते।
हैजा चेचक अरु प्लेग रोग, दिन-दिन फिर भी बढ़ते जाते॥
ज्यों-ज्यों डाक्टर अरु दवा बढ़ें, हैं रोग समूह बढ़ें वैसे।
ज्यों रावण सिर कट जाने पर भी फौरन बढ़ते थे कैसे॥
रोगों के कारण और कछू, और डाक्टर वैद्य बखानें और।
कीटाणु जन्य वे बतलाते पर, फिर भी उनका चलै न जोर॥
रोगों के सच्चे कारण का, अब मैं कुछ वर्णन करता हूं।
प्राकृतिक चिकित्सा एक मात्र, सच्चा इलाज है कहता हूं॥
मानव शरीर की रचना यह, आंतें और पेट बने ऐसे।
स्वाभाविक भोजन दूध शाक फल कंद पचा सकते ऐसे॥
खेती बाड़ी विज्ञान बिना, जो स्वयं उगें बोए बिन ही।
जो स्वाद लगें कच्चे खाए, अग्नि में विना पकाए ही॥
प्राचीन काल आनन्द काल में, मानव फल ही खाता था।
तब कच्ची मौत और बीमारी, पाप घृणा का नाम न था॥
पर ज्यों ज्यों मानव सभ्य बना, प्रकृति से दूर हुआ जब वह।
अग्नि का आविष्कार हुआ, रोगी अल्पायु बना तब वह॥
अमृत सम फल मेवा तज कर, खेती बाड़ी उसने कीनी।
बहु भांति अन्न उपजाय खाय, आफत उसने निज सिर लीनी॥

स्वाभाविक भोजन छोड़ दिया, अथवा उसको विकृत कीना।
अग्नि में पका मसालों से अति, गरिष्ठ सार रहित कीना॥

अथवा अभक्ष्य भक्षण करके, आंतें और पेट बिगाड़ लिया।
कम पचा हुआ अपचा भोजन, सड़कर रोगी फिर बना दिया॥
अस्वाभाविक भोजन से कुछ भी, हो शरीर को लाभ नहीं।
ना हो पोषण न रक्त बने, हो जाता भार स्वरूप वहीं॥
धीरे धीरे वह बचा हुआ, भोजन का मल रह जाता है।
आंतों में पड़ा पड़ा सड़ता, बीमार हमें कर देता है॥
यह विष जब शरीर में भरता, तब रूप बदल जाता उसका।
सारे रोगों की जड़ यह मल, और कारण जल्दी मरने का॥
गंदे शहरों गंदी गलियों, और गंदे घर में रहने से।
टीका धातु काढ़े इंजैक्शन, नाशें शरीर में जाने से॥
जिस भाग में मल यह रह जावे, उसको विकृत कर डालेगा।
जल्दी या देरी से विष यह, रोगी कमजोर बना देगा॥
अन्दर ही अन्दर यह कचरा रहकर, गरमी पैदा करता॥
नाड़ी समूह और दिल दिमाग, सबमें विकार पैदा करता॥
भारी जूते मोटे कपड़े पहनें, सरदी से दूर रहें।
पृथ्वी से स्पर्श कभी न करें, और हवा धूप से बचे रहें॥
गंदी अशुद्ध वायु सेवन, यह कर्म प्रकृति विरुद्ध बड़े।
जीवन शक्ति अरु जठरग्नि हो मंद शरीर बीमार पड़े॥
जैसे जैसे हम समझेंगे, प्रकृति से नाता जोड़ेंगे।
वैसे ही स्वस्थ बनेंगे हम, शत वर्ष बाद तन छोड़ेंगे॥
हलके जूते चप्पल पहनो, है श्रेष्ठ पांव नंगे चलना।
कपड़े हलके पतले पहनो,है अच्छा अर्ध नग्न रहना॥

रोशनी, धूप, हवा और पानी

रोशनी हवा ठंडा पानी, अरु तेज हवा ठंडे झोंके ।
इनको शरीर पर लगने दो, यह जरा रोग मृत्यु रोके ।।
ठंडा पानी ठंडी वायु, जठराग्नि को अति तेज करे ।
काया से संचित मल को वह, बाहर करने का यत्न करे ।।
दुर्बल और रक्त हीन रोगी, सर्दी से दूर रहे अब तक ।
लेकर औषधी रह गरम सदा, मल अन्दर भरे रहे अब तक ।।



अब तीव्र रोग सरदी जुकाम, चेचक बुखार हो जाते हैं ।
फिर निमोनिया मोतीझारादि, नाना विधि रूप दिखाते हैं ।।
जिस भाग में मल और कचरे की, जितनी ज्यादा मात्रा होती ।
उस भाग में संघर्षण गरमी, और बीमारी पैदा होती ।।
कभी कभी ये तीव्र रोग, कुछ अन्य कारणों से होते ।
आकस्मिक तापमान बदले, भारी चिन्ता से भी होते ।।
कभी कभी यह शरीर भी, खुद तीव्र रोग पैदा करता ।

संचित मल को बाहर निकाल, निर्मल काया को है करता ।।
इन रोग निवारक कष्टों में, ज्वर सदा साथ ही होता है ।
बाहर से तो सरदी लगती, भीतर शरीर गरमाता है ।।
अन्दर मल के संघर्षण से, गरमी ज्यादा बढ़ जाती है ।
और रक्त खाल से हटे जभी, बाहर सरदी सी लगती है ।।
किन्तु शीघ्र गरमी बाहर, आने से खाल गरम होती ।
छिद्रों से मल निकालने को, हो संघर्षण गरमी बढ़ती ।।
डिप्थीरिया ज्वर में कंठ रुके, दम घुटने का डर रहता है ।
मल सिर की ओर चले तब, वह गरदन में आकर रहता है ।।
ऐसे संकट की हालत में, सबसे अच्छा इलाज यह है ।
लंघन या फल रस पीनें दो, गीली मिट्टी की पट्टी है ।।
इसके विरुद्ध यदि हम रोगी को, कमरे में ढक देवेंगे ।
ताजा और स्वच्छ हवा से उसको, हटा वस्त्र से ढक देगे ।।
या एंटीटाक्सिन इंजेक्शन अरु, अन्य औषधि देवेंगे ।
या तो रोगी को मारेंगे, या दीरघ रोगी कर देवेंगे ।।
प्रकृति तो है बलवान बड़ी, और बीमारी यह बड़ी बुरी ।
उसका विरोध करके देते हैं दवा, बात यह बहुत बुरी ।।
औषधि प्रयोग कर जो रोगी, ज्वर मुक्त कभी हो जाते हैं ।
वे भाग्य हीन कालान्तर में, दीरघ रोगी बन जाते हैं ।।
जैसे मलेरिया का रोगी, अच्छा कुनीन से हो जाता ।
पर शीघ्र जिगर तिल्ली होते, क्षय का शिकार अथवा होता ।।
कच्चे बुखार को तोड़ दवा, क्षय का शिकार कितने करते ।
ओ! डाक्टर वैद्यो कुछ सोचो, क्या उचित तुम्हें ऐसा करते ।।
ऋषि चरक लिखै ज्वर नवीन में, औषधि देना अपराध महा ।
अति घातक मारक यह प्रयोग, यह अपराधी है वैद्य कहा ।।
ज्वर जुकाम खुजली आदि, तीव्र रोगों में दवा खिलाने से ।
अगणित दीरघ रोगी होकर, मरते हैं बहु इंजेक्शन से ।।

खांसी बुखार नजला द्वारा, जो विष बाहर निकला करता ।

इंजेक्शन धातु औषधि से, वह अन्दर अपना घर करता ॥
धीरे धीरे यह मल शरीर को, घुन सदृश खाता रहता।
अग्नी बुझाय दे खून सुखा, सबको दीरघ रोगी करता ॥
जब मल शरीर में घर करता, नाना विधि रोग पनपते हैं।
क्षय दमा भगंदर मधूमेह के, हो शिकार हम मरते हैं॥
ईश्वर जाने कितने दीरघ रोगी, हर साल जवानी में मरते।
झूठे इलाज से कितने घर हा! आज धूल में हैं मिलते॥
जाने वह दिन कब आवेगा—प्राकृतिक चिकित्सा सूर्य उगै।
औषधि विषयक विश्वास अंध, श्रद्धा भारत से शीघ्र भगै॥
बेशक औषधियां तीव्र रोग सब, दबा सकै यह निश्चय है।
पर दीर्घ रोग को कभी नहीं, वे हटा सकें यह निश्चय है॥
डाक्टर अरु वैद्य हकीम सभी, दीरघ रोगों से हार गए।
चीरा फाड़ी इंजेक्शन भी, बेकार हुए तब बैठ गए॥
हम गला फाड़कर कहते हैं, जीवित प्रमाण भी रखते हैं।
होता अनहित हित हो न कभी, औषधि से हम कह सकते हैं॥
भारी मकान औजार बड़े, और ठाट-बाट भी है भारी।
फिर शीशी बोतल अगणित हैं, दूकान लगै सुन्दर प्यारी॥
कितनों की जेबें भरती हैं, बंगले मोटर बहु ठाट हुए।
ब्यापार दवा का करने से, डाक्टर हकीम धनवान हुए॥
पर जरा ध्यान देना पाठक, कितने घर इन बरबाद किए।
कितनी विधवाएं रोती हैं, जिनके पति औषधि छीन लिए॥
टीका लगने से भी कितने, कोमल बालक असमय मरते।
बकरों की भांति आज चीरा, फाड़ी से हैं कितने मरते॥
यद्यपि मरहम के लगने से, नासूर घाव भर जाता है।
जो मवाद बाहर जाता था, वह अन्दर ही रह जाता है॥
विष सम मवाद यह भीतर रह, नुकसान बहुत पहुंचाता है।
यदि शीघ्र नहीं निकले बाहर, तो मृत्यु निश्चय लाता है॥
इससे तो पाठक समझ गए, सच्चा हितकर इलाज क्या है।

औषधि से रोग दबा देना, था जड़ से दूर हटाना है ॥
प्राकृतिक चिकित्सा ही केवल, सच्ची हितकारी पद्धति है ।
इसको तजकर औषधि खाते, दुख पाते होती दुर्गति है ॥
स्वाभाविक भोजन शाक दूध, फल मेवा भक्षण करने से ।
ठंडा पानी ठंडी वायु, सेवन पृथ्वी पर सोने से ॥
छोटे छोटे लंघन द्वारा, जठराग्नि प्रबल हो जाती है ।
मल-मूत्र पसीने द्वारा ही, आंतरिक शुद्धि हो जाती है ॥
वैक्सीन लिफ के द्वारा ही, जठराग्नि नष्ट हो जाती है ।
बच्चों के स्वास्थ्य दीर्घ जीवन को, यों आहुति दी जाती है ॥
कितने सुन्दर कितने भोले, ईश्वर का रूप सभी बालक ।
टीका के प्रभाव से रोगी, अल्पायु बनें वे सब बालक ॥
चेचक के इस मिथ्या भय ने, जीवन शिशुओं का नष्ट किया ।
है गैर जरूरी टीका चेचक, रुके नहीं हम सिद्ध किया ॥
बचपन में ही टीका देकर, बालक का जीवन नष्ट करें ।
पनपें न कभी कमजोर रहें, दीरघ रोगी हो शीघ्र मरें ॥
छोटी बीमारी के खातिर, हम मोटी बीमारी लाते ।
छोटी चेचक फिर भी न रुके, लेकिन हम बाज नहीं आते ॥
टीका और औषधि सेवन से, लघु रोग बड़े हो जाते हैं ।
क्षय गठिया दमा भगंदर, कितनों को यमपुर पहुंचाते हैं ॥
धातू टानिक मिक्सर पीकर, कितनों ने तन को नष्ट किया ।
कितनों को इंजैक्शन चीर-फाड़ ने, असमय मृत्यु भेंट किया ॥
इस दवा भक्ति और अंध प्रथा से, कितना धन होता बरबाद ।
डाक्टर वैद्यों के बंधन से, रोगी कब होवेंगे आजाद ॥
जानवर कब टीका लेते हैं, क्या नुस्खा मिक्सचर पीते हैं ।
उनको न कभी चेचक निकले, क्यों रोग रहित वे रहते हैं ॥
सरदी जुकाम ज्वर तीव्र रोग, हैं रोग निवारक कष्ट महा ।
लंघन पट्टी स्नानादिक से, होते वरदान स्वरूप महा ॥
लेकिन कृत्रिम उपचार दवा, इंजैक्शन धातू सेवन से ।



२२

यह रोग दबें निकले न जहर, अथवा रोगी मरते इनसे ।।
इस प्रकार हम देख रहे, कितना विनाश औषधि करती ।
छोटे रोगों को दबा, शमनकर अगणित दीर्घ रोग करती ।।
बच्चे रोते चिल्लाते हैं, इच्छा से दवा कभी ना लें ।
अज्ञान मोह वश मात पिता, बल पूर्वक पकड़ पिला डालें ।।
हरिरूप महा सुन्दर काया, पशु पक्षी सबसे हैं ऊंची ।
कृत्रिम भोजन औषधि सेवन, से बनी कुरूप और नीची ।।
प्रकृति की इच्छा के माफिक, रोगों के कारण समझें हम ।
शहरों कमरों गंदी गलियों में, रहना सहना छोड़ें हम ।।
चीनी सफेद आचार मुरब्बे, मैदा मांस शराब तजें ।
ठंडा जल ठंडी हवा दूध, फल सेवन से सब रोग भजें ।।
अन्दर की गर्मी बड़ी बुरी, बहु भांति रोग उपजाती है ।
प्राकृतिक चिकित्सा से हटती, वरना टी.बी. क्षय करती है ।।
उपचार प्राकृतिक शीतल यह, जीवन शक्ति बलवान करे ।
फेफड़े खाल गुरदे आंतें, जोरों से अपना काम करें ।।
संचित मल तेजी से निकले, गरमी से स्वेद खूब आये ।

कभी कभी गरमी बुखार हो, चेचक खसरी बन जाये ।।
अन्दर की गरमी घटने से, रोगी भी कम घबरावेगा ।
आसानी से बिन खतरे के, वह अच्छा भी हो जावेगा ।।
ज्वर निमोनिया हैजा बुखार, सब विना दवा अच्छे होंगे ।
परहेज रखो बरदान बनें, अत्यन्त लाभदायक होंगे ।।
ज्वर जुकाम चेचक निमोनियां में, दवा जड़ी बूटी लेते ।
वे अपने ही हाथों अपने धन, स्वास्थ्य आयु को बलि देते ।।
औषधि के भक्त दास वैद्यों के, अच्छे हो पछताते हैं ।
ले दवा जहर को दवा, दीर्घ रोगी बन जल्दी मरते हैं ।।
प्राकृतिक चिकित्सा करके जो, लंघन कर फल रस पीते हैं ।
काया निर्मल निरोग बना, दीर्घ जीवी हो जाते हैं ।।
मालूम उन्हें फिर हो जाए, पक्का विश्वास करेंगे तब ।
आंखों बिन दवा हजारों को, अच्छा होते देखेंगे जब ।।
हम बीस बरस के अनुभव से, निश्चित यह बात बताते हैं ।
निर्दोष लाभ प्रद निज जोखम, सब तेज बिमारी कहते हैं ।।
प्रकृति के सुधार मारग में, औषधि से बाधा डालो मत ।
निर्भय उपवास करो विधि से, चंगे होंगे घबराओ मत ।।
रोगों को शत्रु समझना भी है, भूल भयानक जनता की ।
हैं मित्र स्वास्थ्य प्रद वे सब ही, कर देते सफाई देही की ।।
देही को मशीन सम समझो, है जड़ चेतन का केवल भेद ।
इसे ठीक हालत में रखने पर, कुछ ध्यान न देते खेद ।।
जितने भी तीव्र रोग होते, केवल यह कुदरत की रचना ।
यह गैर जरूरी बेशक सब हैं, इलाज कुदरत पर रहना ।।
जब सरदी जुकाम लग जावे, अथवा बुखार भी हो जाए ।
जल्दी ही यदि चेत जायें, वह कभी नहीं बढ़ने पाये ।।
अत्यन्त लाभ प्रद उपयोगी, बहु मूल्य इलाज बताता हूं ।
बहु रोग अकाल मरण पीड़ा, इनका उपाय समझाता हूं ।।
सरदी जुकाम के लगते ही, प्राकृतिक चिकित्सा शुरू करो ।

औषधि काढ़े को छुप्रो नहीं, वरना तो फिर बेमौत मरो ।।
सब चीजें खाना बंद करो, ठंडे जल से तुम स्नान करो।
गर भूखे हो कुछ फल खाम्रो, या ताजा दूध आहार करो ।।
ज्यादा कपड़े छोड़ो फौरन, बन सके तो आधे नग्न रहो।
घर के कमरों को बंद करो, खिड़कियां खोल तहं नग्न रहो ।।
लेकिन जादा अच्छा यह है, जंगल में कभी कभी जाओ।
नंगी धरती पर बैठ लेट, बल रूप दीर्घ जीवन पाओ ।।
पृथ्वी में अद्भुत शक्ति है, नाना विधि रोग हटाती है।
संसर्ग स्पर्श के करने से, सुख नींद ताजगी आती है ।।
इस प्रकार लंघन स्नानों से, अन्नादि फल के खाने से।
एनिमा धूप अरु दुग्ध कल्प, विश्राम बराबर करने से ।।
चेचक मलेरिया निमोनिया, डिप्थीरिया हैजा बीमारी।
बच्चों के खेल समान सभी, निश्चय अच्छी हों बीमारी ।।
कुछ कष्ट न हो कुछ खर्च न हो, ना वैद्य बुलाने का झंझट।
ना चिंता हो ना जोखम हो, बिना दवा रोग भगें झटपट ।।
प्राकृतिक चिकित्सा की महिमा, हम सच्चे दिल से गान करें।
इसके कारण परिवारसहित, हम जिंदा हैं यह शपथ करें ।।
कुदरती इलाज शरण लेकर, कितने घर आज सुखी रहते।
ना समझ दवा बूटी खाकर, कितनें नर रात दिना रोते ।।
जो रोगी औषधि खाकर अब, दीरघ रोगी हैं बने हुए।
उनको भी भावी स्वास्थ्य हेतु, फल दूध शाक खाना चहिए ।।
प्राकृतिक चिकित्सा विधि पूर्वक, कुछ मास अगर वे कर लेंगे।
जलवायु धूप मालिस बस्ति से, स्वास्थ्य प्राप्त कर लेंगे ।।
स्वाभाविक जीवन के द्वारा, उनकी जठराग्नि प्रबल होगी ।।
अन्दर के संचित मल को वह, बल पूर्वक बाहर कर देगी ।।
इस अरसे में छोटी मोटी, कुछ तेज बीमारी आवेगी।
पर महा भयानक अन्दर की, गर्मी भी कम हो जावेगी ।।

अन्दर की गरमी ही क्षय सम, भीषण रोगों का कारण है।

ताजी ठंडी वायु से ही, हो सकता रोग निवारण है ॥
जो लोग हवा से डरते हैं, दिन रात वस्त्र लादे रहते।
रहते कमजोर बीमार सदा, वे वैद्यों के घर हैं भरते ॥
इसके विपरीत फलाहारी, शाकाहारी और पय हारी।
रहते नीरोग प्रसन्न सदा, आवे न कभी भी बीमारी ॥
छोटे छोटे से पशु पक्षी, सरदी में भी नंगे रहते।
सरदी न लगे ज्वर हो न कभी, रोगों से रहित सदा रहते ॥
सरदी से डरने वाले हम, बीमार अल्प जीवी होते।
जो सरदी से तनिक न डरते, वे दीर्घ जीवी निरोगी होते ॥
कितना भी हम समझावेंगे, सब तरह प्रमाण बतावेंगे।
क्या दवा भक्ति सरदी का डर, उनके दिल से हट जावेंगे ॥
जल से ज्यादा हम शुद्ध वायु में, अधिक काल रह सकते हैं।
फल शाक दूध मेवा भोजन से, सदा स्वस्थ रह सकते हैं ॥
अति शीत काल में ठंडे जल का, प्रयोग हानी कर सकते।
पर हवा स्नान नंगे रहना, नुकसान कभी ना कर सकते ॥
अति थके पसीने में भीगे, हम ठंडे जल से स्नान करें।
ज्वर रोगी निःसंकोच भाव से, ठंडे जल में स्नान करें ॥
पर विरले ऐसे वीर पुरुष, जो थके पसीने से हों तर।
फेंके कपड़े होवें नंगे, ठंडे झोकों से लगे न डर ॥
है कौन बहादुर जाड़े में, जो कपड़ों बिन नंगा रहता।
सरदी व घाम से डरे नहीं, प्रकृति पर दृढ़ श्रद्धा रखता ॥
चेचक डिप्थीरिया मलेरिया में, अपने प्यारे बच्चों को।
कपड़े उतार नंगा रखें, अरु दवा न देवें बच्चों को ॥
नंगा टहलावे कमरे में, चाहे जाड़े का मौसम हो।
हिम्मत किसकी ऐसी होगी, चाहे गरमी का मौसम हो ॥
ज्वर निमोनिया मोतीझारादि, अत्यन्त तीव्र ज्वर होने पर।
भारी कपड़ों से लदा हुआ, बंद रहे घर के अन्दर ॥
अरु औटाया पानी पीकर, काढ़े कुनीन मिक्सचर लेकर।

उछले कूदे कपड़े फेंके, इन सब बातों से घबराकर ॥
है कौन वीर हिम्मत वाला, लोकापवाद से डरे नहीं ।
कपड़े उतार घर से निकाल, बन में जा रहवे डरे नहीं ॥
गंदी गलियों गंदे शहरों, और गंदे घर से बाहर कर ।
जंगल या बाग बगीचे में, कुटिया में रखे ले जाकर ॥
प्राकृतिक चिकित्सक भी, चौकेंगे यह अद्भुत प्रयोग सुनकर।
घबरायेंगे डर जायेंगे, छोड़ें हिम्मत बुजदिल बनकर ॥
यदि हिम्मत कर कोई प्रयोग, अपने औरों पर कर लेंगे ।
पागल खप्ती बतला करके, पड़ौसी लानत भी देंगे ॥
बहु बार परीक्षा कर करके, अनुभव करके यह जान लिया ।
अत्यन्त लाभ प्रद बिन जोखम, उत्तम इलाज यह मान लिया।
संरसाम प्रलाप बुखार बड़ी, रोगी के सिर पर मृत्यु खड़ी।
ठंडे झोके से शान्ति मिली, अच्छा हो पाई शान्ति बड़ी ॥
कोई न मरा आया न शीत, यह बुखार जल्दी भाग गया ।
रोगी को स्वस्थ नवीन बना, बरदान रूप हो त्याग गया ॥
गरमी बढ़ने पर सदा आप, शीतल जल से शांती पाते ।
ताजी ठंडो वायू खाकर, बल स्वास्थ्य आयु जीवन पाते ॥
औषध आलय अस्पताल यह, हैं नरक समान त्याज्य समझो ।
धन समय शरीर नाश होगा, इनमें जाने से सच समझो ॥
छब्बे जी बनने जाओगे, पर दुब्बे ही रह जाओगे ।
नीरोगी बनने जाओगे, उल्टे रोगी हो जाओगे ॥
डाक्टर अरु वैद्य हकीमों को, परवाह नहीं मरजाओ तुम ।
लें दवा मूल्य और फीस खूब, फिर चाहे यमपुर जाओ तुम ॥
सौ दो सौ रुपये लें सर्जन, चीरा फाड़ी कर डालेंगे ।
गर चीर फाड़ में मरजाओ, भंगी से फिकवा डालेंगे ॥
प्राकृतिक चिकित्सालय सुन्दर, जो जंगल बाग बगीचों में ।
झरने पर्वत की घाटी में, सुन्दर फल वाड़ी जङ्गल में ॥
हो तीव्र रोग या दीर्घ रोग, निश्चय छुटकारा पाओगे ।

रह नग्न धूप और तेज हवा में, स्वास्थ्य शांति बल पाओगे ॥

औषधि खानी ना पड़े, ना कुछ चीरा फाड़।
कौड़ी खर्च करौ नहीं, ना मन्तर ना झाड़॥

फिर भी आश्चर्य हमें भारी, है दवा भक्त दुनियां सारी।
खोटे निर्दय कल्पित इलाज, की है गुलाम जनता सारी॥
कमजोर रोगियों को ठंडे, जल धूप हवा से दूर रखें।
धातु रस इंजैक्शन टीका से, असमय उनके प्राण भखें॥
अन्यायी घातक मारक वे, रोगी के दुश्मन हैं भारी।
अपने अज्ञान अन्ध श्रद्धावश, करें पाप वे अतिभारी॥
प्रकृति की शरण गहें रोगी, वे शीघ्र स्वस्थ हो जावेंगे।
हंसते हंसते चंगे होंगे, दीरघ जीवन भी पावेंगे॥
प्राकृतिक चिकित्सा एकमात्र, भारत में जब प्रचलित होगी।
एलोपैथी हिकमत वैद्यक, तब नाम मात्र को होगी॥
जल हवा ठंड पृथ्वी शक्ति, अरु फलाहार मिट्टी द्वारा।
सब नए पुराने रोगों का, होगा इलाज प्रकृति द्वारा॥
बच्चे अकाल तब मरें नहीं, हो खाली गोद न माता की।
इतनी विधवायें बनें नहीं, लो शरण प्रकृति माता की॥
लेखनी [समर्थ नहीं मेरी, पूरा वर्णन सब लिखने को।
कल्पना थकी मन हार गया, उस सुखका चिंतन करने को॥
जो होगा भारत में उस दिन, जब प्रकृति पर सब आवेंगे।
चिंता व्याधि मृत्यु अकाल, दुख शोक नष्ट हो जावेंगे॥
हम अभक्ष्य भक्षय कुपथ्य से, तनको मल ग्रसित बनाते हैं।
पृथ्वी वायु से दूर रहें, जठराग्नी दुर्बल करते हैं॥
जब शरीर खुद ही बल पूर्वक, मल बाहर करने लगता है।
तो डाक्टर वैद्य दवा देकर, मल अन्दर दबा डालता है॥
तब घर के अन्दर वह रोगी, घुट घुट कर ही मर जाता है।
नातेदारों घरवालों का, भारी जमघट हो जाता है॥
उसकी फिर अरथी बनती है, नारी पछाड़ खा गिरती है।

बालम धोखा दे चले गए, कर हाय हाय वह रोती है ।।
माता कहती है लाल मेरा, ठंडी धरती में समा गया ।
मुझ दुखनी को अनाथ करके, दुख दे रोता ही छोड़ गया ।।
समझाते नर नारी उनको, गीता का ज्ञान बताते हैं ।
ईश्वर की मरजी ऐसी थी, यह समझ सब कर जाते हैं ।।
रो रो कर प्रेम दिखाते सब, अरथी के पीछे जाते हैं ।
मानव ने मानव को मारा, यह भेद कोई ना पाते हैं ।।
सबसे भारी गल्ती यह है, अरु भूल भयंकर अति भारी ।
ईश्वर ने रोगी बना मार डाला, कहते जो नर नारी ।।
वे दोष ईश को देते हैं, प्रकृति विरुद्ध जो चलते हैं ।
वे स्वास्थ्य नियम को तोड़ स्वयं, जल्दी रोगी हो मरते हैं ।।
धर ध्यान हमारी बात सुनो, हित कर उपदेश मान लो तुम ।
रोगी या नीरोगी होना, है हाथ तुम्हारे जानो तुम ।।
जो रहे शाक फल दूध खाय, और कभी कभी उपवास करें ।
कपड़े भी कम जो पहनेंगे, सर्वथा दवा का त्याग करें ।।
भारी गरिष्ठ बासी तीक्षण, चीजें विषवत जो छोड़ेंगे ।
अरु नशा दवा अंडे शराब, आचार मुरब्बे छोड़ेंगे ।।
प्रकृति के नियमों पर चलकर, सौ वर्ष अवश्य जियेंगे वे ।
बन स्वास्थ्य मूर्ति अरु सुखी महा, बीमार कभी न होंगे वे ।।
फिर अकाल मृत्यु एक दम ही, आकर न दबोचेगी हमको ।
आकाश से जैसे बिजली गिर कर, मार डालती है हमको ।।
दीरघ जीवी हम होवेंगे, रोगों का नाम मिटेगा तब ।
जब दवा भक्ति हम छोड़ेंगे, प्रकृति से नाता जोड़ें सब ।।
ईश्वर से विनती करता हूं, इससे सब लाभ उठावेंगे ।
मेरा श्रम सफल तभी होगा, जब रोग मुक्त सब होवेंगे ।।

●

प्राकृतिक चिकित्सा की करामात

खाज-खुजली का रामबाण इलाज

मित्र सनेही एक की, गाथा कहूं बखान।
खुजली अच्छी हो गई, हुआ स्वास्थ्य का ज्ञान ।।
मम मित्र महोदय बहुत दिनों से, पीड़ित खाज रोग से थे।
सारे शरीर पर दाद खाज, अरु फोड़े फुन्सी भारी थे ।।
गंधक अरु लेप दवा कर ली, पर हुआ न कुछ भी लाभ उन्हें।
रातों जागे बहु कष्ट सहा, किंचित भी शान्ति मिली न उन्हें ।।
इस दुष्ट रोग से पीड़ित हो, आतम हत्या करना चाहा।
पर इससे पहले मुझसे भी, अपना विचार उन स्पष्ट कहा ।।
मैंने उनको यह स्पष्ट कहा, तुम दूषित भोजन करते हो।
नमकीन और मीठी चीजें, बासी गरिष्ठ भी खाते हो ।।
इससे ही कब्ज हुआ तुमको, और खून खराब हुआ सारा।
यदि रोग मुक्त चाहो अब तुम, प्राकृतिक चिकित्सा है चारा।
छोड़ो चीनी और नमक आदि, भारी गरिष्ठ भोजन मत लो।
ताजे फल फीका दूध कंद, यह नैसर्गिक चीजें ही लो ।।
मेरा उपदेश सुना उन सब, उसके अनुसार इलाज किया।
इकीस दिवस तक लगातार, नारंगी रस का पान किया ।।
जाड़े का मौसम होने से, बिन वस्त्र धूप का स्नान किया।
अरु ठंडे जल से रोजाना, दो बार प्राकृतिक स्नान लिया ।।
टब उनके पास नहीं था, इससे साधारण ही स्नान किया।
पर ताजा जल से आंतों को, एनिमा बस्ति से साफ किया ।।
सप्ताह बीत जाने पर, उनको नींद खूब गहरी आई।
फिर भूख लगी अच्छी उनको, खुजली भी नाम मात्र आई ।।
रोजाना सात आठ नारंगी, यह ही था भोजन उनका ।।

दस दिन में चमड़ा साफ हुआ, अरु स्वास्थ्य सुधार हुआ उनका ।।
एनीमा बस्ति अब बन्द किया, आंतों से कचरा निकल गया ।
नारंगी बीस रोज खाने से, रक्त दोष सब भाग गया ।।
इक्कीस रोज के बाद उन्हें, कुछ हरे शाक चावल दीन्हें ।
कुछ फल खाए अरु दूध लिया, चीनी बिल्कुल दीनी न उन्हें ।।
इन सीधे साधे उपचारों से, रोग सदा को दूर हुआ ।
अरु दस वर्षों में कभी उन्हें, फिर खुजली रोग कभी न हुआ ।।
यह खुजली नवीन थी उनको, औषधि तेज नहीं ली थी ।
गंधक पारा जैसी घातक, कोई औषधि छुई ना थी ।।
इससे जल्दी आराम हुआ, और रोग शीघ्र ही चला गया ।
वरना दो तीन मास लगते, खुजली रहस्य यह बता दिया ।।
ऐ खुजली के रोगी सुन लो, मैं निश्चित बात बताता हूं ।
औषधि चक्कर में मत फसना, मैं बार बार समझाता हूं ।।
लाखों अज्ञानी दवा भंवर में, फंसकर मारे जाते हैं ।
पैसा खोते शरीर खोते, अति कष्ट पाय मर जाते हैं ।।

एलोपैथी (डाक्टरी) और आयुर्वेद

रोगों से बचना चाहो तो, प्राकृतिक चिकित्सा अपनाओ ।
बीमार सदा रहना चाहो, तो औषधियां खाते जाओ ।।
पाठक गण क्षमा करें मुझको, यदि टीका करू इलाजों की ।
घातक मारक बेकार बता, निंदा गर करूं इलाजों की ।।
पच्चीस साल के अनुभव ने, मुझको यह पाठ पढ़ाया है।
ज्यों ज्यों यह दवा बढ़ें जग में, त्यों-त्यों उन रोग बढ़ाया है ।।
चाहे उद्देश्य बुरा न हो, जन हित यह ढोंग रचाया है।
परिणाम मगर हमने देखा, अत्यन्त बुरा ही पाया है।।
निश्चय जानो देखो चाहे, उपचार दवा के हैं खोटे।
रोगों का मूल हटे न कभी, दबकर भी फिर फिर वे लौटें ।।
प्रकृति विरुद्ध जीवन से ही, जब सारी बीमारी होती ।
फिर पथ्य बिना ही औषधि से, क्योंकर वह बीमारी जाती ।।
निश्चय जानो पाठक मन में, यह बात तुम्हें बतलाता हूं ।
है त्याग दवा का अति उत्तम, आरोग्य रहस्य बताता हूं ।।
तुम समझो कारण रोगों का, मिथ्या भोजन से होते हैं ।
हो कब्ज रक्त दूषित होता, तब सब ही धातु बिगड़ते हैं ।।
जब इतना मल संचय होता, यह शरीर गंदा हो जाता ।
तब रोग निवारक कष्ट होत, मल कुपित हमारा हो जाता ।।
हैं तीव्र रोग हितकर भारी, स्वागत तुम मित्र समझ करना ।
तुमको निरोग बनाते हैं, भूले न शमन इनका करना ।।
एलोपैथी वैद्यक विद्या, इनका आधार कल्पना है।
रोगों को शत्रु समझ करके, इनका उद्देश्य दबाना है ।।
परिणाम दवा का यह होता, मल दोष सभी दब जाते हैं।
कालांतर में वे दीर्घ रोग, तुमको यमपुर पहुंचाते हैं ।।
हैं लाख गुने अच्छे वे, नर जो दवा ना लेते हैं ।

जो दवा मंदर से दूर रहें, वे दीरघ जीवी होते हैं ॥
हे स्वतंत्र भारत के लोगो, तुमने आजादी क्या पाई ।
निज स्वास्थ्य आयु औरों को दे, परतंत्र बने यह मन भाई ॥
तुम जाते डाक्टर वैद्यों के, क्लीनिक औषध आलय अन्दर ।
अन्धे हिय के पूरे धन के, वे बाजीगर तुम हो बन्दर ॥
कितने भोले हो रोगी तुम, डाक्टर वैद्यों की आस करो ।
वे फीस दवा का मूल्य लेते, फांसें तुमको जीओ कि मरो ॥
बीमारी तुम पैदा करते, अरु खुद ही मिटा सको उनको ।
उड़कर आते ना रोग कभी, तुम ध्यान धरो समझो उनको ॥
मिट्टी से फोड़ा मिटता है, फिर मलहम क्यों लगवाते हो ।
चीरा फाड़ी करनी न पड़ै, क्यों धन अरु स्वास्थ्य गमाते हो ॥
बिन कुनीन जूड़ी ज्वर मिटता, इंजेक्शन क्यों लगबाते हो ।
केवल नीबू का रस पीओ, अमृत तज विष क्यों खाते हो ॥
है जुकाम मिटता लंघन से, काढ़ा पी रोग दबाते हो ।
हैजा मिटता लंघन जल से, क्यों औषधि ले दुख पाते हो ॥
कैसे मूरख हम अज्ञानी, चीरा-फाड़ी करवाते हैं ।
जब अंत्रवृद्धि मिटती खुद ही, फिर आपरेशन में मरते हैं ॥
जग में कितने लूले लंगड़े, और काने खोड़े फिरते हैं ।
दवा भक्ति औषधि सेवन, कर अंग हीन हो फिरते हैं ॥
जब तक जनता अज्ञान रहै, निज स्वास्थ्य रहस्य न सीखेगी ।
क्या भोजन कर नीरोग रहें, प्रकृति के नियम न जानेगी ॥
जब तक वह हवा धूप जल की, मिट्टी के गुण ना समझेगी ।
तब तक डाक्टर अरु वैद्यों की, हो गुलाम इत उत भटकेगी ॥
प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा, घर घर जिस दिन दी जावेगी ।
महिलाएं स्वस्थ बनेंगी इनसे, बीमारी खुद भग जावेगी ॥
पिछली पीढ़ी है दवा भक्त, उनका विश्वास हटै न कभी ।
लड़के लड़की सीखैं इसको, फिर रोग समूह डटै न कभी ॥

बी. सी. जी. वैक्सीन और क्षय

क्षय रोग निवारण हेतु चला, बी० सी० जी० वैक्सिन वैज्ञानिक।
निश्चय टी० बी० इससे मिटती, डाक्टर कहते यह प्रामाणिक॥
आविष्कर्ता इसके 'कलमिट,' एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक थे।
प्रारम्भ हुआ जर्मन प्रदेश में, डाक्टर इसके उत्सुक थे॥
इक अस्पताल के डाक्टरों ने, अनुभव इसका यों कर डाला।
दो सौ निर्दोष बालकों के, तन में उन यह विष भर डाला॥
बच्चों के मां बापों ने, जब इसका रहस्य पूछा उनसे।
उत्तर में यह निर्दोष दवा, क्षय नाशक बड़ी कहा उनसे॥
मां बाप विचारे क्या करते, वैक्सीन लगाया बच्चों के।
सत्तर से अधिक मरे बच्चे! पत्थर से हिए बने उनके॥
बाकी बच्चे जो नहीं मरे, वे चिर रोगी कमजोर बने।
कितनी गाथाएं लिखें कहो, ऐसे नर राक्षस हैं कितने॥



२३

पर दोष उन्हें कैसे हम दें, अपराध हमारा ही तो है।
निज स्वास्थ्य और हाथों देते, अज्ञान हमारा ही तो है॥
उन बच्चों के मर जाने से, अभियोग चले उन लोगों पर।

अपराधी [illegible] हुए, जेलों में पड़े [illegible] वे नर ॥
सरकार हमारी भी सुनते, इस बी०सी०जी० को अपनाती ।
छः सौ में एक मरे क्षय से, यह संख्या है बढ़ती जाती ॥
कारण का ज्ञान नहीं हमको, देखा देखी सब कुछ करते ।
जो दवा बता देवें डाक्टर, अन्धों की तरह उसे लेते ॥
गंदा रहना गंदा खाना, दूषित वायु और औषधियां ।
कारण सच्चे क्षय के यह सब, पर प्रधान कारण औषधियां ॥
अन्दर गंदे बाहर गंदे, गांव घर गली सभी गंदी ।
गंदे इन्जेक्शन और दवा, काया कर दें बिलकुल गंदी ॥
कारण को हटा नहीं सकते, केवल बक झक सब हैं करते ।
चलनी में पानी भर कर क्या, सरवर को खाली कर सकते ॥
मिल के चावल चक्की आटा, चोनी सफेद हम खाते हैं ।
प्रकृति विरुद्ध और सार रहित, भोजन से रोग बुलाते हैं ॥
फल दूध दही अरु शाक कंद, तज जहरीले इंजेक्शन खाते ।
परिणाम सामने ही तो है, कैंसर क्षय रोगों से मरते ॥
डाक्टर कारण जानैं न कछू, सिखलाया कुछ भी नहीं उन्हें ।
रोगों को शत्रु समझ लड़ना, बतलाया केवल यही उन्हें ॥
सरकार और जनता सोचो, कारण का नाश करो पहले ।
हो ज्ञान स्वास्थ्य विषयक सबको, औषधि का त्याग करो पहले ॥
प्राकृतिक चिकित्सा फैलाकर, सबको ही योग्य बना डालो ।
स्वाभाविक भोजन द्वारा ही, सबको निरोग बना डालो ॥
फल शाक कंद और मेवे की, खेती का खूब प्रसार करो ।
बेकारी और बीमारी सब ही, दूर भगैं व्यायाम करो ॥
औषधि सेवन से रोग बढ़ें, अरु शरीर गंदा हो जाता ।
छोटे से बड़ा रोग होता, मृत्यू कारण बन जाता ॥
वैक्सीन और इंजेक्शन सब, घातक मारक निश्चय जानों ।
अपराधी दंड योग्य जो दें, बेचें तैयार करैं मानों ॥
क्षय नहीं रुके बी० सी० जी० से, उल्टा ज्यादा बढ़ जावेगा ।

लाखों रोगी बिन मौत मरें, अरु धन विदेश में जावेगा ।।
वैक्सीन बनाने वालों के, यह डाक्टर हैं एजेंट बड़े ।
धन लाभ करें इसके द्वारा, व्यापारी यह एजेंट बड़े ।।
गंदा कर दें यह खून सभी, रोगों को न्यौत बुलाते हैं।
परवाह नहीं रोगी मरते, अपनी जेबें यह भरते हैं।।
हे दीनबन्धु विनती सुन लो, गीता सम ज्ञान सुना जाओ ।
भारत की रोग ग्रसित जनता, सत स्वास्थ्य मार्ग बतला जाओ।।

प्राकृतिक चिकित्सा की महान् सफलता

स्वर्गीय श्री राजनारायण ब्रह्मवर की आत्मकथा

मेरा जन्म १२–११–१८७६ में हुआ था। माता-पिता कमजोर थे इसीलिए मैं भी जन्म से ही दुर्बल था। स्नेहवश तथा अज्ञानवश मेरे माता-पिता ने मेरे बाल्यकाल में ही मुझे एक एलोपैथिक डाक्टर साहब के सुपुर्द कर दिया और मुझे स्वस्थ व बलवान बनाने के उद्देश्य से अनेक तरल डाक्टरो दवाइयां पिलाई गईं, परन्तु सन्तोषजनक परिणाम न हुआ।

जब मैं कुछ बड़ा हुआ तो मुझे ज्ञात हुआ कि मुझे पुराना मलावरोध (कब्ज) हो गया है और इस शिकायत को दूर करने के लिए मैंने अनेक प्रकार की आयुर्वेदिक तथा डाक्टरी दवाइयों का सेवन किया। परिणाम यह हुआ कि मैं पहले से अधिक कमजोर व बीमार हो गया और आखिर अप्रैल १८९७ में मुझ पर हैजा का कठिन आक्रमण हुआ। इलाहाबाद के सिविल सर्जन ने मुझे सैगाइन नाम की अंगरेजी दवा के इंजेक्शन दिए जिससे मैं मरने से तो बच गया, परन्तु मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया और मेरा शरीर एक हड्डियों का ढांचा रह गया।

कुछ समय बाद अजमेर में मेरे एक मित्र ने मुझे कुन्हें की जल चिकित्सा प्रणाली का परिचय दिया।

तदनुसार कुछ महीनों तक मैंने विधि पूर्वक स्वाभाविक भोजन और प्राकृतिक स्नान (टबबाथ) के उपचार किए। स्वस्थ हो जाने पर तथा उस समय किसी प्राकृतिक चिकित्सक की देख-रेख न होने के कारण मैंने आगे प्राकृतिक चिकित्सा जारी नहीं रखी और मैं एक बार फिर अनियंत्रित तथा अनियमित अस्वाभाविक जीवन बिताने लगा और अपनी पुरानी आदतों का शिकार हो गया।

नतीजा यह हुआ कि मुझे सन् १९०२ में धीरे-धीरे हड्डियों का क्षय आरम्भ हुआ और पहले-पहल यह रोग मेरे दाहने हाथ की हथेली में प्रकट हुआ।

मैंने इस रोग का डाक्टरी इलाज करवाया। सर्जन-डाक्टरों ने पहले सूजी हथेली में चीरा लगाया और बाद में मेरी एक उङ्गली को काट दिया। इस घाव को ठीक होने में लगभग एक वर्ष लग गया।

मैंने एलोपैथी डाक्टरों का इलाज श्रद्धा व विश्वास के साथ बराबर ४ साल तक जारी रखा, जिसका नतीजा यह हुआ कि हड्डियों में क्षय के बजाय अब फेफड़ों को क्षय हो गया और गरदन पर गिल्टियां हो गई।

अनेक उपचार कर चुकने पर डाक्टर लोग निराश हो गए और अन्त में उन लोगों ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि अब तुम अच्छे नहीं हो सकते। मैं निराश हो गया।

ठीक इसी समय जब मैं आबू रहने लगा था कि एक मित्र ने मुझे लुई कुन्हे की एक पुस्तक 'न्यू साइंस आफ हीलिंग' अर्थात् 'आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या' लाकर दी। उसमें से कुछ बातें भी मुझे पढ़कर सुनाई और समझाई।

चूंकि मैं सब इलाज करवाकर निराश हो चुका था, इसलिए मैंने तुरन्त जल चिकित्सा करने का निश्चय कर लिया। अब मैंने पूर्ण विश्वास व दृढ़ता के साथ पुस्तक में बताई हुई विधियों से जल चिकित्सा आरम्भ की और अपने घर नसीराबाद आ गया।

इस इलाज में मुझे तुरन्त आश्चर्यजनक लाभ हुआ। मेरे गरदन पर की मवाद से भरी गांठें फूट गई और बराबर ६ महीने बार-बार ठंडे जल की गद्दी (पट्टी) लगाने से सब घाव भरकर अच्छे हो गए।

उस समय मेरा यह दुर्भाग्य था कि मैं पूर्ण रूप से नैसर्गिक आहार पर नहीं रहता था—बात यह थी कि श्री लुई कुन्हे ने अपनी

पुस्तक में उपवास पर बहुत कम जोर दिया है और उन्होंने रोगियों को मोटे बिना छने गेहूं के आटे की रोटी शाक व फल आदि बताए हैं।

इसी विश्वास से प्रेरित होकर लंघन तथा फलाहार न करके मैं सदा चावल, दाल, चपाती, तरकारियां और कुछ फल लेता रहा और खूब खाता रहा और लंघन आदि का प्रयोग नहीं किया।

अन्त में मुझे तेज बुखार आने लगा और मेरा इलाज धीमी गति से चलने लगा—मैं बराबर जल चिकित्सा व सादा आहार का इलाज चलाता रहा और बारह वर्ष तक यह इलाज जारी रखा। फिर जल चिकित्सा करना अनावश्यक समझ लिया, परन्तु मैं भोजन सादा ही करता था; यद्यपि यह भोजन पूर्ण रूप से स्वाभाविक नहीं था। इसी से मुझको कभी-कभी जुकाम, बुखार आदि तीव्र रोग हो जाते थे और फिर मैं इन्हें हटाने को इंद्रियस्नान लेता था।

सन् १९४१ में मुझे मेरे मित्र ने पुदूकोटा के श्री शर्मा के लक्षण की पुस्तक 'लाइफ नेचरल' दिखाई और फिर 'प्रेक्टिकिल नेचर क्योर' और दिखाई।

इसके बाद तो मैंने अनेक पुस्तकें प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति और योग चिकित्सा पर पढ़ी हैं और अब मैं आसन प्राणायाम तो करता ही हूं स्वाभाविक भोजन, फल, शाक, दूध पर भी रहता हूं—इन प्रयोगों से मुझे असाधारण लाभ हुआ है और मेरा स्वास्थ्य पहले से बहुत उत्तम हो गया है। आज प्राकृतिक चिकित्सा की बदौलत मैं ६६ वर्ष की आयु में भी जवान सरीखा लगता हूं और सभी काम जवानों की तरह कर लेता हूं। अन्त में मैं जनता से अनुरोध करता हूं कि वह मेरे जीवन से कुछ शिक्षा ग्रहण करे और अपने सर्वोपरिधन व सुख-स्वास्थ्य की अवहेलना कभी न करे और लंघन, फलाहार, दुग्धपान, व्यायाम आदि द्वारा अपने को स्वस्थ बनाए रखे और दुर्भाग्य अथवा बदपरहेजी के कारण रोग ग्रसित होने पर भी औषधि-सेवन न करे; बल्कि प्राकृतिक चिकित्सा का आश्रय ले जो कि सर्वोत्तम प्रणाली है और जिसमें कभी धोखा नहीं होता।

प्राकृतिक चिकित्सा सूर्योदय

एक भुक्त भोगी की राम कहानी

मुझे वर्षों से श्वास व रक्त विकार का रोग था, जिसके इलाज के लिए मैंने बड़े-बड़े प्रसिद्ध डाक्टरों, वैद्यों व हकीमों की शरण ली। उन लोगों की आज्ञानुसार बहुत समय तक अनेक प्रकार की देशी-विदेशी दवाइयां काफी मात्रा में सेवन कीं। पर इस अन्धविश्वास व ढोंग से मुझे कुछ लाभ न हुआ। जब तक दवा का असर रहता था कुछ रोग दब जाता था, पर दवा छोड़ते ही रोग पहले से अधिक बढ़ जाता था। इस प्रकार दुनियां की देखा-देखी मैंने भी अन्धा होकर काफी रुपया डाक्टर, वैद्यों को फीस व दवाइयों में नष्ट कर दिया, पर परिणाम सिवाय निराशा के कुछ न हुआ और मेरा शरीर केवल हड्डियों का ढांचा रह गया। अन्त में मुझे जलवायु परिवर्तन की आज्ञा दी गई। जैसा कि अक्सर होता है जब कोई रोगी दवाइयों से निराश होता है तो उसे चिकित्सक शुद्ध वायु में जाकर रहने की आज्ञा देते हैं। खेद! अगर पहले ही औषधि रूपी जहर न देकर चिकित्सक रोगियों को शुद्ध वायु-सेवन, फलाहार आदि की राय दें तो लाखों जानें बच सकता हैं।

अस्तु, मेरे भाग्य से मेरे एक मित्र ने मुझे प्राकृतिक चिकित्सा की एक पुस्तक डा० हेनरी लिंडलाहर की दी, जिसे मैंने ध्यान से पढ़ा और दृढ़ चित होकर उसके अनुसार अपना जीवन बनाया और आश्चर्य कि कुछ सप्ताह में ही मैं पूर्ण निरोग, प्रसन्न व सुखी हो गया। जिस रोग को बड़े-बड़े डाक्टर, वैद्य, हकीम अनेक काल्पनिक व खर्चीली दवाइयां, इंजेक्शन आदि से वर्षों में ठीक नहीं कर सके थे वही रोग प्रकृति के सीधे-साधे उपचारों, जल, हवा, धूप, मिट्टी, फलाहार, लंघन, पृथ्वी की शक्ति, मालिश आदि से समूल नष्ट हो गया। ऐसी

हालत में मेरे लिए प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली ही सर्वस्व हो गई है और मैं इसका पक्का आजन्म भक्त बन गया हूं। ईश्वर करे मेरी तरह सभी लोग इन पुस्तकों को पढ़कर सुखी बन जाएं।

चिकित्सक बन्धुओं की सेवा में दो शब्द

आजकल चिकित्सा पद्धतियां दो भागों में विभक्त हैं : एक शोधक, दूसरी शामक। अधिकांश लोग आजकल शामक चिकित्सा प्रणाली के आदी हैं जिसमें डाक्टरी, आयुर्वेद मुख्य हैं। इन्हीं का सब जगह बोलबाला है। डाक्टर लोग तो यही राग अलापा करते हैं कि रोग जन्तुओं को नष्ट करने से इलाज होगा। वे लोग तो रोग की उन्नति अवस्था तक पहुंचने पर चिकित्सा करते हैं सो भी चीर-फाड़ या घातक मिक्सचरों से या हानिकर मलहमों या नशीली शराब मिली हुई चीजों का अधिक उपयोग करते हैं। सारांश में ये लोग रोग समूह से दवाइयों की सहायता से लड़ते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली इस सिद्धांत को नहीं मानती। इस प्रणाली में रोग के पकने का इन्तजार नहीं किया जाता; बल्कि रोग होते ही उसे प्राकृतिक उपायों से रोकने की कोशिश की जाती है। इस पद्धति में रोगी को स्वाभाविक जीवन बिताना पड़ता है, जिससे सभी रोग समूह समूल नष्ट होकर शरीर इतना निर्मल हो जाता है कि उसमें भविष्य में कोई व्याधि उत्पन्न ही नहीं होती।

अब सवाल यह है कि इनमें उत्तम प्रणाली कौन-सी सिद्ध हुई। डाक्टर, वैद्य, हकीम, दवाफरोश व बड़ी-बड़ी कम्पनियां, जो दवा बेचती हैं, उनके लिए तो एलोपैथी व आयुर्वेद ही उत्तम हैं, क्योंकि उन्हीं से उनको रोटी मिलती है। अगर वे प्राकृतिक चिकित्सा को अपना लें तो लाखों रुपए सालाना आमदनी जाती रहे मगर जन-साधारण के लिए तो प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली ही कामधेनु व कल्पवृक्ष के समान हितकारी है। इसमें वे सभी दवा के खरचे, झंझट,

चिकित्सकों की गुलामी और रोगों के भयानक आक्रमण से बचकर पूर्ण आरोग्य व सुख का उपभोग करेंगे, पर खेद! आजकल चिकित्सा का पेशा दुकानदारी और रोटी कमाने का साधन बन गया है, जनसाधारण के स्वास्थ्य व रोग चिकित्सा से अधिक महत्व दवा बेचकर या फीस लेकर पैसे बनाने का अधिक ध्यान रक्खा जाता है। सबसे बड़ी आश्चर्य की बात तो यह देखी गई है कि जिस औषधालय में अधिक से अधिक रोगियों की संख्या दर्ज रहती है उसके अधिष्ठाता की उन्नति हो जाती है मानो औषधालय खोलने में मालिकों का यह उद्देश्य होता है कि दुनियां दिन-दिन ज्यादा बीमार हो और दवाइयां खूब खप! तभी भारत इस दशा को पहुंच गया है।

कहा जाता है कि चीन देश में चिकित्सकों को वार्षिक तनख्वाह देकर घरू नौकर रखा जाता है मगर शर्त यह होती है कि जब तक उस घर वाले नीराग रहते हैं उनको तनख्वाह मिलती है और घर का कोई भी आदमी बीमार होते ही उसकी तनख्वाह रोक ली जाती है।

अगर हमारे देश में भी इलाज करने वालों पर इतनी जिम्मेदारी डाल दी जाए तो देश का कितना भला हो सकता है।

आयुर्वेद व डाक्टरी के विद्यालय व कालेज खोलने से व धार्मिक व सरकारी औषधालय, हास्पिटल खोलने से कभी जन साधारण का स्वास्थ्य ठीक न होगा उल्टा बिगड़ेगा। इसका एकमात्र उपाय यह है कि स्कूलों व कालेजों में सच्चे आरोग्य का पाठ पढ़ाया जावे और यह शिक्षा दी जावे कि रोग समूह से कैसे बचना चाहिए और भूल से रोग हो जाने पर स्वयं उसका इलाज कैसे किया जा सकता है। इसके बिना तो अंधकार ही अंधकार फैला रहेगा।

मेरी यह मन्शा कतई नहीं है कि आज एक दम सभी औषधालय, हास्पिटल बन्द करा दिये जावें या सब दवाइयां फेंक दी जावें। हानि तो कुछ भी न होगी, पर मेरी हार्दिक इच्छा है कि चिकित्सा प्रणाली में

भारी सुधार कर दिये जायें और निरर्थक बातों पर फिजूल-खर्ची बन्द कर दी जावे। उदाहरणार्थ छोटे-छोटे मामलों में चीर-फाड़ बन्द कर दी जावे केवल अनिवार्य दशा में ही आपरेशन किये जावें। धातु, दवाइयों, विषैले पदार्थ आदि का प्रयोग बन्द कर दिया जावे। औष-धियों की मात्रा घटाकर चौथाई हिस्सा कर दी जावे आदि। ऐसा करते-करते कोई दिन ऐसा भी आ जाएगा कि लोगों को दवा खाने या चीर-फाड़ की जरूरत ही न रहेगी।

मगर जब तक जनता में स्वाभाविक रहन-सहन का प्रचार नहीं होगा, रोग समूह अवश्य उत्पन्न होंगे और साथ ही उन्हें चीर-फाड़ की भयंकर यातनाएं, दवा के खर्च व झंझट, वैद्य व डाक्टरों की दासता सभी भुगतनी पड़ेंगी।

प्रकृति के उपचार, उपवास, फलाहार, जल चिकित्सा, मिट्टी के प्रयोग आदि से रोग समूल नष्ट होते हैं, देर नहीं लगती और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इन उपचारों से कभी कोई हानि नहीं होती। यह खूबी न दवा के इलाज में है न चीरफाड़ में है। जरा-सी भूल या गलती से चीर-फाड़ में तुरन्त मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार दवाइयों में भी जरा-सी लापरवाही या भूल से हजारों मनुष्य जान से हाथ धो बैठे हैं और लाखों के जीवन नष्ट हो चुके हैं। फिर भी लोग लकीर के फकीर बनना अधिक पसन्द करते हैं।

संसार में कई स्थान कसाई खाने माने जाते हैं, जहां लाखों की हत्यायें होती हैं और उनके हृदय विदारक दृश्यों को देखकर कठोर से कठोर हृदय भी पिघल जाते हैं, परन्तु मेरी राय में आजकल के अधिकांश हास्पिटल व औषधालयों व घरों में भी चिकित्सकों द्वारा बेचारे गरीब अज्ञान रोगी जान में या अनजान में बेमौत मारे जाते हैं जिसकी सुनवाई सिवाय भगवान् के दरबार के और कहीं होती ही नहीं।

क्या तेज बुखार की हालत में प्यास के मारे तड़पते हुए बीमार

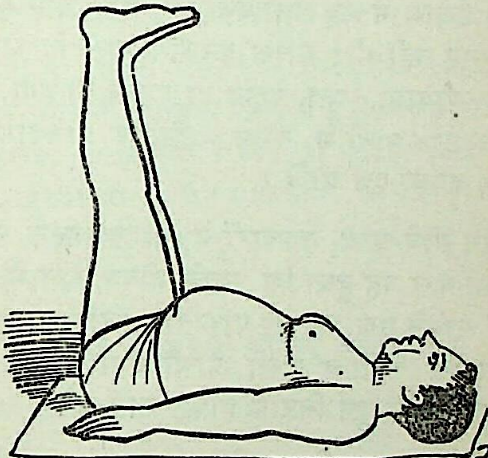
को ठंडा पानी न देना, प्यासा रखना उसकी हत्या करना है ? इसी प्रकार बुखार की गरमी से जी घबराए हुए बीमारों को जबरन परदे देकर कपड़ों से लादे रखना और खुली हवा से दूर रखना उसका वध करने के समान क्या पाप नहीं है ? क्या अन्य उपायों से अच्छे होने वाले रोगों व पीड़ाओं में चीर-फाड़ करना रोगियों की हत्या से कम पाप है ? बच्चों व बड़ों को उनकी इच्छा के विरुद्ध दवा पिलाना या रोग की हालत में जबरन कुछ खिलाना, हत्या नहीं है ? बस लिखना अधिक व्यर्थ है । पाठक स्वयं समझ लें कि आजकल कहां क्या-क्या हो रहा है ।

सभी प्रकार के बुखारों व क्षय रोगों में ठंडा पानी पीने की, फल खिलाने की, शुद्ध वायु सेवन की राय प्राकृतिक चिकित्सक देते हैं । हजारों रोगों में, सभी प्रकार के भयानक ज्वरों में, जुकाम, मोती-झारे या आंतों की बीमारी में व अन्य भयानक रोगों में केवल पानी, मिट्टी, हवा, धूप, उपवास, फलाहार आदि से बिना दवा पूर्ण सौ फीसदी सफलतायें मिल चुकी हैं ।

प्राकृति चिकित्सक बहुत दिनों से अनावश्यक चीर-फाड़, धातु, दवाइयां, बिजली के इलाज, इन्जेक्शन, टीका आदि के विरुद्ध आवाज उठा रहे हैं और इनके तात्कालिक क्षणिक लाभों को व्यर्थ बताकर यह सिद्ध कर रहे हैं कि इनके परिणाम भविष्य में कितने भयानक रोग होते हैं । जिस कुनाइन को लोग मलेरिया का अकसीर इलाज समझ रहे थे उसी को लोग अब बुरा समझने लगे हैं, क्योंकि इसके प्रयोग से क्षयरोग की वृद्धि हुई । चीर-फाड़ से बचे हुए रोगियों में से अधिकांश का हृदय बिल्कुल कमजोर हो जाता है और वे अधिक दिन नहीं जीते हैं ।

धातु दवाइयां लेने वालों की हृदय विदारक कथायें सुनकर तो हृदय फटा जाता है कि इस प्रणाली ने कितनों को तरसा-तरसाकर मारा है । टीका व इंजेक्शन के रिवाज के बाद देश में क्षय, कोढ़, दमा,

नामर्दी आदि रोगों की कितनी वृद्धि हुई है, यह किसी से छिपी बात नहीं है। जांच करने के बहाने व निरीक्षण के हेतु कितने निर्दोष जानवरों की हत्या हर साल की जाती है, इसका अनुमान लगाना कठिन है। मनुष्यों को बलवान बनाने के बहाने काडलिवर आयल (मछली का तेल) तैयार करने और सांडे का तेल बनाने में कितने



28

मेंढक, चूहे, खरगोश आदि तराशे जाते हैं, टीके के रस तैयार करने व इन्जेक्शन कालिफ तैयार करने में कितने जानवरों को घोर कष्ट देकर तड़फा कर मारा जाता है, क्या संसार को निरोग, दीर्घ-जीवी बनाना ऐसे नृशंस घृणित राक्षसी उपायों से संभव है ? क्या चिकित्सकों को इन मूक निर्दोष दुःखी प्राणियों की आहों का श्राप नहीं लगेगा ? क्या ऐसी चिकित्सा पद्धतियों के सहारे सच्चा आरोग्य व सुख संभव है ?

प्राकृतिक चिकित्सा क्या है ?

लोग यह समझते हैं कि यह जंगली इलाज है और सिर्फ कष्ट को दूर करने वाली विद्या है, पर इतना ही नहीं यह प्रणाली जीवन

को भी सुधारने वाली है। यह रोगी से निरोग, कुरूप से सुन्दर, पापी से धर्मात्मा बनाने की विद्या है। इसका अविष्कार जर्मनी में हुआ था।

सर्वप्रथम श्री प्रीसनीज नाम के जर्मन किसान ने इस विद्या का आविष्कार किया था। यह महाशय अन्तःकरण की प्रेरणा से सच्ची चिकित्सा प्रणाली की खोज में लग गए।

परन्तु इनके इलाज में जहरीली दवाइयां, धातु, गोलियां, मरहम आदि घातक वस्तुएं नहीं थीं; बल्कि इनकी प्रणाली के मुख्य गुण ये थे : स्वाभाविक व्यायाम, ताजा, पहाड़ या जङ्गल की हवा, प्राकृतिक सुन्दर झरनों के ठण्डे पानी से स्नान, मनमोहक प्राणदायक फल व हरे शाक ताजा, कच्चा दूध आदि।

प्रकृति के इन सीधे-साधे उपचारों ने आश्चर्यजनक सफलताएं दिखाई। जिसका फल यह हुआ कि उनके जीवन काल में ही उनके जंगल के घर के सामने एक आदर्श प्राकृतिक चिकित्सा भवन खुल गया, जहां पर अनेक रोगी व दुःखी प्राणी दवा के झूठे इलाज से निराश होकर आने और पूर्ण निरोग होकर जाने लगे।

धीरे-धीरे बिना दवा, बिना चीरफाड़ का यह अनोखा इलाज सारे जर्मनी में फैल गया और बड़े-बड़े विद्वान् इसके उपासक बन गए। कुन्हे, जुस्ट, लिंडलाहर, नीप, एहरेट, केलाग, लासमन आदि बड़े-बड़े प्राकृतिक चिकित्सक हो चुके हैं।

इनमें से हर एक ने कोई न कोई नई बात प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को प्रदान की, जिसके लिए संसार सदा उनका ऋणी रहेगा। परन्तु इन लोगों ने यह आविष्कार कालेजों, यूनिवर्सिटयों व मेडिकल हाल से नहीं सीखे; बल्कि इन्होंने सब बातें प्रकृति से, सुन्दर बाग-बगीचों, झरनों से, पशु-पक्षियों से, वृक्षों से सीखीं और यह सिद्धान्त निकाला कि मनुष्य ने अन्तःकरण की आज्ञा मानना छोड़ दिया और वह प्रकृति के पथ से गिर गया और यही उसके रोगी व अल्पायु होने कारण है। इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का

असली उद्देश्य यह है कि मनुष्य शराब, मांस भक्षण, नशेबाजी, दवा के भूत, टीके की अंधप्रथा, चीर-फाड़ के राक्षसी ढंग आदि के भयानक चंगुल से बचकर पूर्ण निरोग, सुन्दर, बलवान व दीर्घजीवी बने। अगर माता-पिता प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली को सीख लेंगे तो वे अपने बच्चों को अधिक सुन्दर, बलवान व धर्मात्मा बना सकेंगे। ऐसे बच्चे भविष्य में अपने वंश को उज्ज्वल बनाने वाले होंगे।

जिन लोगों के शरीर नशा, दवा के जहर, व्यभिचार, अस्वाभाविक रहन-सहन से खराब हो चुके हैं। उनकी संतान भी ऐसी ही निबल, कुरूप, मूढ़ अल्पायु व रोगी ही पैदा होती हैं, परन्तु प्रकृति के अनुयायी मनुष्यों की सन्तान मनमोहक, दीर्घजीवी, अति उदार, धर्मात्मा और सभी गुणों से युक्त उत्पन्न होगी जिन्हें देखने वाले भी प्रसन्न होंगे।

रोगों के मुख्य कारण क्या हैं ?

१—रोग का मुख्य कारण (चोट आदि छोड़कर) प्रकृति के नियमों का उल्लंघन है।

२—प्रकृति के नियमों को भंग करने से शरीर पर निम्न घातक प्रभाव पड़ते हैं।

(क) शरीर की जठराग्नि (जीवन शक्ति) मन्द हो जाती है।

(ख) रक्त, मांस आदि दूषित, गंदे व जहरीले हो जाते हैं।

(ग) शरीर में मल पदार्थ, विषैली वस्तुएं, घातक रस भर जाते हैं।

तीव्र रोग (तेज बीमारी) किसे कहते हैं ?

वास्तव में तेज बीमारी, जिसे आजकल बुखार, हैजा, दस्त आदि कहते हैं, यह शरीर को साफ करने वाली एक क्रिया है अर्थात् इसके द्वारा शरीर में जमे मल-पदार्थों को निकालकर शरीर को नवीन

स्वच्छ बनाने का यत्न करती है। वास्तव में, यह घातक रोग नहीं है।

दीर्घ (पुरानी) बीमारी क्या है ?

दीर्घ रोग उसे कहते हैं जब कि शरीर में विजातीय द्रव्य अधिक मात्रा में भर जाने से अग्नि मंद हो जाती है और शरीर के अङ्ग-प्रत्यंग से रोगी निश्चेष्ट हो जाते हैं और शरीर इतना निर्बल हो जाता है कि वह बल पूर्वक अपनी सफाई नहीं कर सकता।

कौन-से उपचार स्वाभाविक व उत्तम होते हैं ?

१—वे उपचार जो स्वाभाविक जीवन बनावें।

२—जीवन शक्ति को बनाए रक्खें।

१—रक्त को शुद्ध व स्वच्छ बनावें।

४—शरीर को बिना हानि पहुंचाए मल-पदार्थों को बाहर फेंक दें।

५—शरीर को विकार रहित व जठराग्नि प्रबल बनावें।

क्या जहरीली दवाइयां, चीरफाड़ प्रकृति के अनुकूल हैं। नहीं हैं क्योंकि—

१—वे प्रकृति की रोग-नाशक-आरोग्यदायक क्रियाओं को दबा देते हैं।

२—वे स्वयं अति हानिकारक और मनुष्यों के प्राणों का नाश करने वाले हैं।

३—वे संसार में शोक, कष्ट, अकाल मृत्यु को बढ़ाते हैं।

क्या प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली प्रकृति के उद्देश्यों के अनुकूल है ? अवश्य है क्योंकि—

१—यह सिखाती है कि दुर्बलता व रोग का प्रधान कारण प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करना है।

२—यह मनुष्य जाति को सच्चा स्वाभाविक जीवन सिखाती है जो उसके सुख व उन्नति का एक मात्र मार्ग है।

३—यह शरीर व आत्मा को शुद्ध कर देती है और विना कोई हानि किए शरीर को रोग रहित, बलवान व सुन्दर बना देती है।

प्राकृतिक चिकित्सा के मुख्य अंग क्या हैं?

१—भोजन, पान, श्वास, स्नान, पोशाक, कार्य, विश्राम, विचार, रहन-सहन आदि सभी में प्रकृति के उद्देश्य के अनुसार चलें।

२—प्रारम्भिक उपचार जल, वायु, धूप, पृथ्वी, मिट्टी, फलाहार आदि का विधिवत् प्रयोग करो।

३—मालिश, व्यायाम आदि प्रकृति के अनुसार करो।

४—प्रार्थना, भ्रातृभाव, प्रेम, निष्कपट सेवा आदि का पूर्ण प्रयोग करो।

जीवनी शक्ति का मंद होना

मनुष्य-शरीर घड़ी के समान है। जिस प्रकार घड़ी की चाल धीमी पड़ने से फिर वह थोड़े दिन चलती है उसी प्रकार शरीर की जठराग्नि मंद पड़ जाने पर वह शरीर अनेक रोगों से घिरकर शीघ्र नष्ट हो जाता है।

मनुष्य की आयु कलियुग में १०० वर्ष की मानी गई है और यदि वह प्रकृति के नियमों का उल्लंघन न करे तो पूरे १०० वर्ष से अधिक जी सकता है, परन्तु उसके वर्तमान प्रकृति विरुद्ध रहन-सहन, खान-पान आदि के कारण मनुष्य की औसत आयु २५ वर्ष है। कैसा अधः पतन है।

अल्पायु का मुख्य कारण है जठराग्नि का मंद हो जाना। और यह अग्नि, मांस, गंदे, पक्के, अंधेरे घरों में, रोशनी, धूप, हवा से दूर रहने

से, मसाले, मिठाई, पकवान, नशा, मांस, दवा आदि खाने से, व्यभिचार से, अधिक कपड़े, जूते पहनने से हो जाता है।

हमारे स्कूल व कालेजों में पढ़ने वाले अधिकांश विद्यार्थियों का आरोग्य बिल्कुल खराब होता है। उनके नेत्रों की परीक्षा से सिद्ध होता है कि शेष को भी कुछ न कुछ रोग अवश्य है, क्योंकि उनकी आंखें नीली साफ नहीं हैं। धुंधली व धब्बे सहित हैं। आज इतने रोग-समूह फैलने व अकाल-मृत्यु की वृद्धि का अवश्य कोई गहरा कारण है और वह यह कि मनुष्य ने अपनी आदतें खराब कर ली हैं और वह इच्छा या अनिच्छा से प्रकृति के नियम तोड़ता है अर्थात् वह गंदे घरों में रहता है, कपड़े अधिक पहनता है, बजाय दूध, फल, मेवा, शाक के मसाले, मांस, मिठाई, दवा, शराब आदि खाता है और यही उसके रोगी, अल्पायु व दुःखी होने के मुख्य कारण हैं।

अगर हमारे देश के लोगों में प्राकृतिक चिकित्सा, स्वाभाविक रहन-सहन आदि के सभी तरीके जनता को सिखाये जाएं तो हमारे देशवासी दीर्घजीवी, नीरोग, बलवान व सुन्दर बन सकते हैं और भारतवासी पहले की भांति उन्नति के शिखर पर पहुंच जाएं।

परन्तु ये काम खाली बातों से होने के नहीं हैं और न यह काम जगह-जगह अस्पताल, दवाखाने खोलने से ही होगा; बल्कि लोगों को प्रकृति के सच्चे मार्ग पर चलना पड़ेगा और दवा व चीर-फाड़ के ढोंग व अंध प्रथा को तिलांजली देनी पड़ेगी। साथ ही हमें जन-साधारण में फैले हुए अज्ञान, दवाइयों के अंध-विश्वास आदि को समूल नष्ट करना होगा और सभी दवाखाने बन्द कर देने पड़ेंगे।

कितनी लज्जा की बात है कि सभ्य, शिक्षित मनुष्य-समाज रोगी है और जंगल में रहने वाले पशु-पक्षी बाल्यावस्था से लेकर बुढ़ापे तक सुन्दर, बलवान व रोग-रहित रहते हैं। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि भैंस, हिरण, ऊंट आदि जानवरों में से, जो सबसे बड़ी उमर वाले होते हैं, वे बल व साहस में छोटों से बढ़कर होते हैं

और मनुष्य-समाज में देखिए ! बूढ़े स्त्री-पुरुषों की कैसी हीन दशा होती है। वे नाना प्रकार के रोगों व पीड़ाओं से दुःखी रहते हैं और रात-दिन सांस, कफ आदि से मलीन रहते हैं। इसका एक मात्र कारण है मानव-समाज का मिथ्या प्रकृतिविरुद्ध रहन-सहन अर्थात् गंदे, तंग, अंधेरे मकानों में रहना, आग से पकी हुई मुर्दा खूराक खाना, दिन-रात शरीर को खूब कपड़ों से लादे रहना, पानी, हवा, पृथ्वी से दूर रहना, दवाइयां व नशे आदि का सेवन करना आदि।

मन्द व तीव्र जठराग्नि का भेद

अग्नि मंद होते ही खाये हुए भोजन का रक्त ठीक-ठीक बनना बन्द हो जाता है और शरीर में मल-पदार्थ, रोग-समूह आदि घर करने लगते हैं।

जठराग्नि की उपमा एक घूमते हुए पहिए से दी जा सकती है। अगर वह पहिया धीरे-धीरे घूमता है तो उस पर आप चिपट सकते हैं और हर एक वस्तु उसके लग सकती है, मगर वह तेज खूब जोर से घूमता हो तो कोई चीज उस पर ठहर नहीं सकती।

इसी प्रकार अग्नि मंद होते ही मल-पदार्थ रोग-समूह शरीर में घर कर लेते हैं मगर अग्नि खूब तेज होने पर शरीर का हर एक भाग अपना काम खूब तेजी से करता है। मल-मूत्र खुलकर होता है, पसीना खूब आता है, नाड़ी व हृदय की धड़कन जोरदार होती है और शरीर में से मल-पदार्थ रोग-समूह बलपूर्वक बाहर फेंके जाते हैं और शरीर नीरोग रहता है।

आरोग्य व रोग परमाणु में मौजूद है

यह याद रखने की बात है कि रोग या स्वास्थ्य बारीक छोटे परमाणुओं में रहते हैं। यद्यपि यह परमाणु बहुत ही सूक्ष्म व छोटे होते हैं परन्तु परमाणु स्वयं एक स्वतन्त्र जीवधारी वस्तु है। वह शरीर में

पैदा होता है, बढ़ता है, खाता-पीता है, मल-पदार्थ बाहर फेंकता है,

कई गुना हो जाता है, बूढ़ा हो जाता है और मर जाता है, ठीक वैसे ही जैसे परमाणुओं का समूह मनुष्य।

अगर परमाणु ठीक नीरोग हैं तो मनुष्य नीरोग स्वस्थ है और अगर परमाणु रोगी व कमजोर हैं तो मनुष्य भी रोगी व कमजोर है। इसलिए चिकित्सा व स्वास्थ्य-रक्षा में हमें इस विषय को भूल न जाना चाहिए।

हर एक परमाणु की जीवन-शक्ति मनुष्य-शरीर की अग्नि मन्द या तीव्र होने पर निर्भर है। अगर मनुष्य मिथ्या आहार-विहार से अग्नि मन्द कर लेता है तो परमाणु भी कमजोर हो जायेंगे। इसीलिए शरीर को नीरोग, दीर्घजीवी, सुन्दर बनाना हो तो स्वाभाविक भोजन, जल-स्नान, मालिश आदि स्वाभाविक उपचारों की शरण लेनी चाहिए।

रक्त व रस का सम्मिश्रण

रक्त का दूषित, मलाच्छादित होना भी रोगों का प्रधान कारण है। शरीर के हर एक भाग को रक्त से ही पोषण मिलता है और रक्त ही मनुष्य का जीवन है, इसलिए मानव-शरीर को पूर्ण नीरोग रखने के लिए रक्त में हर एक पोषक तत्त्व मौजूद रहना जरूरी है और यह सब मनुष्य के भोजन-पान पर निर्भर रहता है। मानव-शरीर में जितने भी रोग आंतरिक विकारों से पैदा होते हैं, उन सबका कारण यह होता है कि रक्त में पोषक तत्त्वों की कमी हो जाती है और दूषित पदार्थ मिल जाते हैं। निःसंदेह अधिकांश रोग खराब प्रकृति विरुद्ध भोजन, नशीले पदार्थ, दवा, विषैले पदार्थों के भक्षण से होते हैं। ऐसे मिथ्या भोजन से प्रथम तो शरीर में विजातीय द्रव्य (मैल) बहुत अधिक मात्रा में भर जाता है। दूसरे शरीर के हर एक भाग को उचित पोषण नहीं मिलता, क्योंकि रक्तसंचार धीमा पड़ जाता है, इसलिए स्वाभाविक चिकित्सा व नैसर्गिक भोजन एक बड़ा भारी कार्य सिद्ध करते

हैं अर्थात् स्वाभाविक भोजन-पान द्वारा शरीर को उचित व पर्याप्त पोषण होकर शरीर की हर एक आवश्यकता की पूर्ति होती है।

विजातीय द्रव्य या विषैले पदार्थों का इकट्ठा होना

शरीर में अनेक प्रकार के मल-पदार्थों व विषैली वस्तुओं का इकट्ठा हो जाना भी रोगों का एक प्रधान कारण है और मंदाग्नि व प्रकृति-विरुद्ध खान-पान व दवा के कारण ही ऐसा संभव होता है। इसके सिवा हमारी खुराक आजकल इतनी खराब हो चली है कि वह हर प्रकार प्रकृति के विरुद्ध होती है। आग से पकी हुई, मिर्च-मसाले मिली हुई, मीठा मिली हुई, कढ़ाही में तली हुई या मशीन आदि से तैयार किये हुए भोजन करके भला मनुष्य समाज कभी सच्चा आरोग्य या दीर्घजीवन प्राप्त कर सकता है?

यह प्रकृति-विरुद्ध पदार्थ पूरी तरह हजम नहीं होते, कुछ न कुछ बिना पचा भाग आंतों व उदर में जमा हुआ करते हैं। और वहां सड़कर रक्त को दूषित करके समस्त शरीर को मैल से भर देते हैं, जिससे सारा नाड़ीजाल व शरीर के भिन्न-भिन्न भाग अपना काम ठीक तौर पर नहीं कर सकते और परिणाम में मनुष्य बीमार होता है और उस मैल को शरीर से बाहर निकालने की कोशिश करता है।

मगर सबसे अधिक दुःख की बात तो यह है कि भोजन आदि से शरीर में जो मैल इकट्ठा हो जाता है, वह तेज औषधियों द्वारा दूर तो हो जाता है, मगर दवाइयों का जहर खासकर अगर वह धातु आदि दवा हो तो यह जहर शरीर से बाहर निकलना महा कठिन हो जाता है और जिस दवा, जड़ी, रसायन आदि को लोग अमृत समझ रहे हैं, वे ही दवाइयां शरीर पर घातक प्रभाव डालती हुई घुन की भांति शरीर खाकर सेवन करने वाले को शीघ्र ही संसार से विदा कर देती हैं, मगर फिर भी लोगों की आंखें इस तरफ से बन्द हैं।

मानसिक विचारों का प्रभाव

शरीर की जीवन-शक्ति पर मन के विचारों का भी बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। भय, क्रोध, चिन्ता आदि से रक्त पर बड़ा भयानक प्रभाव पड़ता है, चिन्ता करके लाखों ने असमय में प्राण गंवा दिए। विरह में हजारों प्राणी सूख कर मर गए। इसी भांति खुशी, शान्ति आदि से शरीर को भारी लाभ पहुंचते हैं। आत्मा शरीर से ऊंची वस्तु है और शरीर पर मन व आत्मा का सदा प्रभुत्त्व रहा है और रहेगा।

इसलिए दीर्घजीवन व आरोग्य की कामना करने वालों को चाहिए कि वे चिंता, भय क्रोध से दूर रहें, सदा प्रसन्नचित्त रहें और रोगियों को धैर्य दिलाते रहें। कभी निराशाजनक शब्द न कहें।

तेज बीमारियों का वर्णन—कारण

रोगों के कारण में एक कारणों यह भी होता है कि माता-पिता से भी बालकों को रोग उत्पन्न हो जाता है, जो माता पिता कुदरत के अटल नियमों का उल्लंघन करते हैं और खास कर रोगों को धातु आदि दवाइयों से शरीर में दबा देते हैं उनकी सन्तान उनके इस अपराध से कष्ट पाती है और उनकी वह सन्तान अपने इन पैतृक रोगों से तब तक मुक्त नहीं हो सकती जब तक पूर्ण रीति से प्राकृतिक उपायों द्वारा शरीर की शुद्धि न कर ले।

छोटे-छोटे नवजात बालकों की आंखें ध्यान से देखिए! अगर उनकी आंखें कमल की तरह नीली हों तो उन्हें निरोग समझिए और अगर उनमें धुंधलापन व दाग-धब्बे नजर आवें तो उस बालक को रोग-ग्रसित समझना चाहिए और यह मानना चाहिए कि माता-पिता के रोग का अंश इस बालक में आ गया है।

जिन बालकों के नेत्रों में ऐसे रोग चिन्ह हों उनकी तत्काल ही प्राकृतिक उपायों से चिकित्सा करनी चाहिए, ताकि रोग बढ़ न सके

अन्यथा ये रोग बढ़कर उनका जीवन दुखी बनावेंगे और उन्हें शीघ्र यमपुरी पहुंचना पड़ेगा। फिर वहां औषधियों से काम नहीं चलेगा, परन्तु आजकल के लोग ऐसा करने को तैयार नहीं हैं। उन लोगों की यह धारणा है कि दवाइयां ईश्वर ने रोगों को मिटाने के लिए बनाई हैं और यह कि दवा के बगैर रोग दूर नहीं हो सकते। इसी विश्वास पर पहले तो वे स्वयं दवा खाकर अपने शरीर का नाश करते हैं, फिर अपनी प्रिय सन्तान को भी उसी अन्धकूप में ढकेलते हैं और उनका जीवन नष्ट कर डालते हैं।

परन्तु मैं दृढ़तापूर्वक कहूंगा कि औषधियां सदा ही हानिकर होती हैं और खासकर जो लोग अपने बालकों को दवा देते हैं वे उनके शत्रु हैं। दवा लेने वाले और न लेने वाले बच्चों के शरीर में उतना ही अन्तर हो जाता है। जितना हंस और कव्वे का अर्थात् दवा लेने वाले बच्चों के शरीर के विकार मैला कचरा शरीर में रहकर उन्हें कुरूप चिड़चिड़े, रोगी और काले बना डालते हैं और जो दवा नहीं लेते केवल प्रकृति के अनुसार चलते हैं, उनके शरीर के विकार प्रकृति निकाल फेंकती है और ऐसे बच्चे अत्यन्त मनोहर नीली आंखों वाले, गौरवर्ण, निरोग व दीर्घजीवी तथा माता के हृदय को आनन्द पहुंचाने वाले होते हैं।

एक बार फिर मेरी प्रार्थना है कि यदि आप देश में मनुष्यों को होनहार, बलवान, दीर्घजीवी, सुन्दर व विद्वान देखना चाहते हैं तो एक बार फिर प्रकृति की ओर लौटिए। दवा, चीर-फाड़, इंजेक्शन के आडंबरों को छोड़ दीजिए; केवल प्रकृति के नियम पालन कीजिए और फिर देश से रोग समूह स्वयं भाग जायेंगे।

क्या रोगों का मूल कारण जन्तु हैं?

आजकल के डाक्टर लोग कहते हैं कि सब रोग जन्तुओं से उत्पन्न होते हैं और औषधि-विज्ञान इसी कल्पना के आधार पर बनाया गया है। सूक्ष्म दर्शक यन्त्रों द्वारा सिद्ध करने की कोशिश की गई है कि रोग जन्तु ही रोगों के मूल कारण हैं और वे जन्तु यन्त्रों द्वारा देख लिए

गए हैं। वे कहते हैं कि जब रोगों के एकमात्र कारण रोग जन्तु हैं तो दवाइयों से उन्हें मार डालना चाहिए और रोग को अच्छा कर लेना चाहिए।

परन्तु जरा सोचिए, यह धारणा कहां तक सत्य है। ज्यों-ज्यों डाक्टरी विद्या फैलती जा रही है, ज्यों-ज्यों रोग जन्तुओं का नाश किया जा रहा है त्यों-त्यों रोग व अकालमृत्यु संख्या बढ़ती जा रही है।

कुदरती चिकित्सा प्रणाली ऐसे कल्पित सिद्धान्तों को नहीं मानती इसमें यह बताया गया है कि रोग जन्तु बीमारी के मूल कारण नहीं हो सकते, क्योंकि ऐसे जन्तु तो पूर्ण नीरोग शरीर में भी पाए जाते हैं; बल्कि सच्चा सिद्धान्त तो यह है कि शरीर में मैल (विजातीय द्रव्य) ही से रोग जन्तु व रोग उत्पन्न होते हैं।

इसलिए हम यह मानते हैं कि शरीर में मैल भर जाने पर रोग जन्तु पैदा होते हैं, बढ़ते हैं और अन्त में मृत्यु का कारण भी बन जाते हैं। दुनिया में जितनी हानि, जितना सर्वनाश रोग जन्तुओं से नहीं हो रहा है उससे अधिक रोग जन्तुओं के मिथ्या भय से हो रहा है, जिनके प्रकृति विरुद्ध इलाज दुनिया में चल रहे हैं। एलोपैथी, होमियोपैथी आयुर्वेद हिकमत वगैरा सब ही कल्पना से बने हैं। कभी इनसे मनुष्य जाति का भला नहीं हो सकता, क्योंकि इनसे शरीर शुद्ध नहीं होता; बल्कि अधिक गंदा बनाया जाता है और इसीलिए दुनिया में दवाइयों से क्षय, दमा, कोढ़, नासूर, पागलपन आदि दीर्घ रोग बढ़ते जा रहे हैं।

उपवास, फलाहार आदि से अपने शरीर को अन्दर से स्वच्छ व निर्मल रखिए, फिर आपको डरने की जरूरत नहीं है। वास्तव में जन्तु तो हवा, पानी व भोजन के साथ सदा ही शरीर में जाते रहते हैं और हमारे शरीर में मौजूद भी हैं और आंतों में भी मौजूद रहकर पाचन में सहायक होते हैं। इसलिए यह बुद्धिमानी नहीं है कि ज तुओं को मार डाला जाय; बल्कि शरीर को निर्मल व स्वच्छ बनाना उचित है। यह कार्य किसी दवा या चीर-फाड़ से सम्भव नहीं है।

कुदरती चिकित्सा प्रणाली की महिमा देखिए। वह शरीर की समस्त शक्तियों को बलवान बनाती है और बिना किसी किस्म की हानि पहुंचाए शरीर के हर एक भाग, हर एक नाड़ी को शुद्ध करके नवीन रक्त का संचार करती है। इस तरह वह हर एक उपचार, जो शरीर को शुद्ध करने व पुनः नवीन बनाने में सहायता करता है, स्वाभाविक है।

इसीलिए औषधि-विज्ञान के सारे प्रयोग दवा, चीर-फाड़, टीका, इंजेक्शन आदि व्यर्थ व हानिकर हैं, क्योंकि किसी गन्दे घर को साफ-सुथरा रखने के लिए उसे रोज बुहारी, बुर्श, पानी, साबुन, धूप, हवा से खूब साफ-सुथरा शुद्ध करना चाहिए, अगर उसमें ऐसा न करके कीड़े मारने वाली दवा डाली जाय तो सिवाय गंदगी बढ़ने के और क्या परिणाम हो सकता है। इसी प्रकार कुदरत के विरुद्ध, जीवन विरुद्ध, खान-पान गंदी हवा से मैले हुए हमारे शरीर को कुदरती निर्दोष उपायों से निर्मल बनाने के बजाय जहरीली, गंदी दवाइयां देने से सिवाय हानि के लाभ कभी नहीं हो सकता।

एक मशहूर वैज्ञानिक ने लिखा है कि उसने एक स्वस्थ २ माह के बच्चे के मुंह में वे सभी रोग जंतु पाये थे जिनका जिकर डाक्टर लोग किया करते हैं। बाद में फ्रांस की सरकार के एक बड़े वैज्ञानिक ने कहा था कि ९५ फीसदी स्कूल के बच्चों के शरीर में उसे क्षय के कीटाणु मिले थे। डाक्टर विलियम ओसलर एक बहुत बड़े मशहूर डाक्टर ने कहा है कि निमोनियां आदि रोगों के कीड़े स्वस्थ पुरुषों के शरीर में भी देखे गए हैं।

वास्तव में रोग मल-पदार्थों से उत्पन्न होते हैं। रोग जन्तु बिलकुल रोग का कारण नहीं हो सकते, यह बात इससे भी सिद्ध होती है कि आज सदियों से मनुष्य जाति प्रकृति विरुद्ध जीवन बिता रही है और साथ ही अनेक प्रकार की हानिकर व जहरीली दवाइयां खा रही है, जिससे उनके शरीर बड़े विकृत, सड़े, गन्दे, व रोगी हो गए हैं और रोग

समूह उनके शरीर में मौजूद हैं फिर भी ठंड लगने पर सबको जुकाम नहीं होता, किसी-किसी को होता है। इससे भी मेरे कथन की पुष्टि होती है।

प्लेग, चेचक, हैजा, इन्लुफएंजा, ज्वर आदि को लोग संक्रामक कहते हैं, पर यह धारणा भी निर्मूल है। इन महामारियों के शिकार सिर्फ वे ही लोग होते हैं, जिनके शरीर मलाच्छालित व गन्दे हैं। सभी रोग ग्रसित नहीं होते। अगर रोग जन्तुओं से ये रोग उत्पन्न होते तो सौ फीसदी लोग ही इनके शिकार होते।

रोग-जन्तु मल पदार्थों से उत्पन्न होते हैं

हम पहले कह चुके हैं कि जिन लोगों की जठराग्नि मंद हो जाती है, उनके शरीर में अनेक रोग जन्तु व रोग समूह व मल पदार्थ घर कर लेते हैं। जिस तरह हर एक खेती को फलने-फूलने के लिए उपयुक्त भूमि की आवश्यकता होती है उसी तरह हर एक मनुष्य के शरीर में रोग-जन्तुओं के बढ़ने व जमा होने के लिए एक तरह के मल-पदार्थों का होना जरूरी है। मोतीभारे के रोग जन्तु उन्हीं प्राणियों के शरीर में बढ़ते हैं जिनकी अंतड़ियों में एक खास तरह का जहर (मैल) होता है। निमोनियां के रोग जन्तु उन्हीं के शरीर में वृद्धि पाते हैं जिनके फेफड़ों से मैल खूब निकलता रहता है। एक बड़े वैज्ञानिक ने भी सिद्ध किया है कि वैक्टीरिया (रोगजन्तु) स्वयं रोग पैदा नहीं कर सकते और उसने यह बात सिद्ध कर दिखाई थी। उसने सबके सामने हैजे के लाखों रोग जन्तुओं को खा डाला और उससे जरा देर उबकाई आने के सिवा उसका कुछ भी न बिगड़ा था।

कुछ वर्षों पहले डाक्टर राडेरमंड ने एक बड़ी करामात दिखाई थी कि उसने अपने शरीर को कई जगह गोदकर, खुर्चकर एक चेचक के रोगी के चेचक का रस (पीप) उनमें लगा लिया और उससे कुछ भी नहीं बिगड़ा। उसने डाक्टरों को यह दिखा दिया कि तन्दुरुस्त शरीर पर रोग जन्तु असर नहीं करते और उसे छूत की बीमारी भी

नहीं लग सकती। एक घर में, जहां दस बच्चों के चेचक आदि रोग होते हैं, वहां उनके मां-बाप रात-दिन ऐसे बच्चों को गोद में रखते हैं फिर भी उन्हें कोई रोग नहीं होता। मूल लेखक ने स्वयं व उसके दूसरे साथियों ने समय-समय पर सैकड़ों छूत के रोगियों की सेवा शुश्रूषा की है, मालिश की है परन्तु कभी कोई हानिकर परिणाम नहीं निकला।

वास्तव में जिनके शरीर निर्मल, स्वच्छ व निरोग हैं, जिनकी जठराग्नि प्रबल है, रक्त शुद्ध है, जिनके मल वाहक अंग अपना काम ठीक ठीक कर रहे हैं और सबसे अधिक जिनके हृदय भय रहित हैं उन्हें कोई रोग जन्तु या छूत-छात कभी नहीं हानि पहुंचायेंगे।

अगर शरीर स्वच्छ व निर्मल है तो रोग कभी न बढ़ेंगे और अगर शरीर मल-पदार्थों से भरा है तो अवश्य रोग व रोग जन्तुओं का आक्रमण होगा।

चिकित्सा के नियमोपनियम

इस अध्याय में हम प्रकृति के चिकित्सा सम्बन्धी नियमों का वर्णन करेंगे। पिछले पाठों के पढ़ने से आपको मालूम हो गया होगा कि सूजन और बुखार आरम्भ के रोग नहीं हैं; बल्कि रोग परिणाम हैं। शरीर में उस समय तक कभी सूजन या सूजन लिये हुए कोई रोग नहीं हो सकता जब तक कि कोई जहर, जो शरीर के लिए हानिकर हो, शरीर में मौजूद न हो जिसे कि प्रकृति इसके सूजन के द्वारा बाहर निकालने का यत्न कर रही है।

वास्तव में हर एक तेज बीमारी केवल शरीर शुद्धि का एक प्रयत्न है और यह शरीर के लिए अत्यन्त हितकारी होता है न कि घातक। अलबत्ता प्रकृति विरुद्ध उपचार दवा, इंजेक्शन आदि से ही यह रोग प्राणघातक बन जाते हैं अन्यथा हरगिज नहीं।

प्राकृतिक चिकित्सा यह बताती है कि सभी नए रोग साधारण जुकाम से लेकर लाल बुखार, मोतीझारा, निमोनिया, चेचक, हैजा

आदि इस बात की सूचना देते हैं कि शरीर में कोई खराबी है और कुदरत उसे मिटा रही है या कि शरीर में कई हानिकर जहरीली चीजें भर गई हैं उन्हें बल पूर्वक बाहर फेंकने की कोशिश कर रही है। इसीलिए यह सिद्ध हुआ कि जो लोग स्वाभाविक जीवन बिताते हैं, जिनके शरीर में मल-पदार्थ नहीं हैं उन्हें कोई रोग नहीं हो सकता। इस पर लोग यह सवाल कर बैठते हैं कि—अगर रोग शरीर की सफाई के लिए हैं तो इतने लोग इससे मरते क्यों हैं ? इसका जवाब यह है कि तेज बीमारियों में मृत्यु होने के कई कारण होते हैं—प्रथम यह है कि जठराग्नि बहुत अधिक मन्द हो गई हो या शरीर में मात्रा से अधिक मल पदार्थ भर गए हों या सबसे अधिक मृत्यु । ९५ फीसदी मृत्यु संख्या का कारण यह होता है कि इलाज झूठे, मिथ्या, प्रकृति विरुद्ध किए जाते हैं। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि तेज बीमारियां प्रकृति का एक रोगनाशक व आरोग्यदायक प्रयत्न ही है जिसके द्वारा वह पुरानी खराबियों को दूर करके शरीर को नवीन, शुद्ध व फिर से काम करने लायक बनाती है ।

मगर हमारे सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात तो यह है कि न तो जन साधारण ही इस रहस्य को समझने का यत्न करते हैं और न उनके आरोग्य के भाग्यविधाता वैद्य, हकीम, डाक्टर ही उन्हें यह समझाते हैं। लोग एक अंधविश्वास को धारण किये हुए हैं कि 'पूर्वजन्म कृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते' (पिछले जन्म का किया हुआ पाप इस जन्म में रोग रूप होकर हमें सताता है) कितना घोर अन्धविश्वास है ।

तेज बीमारियों के बजाय मित्र के शत्रु व घातक समझा जाकर उन्हें दबाने की कोशिश की जाती है और परिणम क्या होता है। अकाल मौत या उससे भी भयानक कोई दीर्घ रोग ।

परन्तु कुदरती चिकित्सा सच्चे सिद्धान्त सिखाती है। जहां आयुर्वेद, डाक्टरी बुखार आदि रोगों को हानिकारक व प्राणघातक मानते हैं और उन्हें दवा या चाकू से दबाते हैं या नष्ट करते हैं वहां प्रकृतिवादी इन रोगों को शरीर के लिए अत्यन्त हितकारी व

आवश्यक समझकर इनका स्वागत करते हैं। वे लोग साधारण, सरल स्वाभाविक उपचारों द्वारा हर प्रकार को सूजन व बुखारों को समान अवस्था में रखते हैं। वे इन्हें कभी जहरोली दवाइयों, जड़ी-बूटियों, काढ़ों या चीर-फाड़ से दबाने या रोक देने की कोशिश नहीं करते।

खाज-खुजली, फोड़े-फुन्सी, नजला, जुकाम, खांसी आदि सभी उपद्रव यह सूचित करते हैं कि शरीर में स्वास्थ्य के लिए हानिकारक कोई वस्तु जमा हो गई है और प्रकृति इनके द्वारा उसे दूर या नष्ट करने का यत्न कर रही है।

जब इतना समझ लिया तो फिर इस बात की क्या जरूरत है कि आप फोड़े-फुन्सी के चीरा दिलवावें या जहरीली दवा खाकर बुखार को दबाने की कोशिश करें और इससे लाभ की भी क्या आशा की जाय ?

इन बातों से बड़ी हानि होती है। प्रकृति के रोग नाशक कारणों में भारी बाधा पड़ती है। जो मल-पदार्थ या जहर इनके द्वारा निकाला जाने वाला होता है वह वापस शरीर में धकेल दिया जाता है। इतना ही नहीं उसके साथ इससे भयानक दवा रूपी जहर भी शरीर में इकट्ठा होता है, फिर अगर हमारी इन मूर्ख मिथ्या चिकित्सा प्रणालियों द्वारा लोग बेमौत मर रहे हैं या वे और भी अधिक भयानक बीमारियों में फंसकर कष्ट उठा रहे हैं तो इसमें दोष किसका है ? समझ लीजिए।

नोट—(१) फोड़े-फुन्सी आदि व रसौली का अचूक इलाज मिट्टी, पानी, फलों से अवश्य हो सकता है। उसे न करके अगर लोग चीर-फाड़ का भयानक इलाज कराते हैं और उसमें बेमौत मरते हैं तो इसमें अपराध किसका मानेंगे।

(२) भयानक से भयानक बुखार, मोतीझारा, निमोनिया आदि केवल विधिपूर्वक हवा-स्नान, उपवास, फलाहार, विश्राम व स्नेह से

आवश्यक शतप्रतिशत दूर हो सकते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं परन्तु ऐसा न करके जगत की देखा-देखी अन्धे होकर अगर रोगी को हवा से बन्द करके, कपड़ों से बुरी तरह लादकर बजाय ठंडे पानी के औटाया पानी पिलाकर अनेक जहरीले काढ़े, कुनाइन, मिक्सचर देकर झूठा इलाज किया जाय और फिर उसमें रोगी मर जाय या क्षय आदि किसी दीर्घ भयानक रोग में फंस जाय तो इसमें दोष किसका है ? इसके लिए दोषी ईश्वर है या हम ?

क्या आयुर्वेद डाक्टरी (एलोपैथी) हिकमत सही प्रणालियां हैं ?

आज सभी लोग यह मान रहे हैं कि वैद्यक, डाक्टरी, हिकमत बिलकुल सत्य हैं और यह मनुष्म जाति की भलाई के लिए हैं, परन्तु



वास्तव में देखा जाय तो ऐसा समझना एक भयानक व घातक भूल है। और इस भूल से लाखों बे मौत मारे जा रहे हैं। वास्तव में वही चिकित्सा प्रणाली सफल समझी जायगी जिसमें रोगों का निदान सही तौर पर किया जाय। यदि निदान गलत है तो इलाज भी जरूर गलत होगा। जब आयुर्वेद यह मानते हैं कि सर्वेषां ऐव रोगाणां निदानं

कुपिता मला:' और डाक्टर लोग यह मानते हैं कि रोग जन्तुओं से रोग पैदा होते हैं। ऐसी हालत में इनके इलाज के तरीके स्वयं मिथ्या सिद्ध हो जाते हैं।

हम यह भली-भांति देख चुके हैं कि तेज बीमारियां शरीर शुद्धि के प्रयत्न मात्र होती हैं। इन सब रोगों में निम्न लक्षण होते हैं—

जीवन शक्ति का तेज हो जाना, बुखार या सूजन उत्पन्न हो जाना, दर्द होना, सुर्खी या ललाई, गरमी अधिक बढ़ जाना, नाड़ी का तेज चलना, जुकाम टपकना, फोड़े-फुन्सी होना, कफ-खांसी आदि।

डाक्टरी विद्या की धारणा है कि यह तीव्र कष्ट स्वयं हानिकर व प्राणनाशक होते हैं इसलिए वे लोग अपनी दवाइयों से इन लक्षणों को दबाते हैं और वैद्यराज भी जड़ी, क्वाथ, धातु आदि से रोग दबाने के यत्न करते हैं, परन्तु ध्यान रहे सर्जन के चाकू (चीर-फाड़ के औजार) और जहरीली दवाइयों से अधिक हानिकारक व प्राणघातक वस्तु शरीर के लिए और कोई भी नहीं है। फिर इनसे क्या इलाज होगा ?

शरीर में उत्पन्न होने वाली सूजन स्वयं कोई रोग नहीं होती; बल्कि वह केवल मल-पदार्थों को शरीर से दूर करने के लिए एक स्थान है एक मार्ग है। जब स्वाभाविक उपचारों द्वारा मल-पदार्थ शरीर से निकाले जाकर शरीर निर्मल हो जायगा तो सूजन स्वयं मिट जायेगी—चाहे उसका रूप कुछ भी हो, फोड़ा हो या जुकाम—कुछ भी हो।

कुछ नवीन नियम

क्रिया व प्रतिक्रिया—सृष्टि के हर एक कार्य में क्रिया व प्रतिक्रिया का सिद्धान्त लागू होता है। रोगों के विषय में भी यही सिद्धान्त है। तीव्र रोग वास्तव में एक ऐसी क्रिया है जिसकी प्रतिक्रिया आरोग्य है। इसी प्रकार हर एक उपचार के दो परिणाम होते हैं : एक प्रत्यक्ष या प्रगट और दूसरा, उससे पैदा होने वाले असर।

उदाहरणार्थ ठण्डे पानी के शरीर से स्पर्श होने के दो परिणाम होते हैं: पहला तत्काल प्रभाव तो यह होता है कि वह रक्त को शरीर के अन्दर धकेलता है यह हुई क्रिया। अब उसकी प्रतिक्रिया व बाद का असर यह है कि अधिक मात्रा में रक्त बाहर की ओर आकर शरीर को गरम कर देता है और रक्त संचार उत्तम रीति से होता है।

इसी प्रकार गरम पानी के स्नान का पहला असर तो यह होता है कि रक्त बाहर खाल पर आकर शरीर गरम हो जाता है, परन्तु बाद का असर यह होता है कि रक्त शरीर के अन्दर धकेला जाकर खाल रक्त रहित व ठण्डी हो जाती है।

रसायन, टानिक आदि मादक दवाइयां शरीर में जाकर जीवन-शक्ति के संचित भण्डार को भस्म कर डालती हैं और बड़ा घातक प्रभाव डालती हैं। निद्रा व विश्राम का पहला असर कमजोरी, सुस्ती और आलस्य होता है परन्तु बाद में नवीन बल व शक्ति प्राप्त होती है।

इसी प्रकार हर एक दवा का भी दोहरा असर होता है। हर एक तेज धातु आदि दवाइयों का पहला क्षणिक जोरदार असर शरीर पर यह होता है कि वह शरीर इन विजातीय वस्तुओं को बलपूर्वक बाहर फेंकने की कोशिश करता है। बाद का और स्थाई असर इन दवाइयों का शरीर पर यह होता है कि ये विष शरीर में स्थाई रूप से रह जाते हैं और घुन की तरह शरीर को अन्दर से नष्ट करते रहते हैं, मगर हामरे दुर्भाग्य की बात तो यह है कि इतना सब कुछ होते हुए भी एलोपैथी के हिमायती डाक्टर व आयुर्वेद के अन्ध भक्त वैद्य लोग चीर-फाड़ व दवाइयों के प्रत्यक्ष व तात्कालिक प्रभाव को ही देखते हैं परन्तु बाद के व स्थाई घातक परिणामों को बिल्कुल भूल जाते हैं। वे केवल यह करते हैं कि दवा देकर रोग के लक्षणों को दबा देते हैं इसी में वे अपनी सफलता समझते हैं। इसलिए क्रिया

व प्रतिक्रिया के सिद्धान्त के अनुसार इन दवाइयों का असर भावी रोग की दशा ही होता है। आये दिन हम देखते हैं कि दस्तावर दवाइयों का पहला असर यह होता है कि दस्त लगते हैं पर बाद का असर यह होता है कि पहले से अधिक कब्ज हो जाती है।

धातु, पौष्टिक टानिक, मदन मस्त व वीर्य पुष्ट करने वाली दवाइयां बड़े चाव से खिलाई जाती हैं, जिससे क्षणिक बलवीर्य प्राप्त होकर कुछ दिन आनन्द से गुजरते हैं परन्तु इसका भावी परिणाम क्या होता है। पहले से अधिक कमजोरी, थकान आदि। इतना ही नहीं अधिक काल मादक व पौष्टिक वस्तुएं (प्रकृति विरुद्ध) सेवन करने से शरीर जीर्ण व मंदाग्नि होकर मनुष्य का शारीरिक व नैतिक पतन हो जाता है।

सिर दर्द की दवाइयां, बाम पाउडर, दर्दनाशक वस्तुएं, अर्क सूंघने की दवाइयों से क्षणिक आराम अवश्य हो सकता है, परन्तु स्थाई लाभ कभी नहीं होता; बल्कि बाद में और भी अधिक वेग से कष्ट होते हैं। अगर बराबर लगातार इन वस्तुओं का सेवन किया जाए तो हृदय रोग व लकवा आदि रोग होकर मृत्यु के मुंह में जाना पड़ता है।

सर्दी-जुकाम का इलाज

कुनेन, कोलतार, काढ़े आदि के परिणामों को सोचिए। शरीर से विष (मैल) नाक व मुंह होकर बाहर फेंका जा रहा है और आप दवा लेकर वापस उस जहर को फेफड़ों में धकेल रहे हैं जिसके परिणाम में क्या होगा? निमोनियां, दमा, स्थाई जुकाम और क्षय, जिनका इलाज महा कठिन हो जाता है। पारा आदि व आइडीन वगैरह जाहिरा तौर से रोग के लक्षणादि सूजाक वगैरह को दबा देते हैं, परन्तु बाद में उन्माद, लकवा आदि भयानक रोग आ घेरते हैं जिनका अन्त मृत्यु होता है।

इस विषय का पूर्ण वर्णन हमारी पुस्तक 'औषधि सेवन की हानियां'

में पढ़िए जो शीघ्र छपेगी। उसमें विस्तार पूर्वक आयुर्वेदिक, यूनानी, एलोपैथिक दवाइयों से होने वाली असंख्य व अपार हानियों का वर्णन किया जावेगा।

सारांश यह कि हर एक दवा (अथवा प्राणघातक विष) का भीषण परिणाम होता है और उसके परिणाम में भयानक दीर्घ रोग आ घरते हैं जिनका इलाज धातु आदि तेज दवाइयों व इन्जेक्शन चीर-फाड़ आदि से किया जाता है और उसका इलाज बेचारे गरीब रोगी पागलखाने भेजे जाते हैं या श्मशान भूमि में सदा के लिए घर वालों को रोता छोड़कर जाते हैं।

रोगों को दबाना चाहिए या जड़ से निकाल देना चाहिए ?

शायद, डाक्टर, वैद्य महोदय मेरे इस कथन को झूठ साबित करने की कोशिश करेंगे कि तीव्र नवीन रोगों का प्रकृति विरुद्ध दवा आदि का इलाज शामक है (रोगों को दबाना) शोधक (जड़ से रोग हटाने वाला) नहीं है। वे यह दलील देंगे कि उनके इलाज से रोग पदार्थ व मल शरीर से बाहर फेंके जाते हैं।

लेकिन 'हाथ कंगन को आरसी क्या' परीक्षा से सच-झूठ का पता चल जाता है। क्या खाज, खुजली, दाद, फोड़े-फुन्सी आदि को दबाने के लिए गंधक, पारा, रांग आदि भयानक अनेक तरह की जहरीली दवाइयां डाक्टर, वैद्य लोग अपने रोगियों को नहीं खिलाते। क्या वे इस बात को भी सोचने का कष्ट करते हैं कि प्रकृति इन रोग निवारक कष्टों द्वारा शरीर में इकट्ठे हुए मैल, (विष) रोग पदार्थों को बाहर निकाल कर शरीर को शुद्ध करने का यत्न कर रही है।

रोजाना समाचार पत्रों में हम हजारों विज्ञापन दवाइयों के देखते हैं जिनमें सर्दी, जुकाम, खांसी बुखार की गारन्टी लिखी होती है। इन सबमें तेज नशे की चीज या धातु आदि कीभस्में मिली हुई होती

हैं। बेशक यह दवाइयां अपना जौहर व कमाल दिखाती हैं। सर्दी, जुकाम, बुखार फौरन अच्छे हो जाते हैं परन्तु परिणाम में दमा, क्षय, कोढ़ आदि भयानक रोग उत्पन्न करके रोगियों को सदा के लिए श्मशान भूमि में सुला देते हैं।

इसी प्रकार चीर-फाड़ का रिवाज बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा है। लाखों-करोड़ों रुपया आपरेशन के औजारों पर, अस्पतालों व डाक्टरों पर खर्च किया जा रहा है। सूजी हुई आंत के किसी भाग को या टांसिल (गिल्टी) को चीर-फाड़ के जरिए निकालकर फेंक दिया जाता है और कहा जाता है कि बहुत बढ़िया इलाज हो गया। प्राकृतिक चिकित्सा के इस झंझट में कौन पड़े कि फलाहार, उपवास, मिट्टी की पट्टी के जरिये धीरे-धीरे शरीर को शुद्ध करके रोग दूर किये जावें परन्तु चीर-फाड़ का इलाज रोग को जड़ से दूर नहीं कर सकता है और न रोग की उत्पत्ति को ही हटा सकता है।

इसलिए ऐसे चीर-फाड़ का परिणाम यह होता है कि रोग दूसरे स्थान में फैलते हैं, दूसरे अंगों को कमजोर व रोगी बनाते हैं और हृदय को कमजोर करके स्वास्थ्य को सदा के लिए बिगाड़ देते हैं।

१५ वर्ष के लगातार चीर-फाड़ के निज के अनुभव से व दूसरे डाक्टरों, वैद्यों, हकीम व प्राकृतिक चिकित्सकों के कथन से इस बात की पूर्ण रूप से पुष्टि हो चुकी है कि बड़े आपरेशन के बाद, जो कि पेट, सीने व गरदन आदि में किया गया हो, औसतन रोगी १० वर्ष से अधिक नहीं जीते देखे गए। इतना ही नहीं बड़े-छोटे सभी आपरेशन के बाद सदा ही रोगी का स्वास्थ्य पहले से बहुत गिर जाता है।

अब मैं पाठकों की सेवा में कुछ ऐसी बातें प्रकट करूंगा जिसको पढ़कर आजकल के झूठे इलाजों की निःसारता प्रगट हो जाएगी।

अगर किसी को पेचिश, आंव या खून के दस्त हो जाएं तो डाक्टर, वैद्य लोग उस बीमार को अफीम का सत व अन्य दवा देकर दस्त बन्द कर देते हैं और अपनी सफलता पर प्रसन्न होते हैं, पर उन्हें

यह मालूम नहीं है कि ऐसा करके शरीर की उल्टी हानि पहुंचा रहे हैं। इन बार-बार दस्त बन्द करने की दवाइयों से शीघ्र ही आंतों की शक्ति क्षीण हो जाती है और भयानक चिरस्थाई मल बद्ध (कब्ज) हो जाता है जिसका अच्छा होना बड़ा कठिन होता है।

सूजाक व गरमी के रोगों में पीप बन्द करने के लिए और गरमी की फुंसियां दबाने के लिए वैद्य, डाक्टर अनेक धातु दवाइयां, इंजेक्शन, पारा आदि विषैली वस्तुएं देते हैं जिससे पीप, मवाद, फुन्सियों को आराम होना समझ लिया जाता है परन्तु परिणाम यह होता है कि प्रकृति द्वारा बाहर निकाले जाने वाले यह भयानक विष शरीर में वापस धकेले जाकर अनेक उपद्रव कोढ़, दाद, गठिया आदि भयानक रोग उत्पन्न करके रोगियों का जीवन दुःखी बना देते हैं।

सब प्रकार के बुखार, मलेरिया, मोतीझारा, निमोनिया मियादी आदि को दबाने के लिए वैद्य, डाक्टर, हकीम लोग अपने रोगियों को काढ़े, कुनेन, क्वाथ, मिक्सचर आदि दवाइयां देकर रोग दबा देते हैं। वैदिक व डाक्टरी ग्रन्थों में लिखा है और डाक्टर, वैद्य भी कहते हैं कि यह दवाइयां बुखार को तोड़ देती हैं ज्वर नष्ट कर डालती हैं पर वे यह नहीं सोचते कि वे सफेद व लाल रक्त के परमाणुओं को नष्ट करके हृदय को गति मंद कर देती हैं और सभी रोग निवारक यत्नों को दबा देती हैं।

बुखारों में दवा देने से जो भीषण परिणाम होते हैं उनका वर्णन लेखक की शक्ति के बाहर है। लाखों रोगी तो बुखार में ही सदा के लिए संसार से बिदा ले लेते हैं और अगर भाग्य से बच गए तो क्षय, दमा, कोढ़, मन्दाग्नि आदि भयानक रोगों के शिकार होकर धीरे-धीरे मन्द गति से कब्र या श्मशान की ओर बढ़ते जाते हैं जिनकी संख्या लाखों से ऊपर की है।

नींद का न आना, दर्द, पीड़ा, घबराहट आदि विकारों के लिए भी अफीम, आसव, टानिक दिये जाते हैं। यह हरएक दवा प्रत्यक्ष

धीमे जहर होते हैं जिससे नाड़ी व मस्तिष्क का सत्यानाश हो जाता है और शीघ्र ही पागलपन, हृदय रोग, रक्त विकार आदि घेर लेते हैं।

इसी प्रकार प्रदर रोग को दबाया जाता है जिससे पेट दर्द, बांझपन आदि अनेक रोग होते हैं। लेखक ने आंखों देखे ऐसे हजारों हीन भाग्य रोगियों का शोचनीय अन्त देखा है जिन्होंने एक न एक तेज बीमारी को अच्छा करने के लिए दवा खाई और फिर परिणाम यह हुआ कि वह किसी बड़े भयानक रोग में फंसकर शीघ्र मर गए।

खासकर क्षय, दमा आदि रोग तो संसार में बिल्कुल ही न रहें—अगर सभी बीमारियों, बुखार आदि में दवा का प्रयोग आमतौर पर बिल्कुल बन्द कर दिया जाए। क्षय, दमा आदि के रोगियों से जांच करने पर पता चला कि उन सभी ने पहले कोई रोग दबाने के लिए दवा खाई उसी के बाद ये रोग हो गए।

मगर आज किसकी हिम्मत है कि डाक्टर, वैद्यों या दवा-इलाज की टीका टिप्पणी करें। सभी जनता व सरकार इसके सामने सिर झुका रहे हैं। आज ऐसे डाक्टर, वैद्यों की दुकानें खूब चल रही हैं जो भावी दुष्परिणामों की अवहेलना करके तेज से तेज साक्षात् विष देकर तत्काल रोगों को दबा देते हैं और रोगों के लक्षण दबाकर रोगी को क्षणिक शांति पहुंचा देते हैं परन्तु ऐसा इलाज धोखा है और परिणाम इनका बड़ा भयंकर होता है।

बालों का गिरना, गंजापन, सिर के दाद आदि इसलिए हो जाते हैं कि खोपड़ी से मल-पदार्थ निकल रहे हैं, इसलिए इन विकारों को मिटाने के लिए दवा देकर मल-पदार्थों को वापस खोपड़ी में धकेलना ठीक नहीं है, जैसा कि आम डाक्टर व वैद्य करते हैं; बल्कि चाहिए यह कि फलाहार, उपवास आदि द्वारा शरीर की शुद्धि करके आगे शरीर में मल-पदार्थों को बढ़ने न देना चाहिए और प्राकृतिक उपायों द्वारा शरीर की शुद्धि करनी चाहिए।

मगर इन बातों की परवाह किसे है। इन खोपड़ी के इलाजों में डाक्टर व वैद्य लोग ग्लिसरीन व जहरीले मलहम, टानिक व हानिकर लेप सिर में लगवाते हैं, जिससे सिर दर्द, धुंधलापन, स्मरणशक्ति का नाश, बहरापन, खराब दृष्टि, पागलपन आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

सिर में जूं, लीख आदि छोटे जन्तुओं का पड़ना यह जाहिर करता है कि खोपड़ी मैल से भरी हुई है, जिसका कुछ जहरीला भाग ऊपर की सतह पर बालों की जड़ में आ गया है और इससे इन जन्तुओं को खुराक मिलती है, साथ ही यह आश्चर्य होगा कि जब खोपड़ी साफ विकार-रहित हो जाती है तब यह जुएं आदि गायब हो जाती हैं।

बच्चों के रोग दबाने के परिणाम

आजकल बेचारे छोटे-छोटे बालकों पर दवा के प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में उनके रोग दबाने के लिए किए जा रहे हैं। उदाहरणार्थ फोड़े-फुन्सी आदि को अगर मलहमों से, गरम पानी से, मलाइयों व लेपों से दबाया जाता है तो वे आगे जाकर रसौली, कोढ़ या क्षय का रूप धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार चेचक, लाल व हरा बुखार, खांसी, दस्त आदि रोगों का इलाज स्वाभाविक ढंग से किया जाय तो उनसे बड़ा लाभ होगा। ऐसे प्राकृतिक उपचारों से बच्चों के शरीर विकार व मल रहित हो जायेंगे और माता-पिता से या दवा के जरिए जो जहरीले पदार्थ उनके शरीर में इकट्ठे हो गए हैं वे बाहर निकलकर उनका स्वास्थ्य बड़ा ही अच्छा हो जाएगा, लेकिन खेद आज इससे विपरीत हो रहा है। आज नन्हें-नन्हें अबोध बालकों को अज्ञान माता-पिता उनकी इच्छा के विरुद्ध जबरदस्ती दवा रूपी जहर पिलाते हैं और परिणाम यह होता है कि बजाय अच्छे होने के बालक सदा के लिए रोगी हो जाता है।

इतना ही नहीं उनके मल शरीरों में गई हुई दवाइयां, जड़ी-बूटियां आदि जहर सदा के लिए घर कर लेते हैं और शरीर के मुख्य

भागों व नाड़ी-जाल को नष्ट करते हुए क्षय, कब्ज, बदगोश्त आदि रोग कर देते हैं। मगर याद रहे जहां तेज बीमारियों में कोई दवा नहीं दी जाती; बल्कि स्वाभाविक उपचार, फलाहार, उपवास, जल-मिट्टी, हवा, धूप आदि काम में लिए जाते हैं, वहां कोई भी रोग उत्पन्न नहीं होता और ऐसे प्राकृतिक इलाज से रोगी इतने स्वच्छ व निर्मल हो जाते हैं जैसे कि कमल का फूल।

दवा खाकर आज लाखों बहरे, अन्धे, हृदय व गुर्दे के रोग से ग्रसित, पागल, लकवा वाले, कोढ़ी होकर औषधि-विज्ञान को श्राप दे रहे हैं।

मरकरी दवा के जरिए संसार में जो भयानक शोक, दुःख उत्पन्न हो रहे हैं, उनके यह कुछ अल्प से उदाहरण दिये गए हैं। वास्तव में दवा रूपी राक्षस के मारे हुए प्राणियों की व दवा खाकर दीर्घ-रोगों में ग्रसित होकर दुःख पाने वालों की संख्या कल्पना से भी बाहर है। फिर भी हमारे धनी लोग रोजाना धर्मार्थ अस्पताल व औषधालय खुलवा रहे हैं और यह समझे हुए हैं कि वे संसार का बड़ा उपकार कर रहे हैं।

क्षय, दमा, कुष्ट, लकवा आदि दीर्घ-रोगों का कारण औषधि सेवन है !

यदि आज लोग अधिक स्वाभाविक जीवन बिताने लग जायें तो रोग अधिकांश उत्पन्न होने से ही रह जाएं। वास्तव में हर एक रोग का मूल कारण तो प्रकृति के नियमों को तोड़ना ही है। आज सारा संसार सभ्य और शिक्षित बना हुआ है और रहन-सहन को भी बदल लिया है। मांस-मदिरा का सेवन, तेज मसाले व तेल के पदार्थ, चाय, काफी, अधिक परिश्रम, रात का जागना, चिन्ता, भय, अधिक मैथुन, तंग व कसे हुए वस्त्र पहनना, ऊंची एड़ी के या भारी तंग जूतों का धारण करना, तंबाखू, शहरों की गंदी-सड़ी हवा, व्यायाम न

करना, स्त्री-पुरुषों का परस्पर प्रेम न होते हुए भी उनका विवाह करना, पौष्टिक-भोजन, दूध-दही, घी, फल, मेवा आदि का न मिलना आदि अनेक कारणों से जाति और वंश का दिन-दिन शारीरिक व मानसिक पतन होता जा रहा है।

एक अंग्रेज डाक्टर ने जंगली जातियों के रहन-सहन को देखकर लिखा है कि ये लोग अधिकांश प्रकृति के अनुसार जीवन बिताते हैं। इनमें कभी हृदय-रोग, पागलपन, लकवा, क्षय, दमा, मुटापा आदि भयानक रोग नहीं पाये जाते और इनकी स्त्रियां बिना कष्ट के सुख से बच्चे पैदा कर लेती हैं।

रोगी को खासकर दीर्घ-रोगों की वृद्धि का प्रधान कारण यह है कि नई बीमारियों को चीर-फाड़ व दवा से दबा दिया जाता है और पुराने रोग घर कर लेते हैं। बहुत दिन के खराब रहन-सहन से पाचनशक्ति मन्द पड़ जाती है, जिससे शरीर इतना अधिक मैल से भर जाता है कि आंतें, गुरदा, खाल, फेफड़े आदि ठीक-ठीक अपना काम नहीं करते और शरीर गन्दा हो जाता है, साफ नहीं होता। इसलिए इस शरीर रूपी घर की सफाई के लिए प्रकृति फिर कुछ नए उपाय करती है अर्थात् वह जुकाम, सरदी, दाद, पेचिश, फोड़े-फुन्सी, पसीना, बवासीर आदि विकार उत्पन्न करती है।

आम लोगों का यह ख्याल जमा हुआ है कि दवा से रोग दूर होते हैं, पर यह एक भयंकर भूल है। अवश्य ही गंधक व पारा से खुजली व सुजाक ठीक हो जायेंगे और काढ़े, कुनीन आदि से बुखार टूट जाएगा और रोगी अपने को अच्छा हुआ समझकर वैद्य व डाक्टरों को काफी फीस ईनाम में देगा, परन्तु खेद! इसमें भी भारी रहस्य छिपा हुआ है।

वास्तव में दवा ने प्रकृति की सफाई के काम में भारी बाधा डाली है और अब वह रोग पदार्थों से लड़ने की बजाय पारा, कुनाइन, आइडन, धातु आदि भयानक विषैले पदार्थों से लड़ रही है और अब

हाल यह है कि शरीर के मैल, विषैल पदार्थ तो पहले से शरीर में मौजूद हैं ही अब दवा रूपी हलाहल विष भी और भर गया। ऐसे दवा रूपी जहर का शरीर में मौजूद होना आंखों को ध्यान से देखकर मालूम किया जाता है, जिसका जिकर हम आगे चलकर करेंगे।

वास्तव में तो हमारे समाज में इस विषय पर बड़ा भारी अन्धकार फैला हुआ है। लोग यह नहीं समझते कि जितना अधिक वे दवा की उन्नति कर रहे हैं, जितने अधिक संख्या में औषधालय खुल रहे हैं उतने ही रोगी बढ़ रहे हैं।

आज जरा-सा जुकाम, सरदी, बुखार होने पर लोग झट दौड़कर औषधालय या पास के अस्पताल में दौड़कर जाते हैं और दवा लेकर जुकाम या बुखार को अच्छा करते हैं। मगर वही जुकाम या बुखार दबकर दमा या क्षय का रूप बन जाता है। बार-बार दवा रूपी जहर खाकर लोग प्रकृति के रोग-निवारक कष्टों को दबा रहे हैं, यहां तक कि शरीर की तमाम शक्तियां कमजोर होकर दीर्घ स्थाई रोग आ घेरते हैं और फिर वैद्य व डाक्टर, हकीम उन्हें लाइलाज असाध्य कहकर छोड़ देते हैं। बस यदि देश में दीर्घ, स्थाई व भयानक रोगों की बाढ़ को रोकना चाहते हैं तो प्रिय पाठक औषधियों पर पूर्ण नियन्त्रण कर दिया जावे और इनका बनाना व बेचना आदि बंद करके लोगों को प्रकृति के मार्ग पर चलने की शिक्षा देनी चाहिए। ध्यानपूर्वक देखकर यही परिणाम निकलता है कि जहां दवा के कारखाने, दवाखाने, औषधालय, अस्पताल खूब हैं, वहां बीमारियां भी बहुत अधिक हैं।

लकवा, सन्धिवात, दमा, क्षय रोगों का कारण धातु आदि खिलाना है। जिन रोगियों ने तीक्ष्ण पारा आदि धातु दवा नहीं खाई है, उन दीर्घ रोगियों का इलाज प्राकृतिक ढंग से शीघ्र पांच या छः माह में हो जाता है। जिनका इलाज प्राकृतिक ढंग पर होता है उनके शरीर पूर्ण निर्मल हो जाते हैं। वास्तव में तो आज धातु व विषैली

दवाइयों द्वारा लोग जीते हुए ही मारे जा रहे हैं। वे न जीते हैं, न मरते हैं; बल्कि यों ही दुःख पाकर मर जाते हैं। बार-बार पारा, धातु आदि खिलाकर जब वे रोगों के लक्षण दबा देते हैं तो डाक्टर अपने गरमी-सुजाक के रोगियों को विवाह करने की भी आज्ञा दे देते हैं, पर वे कहते हैं कि भाई हम गारण्टी नहीं करते कि फिर रोग न हो पर इसका कारण यह है कि डाक्टर महोदय अच्छी तरह जानते हैं कि औषधि-विज्ञान कल्पना पर निर्भर है और सभी औषधियां कल्पित हैं और उन्हें भय रहता है कि ऐसा रोगी कोढ़, क्षय, फुन्सियां, घाव लेकर फिर कभी हमारे पास न आ जाय क्योंकि दुबारा आने पर वे उसे साफ जवाब दे देंगे।

आज लाखों की संख्या में रोगी धातु आदि खाकर सदा के लिए बेकार बन गए हैं। पाठकों के परिचयार्थ कुछ अनुभूत उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

कुछ साल पहले हमारे इलाज में एक बड़ा कष्ट-साध्य रोगी गठियावादी (संधिवात) का आया जो वर्षों से Dammed (धिक्कारे जाने) के कारण घोर कष्ट (Calomel) उठा रहा था, उस बेचारे गरीब रोगी को डाक्टरों ने चार बार अंग्रेजी धातु, दवा, पारे का कुश्ता खिला डाली थी। यह महा भयानक जहर उसे बड़ी-बड़ी मात्रा में इसलिए दिया गया था कि उसकी कब्ज और जिगर की बीमारी मिट जाय। परिणाम में चौदह वर्ष की अवस्था से उसका जीवन कष्टमय हो गया था।

दूसरा एक स्कूल का लड़का, जब वह पढ़ रहा था, बीमार हुआ और उसे दवा रूपी जहर खिलाया गया था। इसीलिए उसे एक खास किस्म की खाज-खुजली, पांव हुई थी। वह लड़का पंद्रह वर्ष दुःखी रहकर मर गया।

इसी प्रकार एक वैद्य ने एक वृद्ध पुरुष को धातु खिला दी, जिससे उसकी जीभ गल गई और वह तीन महीने घोर कष्ट पाता हुआ सदा के लिए संसार से चल बसा।

लेखक के पड़ौस में एक सुन्दर युवक को साधारण बुखार हुआ जिसमें डाक्टर, वैद्यों ने अनेक दवाइयां खिलाईं। परिणाम यह हुआ कि उसे स्थाई ज्वर होकर क्षय रोग हो गया और वह अभागा अपनी विधवा भार्या को रोता छोड़कर संसार से चल बसा !

आंखों से शरीर का हाल जानना

अपने चिकित्सालय में हमने ऐसे सैकड़ों रोगियों की सफलता पूर्वक चिकित्सा की है, जिन्हें गठिया, लकवा, संधिवात, दमा, कोढ़, पागलपन आदि रोग थे। जांच करने से यही मालूम हुआ कि ये सब रोग दवा रूपी जहर, जिसे दुनियां अमृत समझती है, कुनैन, आइ-डन, धातु, क्वाथ, रस, कोलतार, आरसेनिक आदि दवाइयों के कारण हुए थे। यह सब बातें हमने कैसे जान लीं ?

१—क्योंकि आंखों को ध्यान पूर्वक देखने व जांच करने से साफ-साफ मालूम हो जाता है कि शरीर के अन्दर दवाइयों का जहर मौजूद है।

२—क्योंकि आंखों में जो तरह-तरह के धब्बे, निशान आदि होते हैं, वे दवा रूपी जहर का शरीर में मौजूद होना साफ-साफ बतलाते हैं।

३—क्योंकि रोगी के रोग की कथा साफ इनमें दिखाई देती है।

४—क्योंकि ज्यों-ज्यों ये दवा के जहर शरीर में से बाहर निक-लते रहते हैं, त्यों-त्यों आंखों में उनके चिह्न भी अदृश्य होते जाते हैं। उदाहरणार्थ—

(क) आंखों के जरिए यह साफ-साफ मालूम हो जाएगा कि रोगी के मस्तिष्क या खोपड़ी में कुनैनरूपी जहर भरा हुआ है।

(ख) इससे हम इस योग्य हो जाते हैं कि रोगी को साफ-साफ बता सकते हैं, (उससे बीना पूछे ही) कि उसके सिर में दर्द रहता है,

कानों में झनझनाहट रहती है, उसका स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा है, उसको गरमी सताती है।

(ग) पूछने पर यही बात निकलेगी कि उसने मलेरिया, जुकाम, सिर दर्द, बुखार को दबाने के लिए काफी मात्रा में कुनैन रूपी जहर खाया है।

(घ) हमारे बताये हुए नियम, स्वाभाविक उपचारों (दवा-दारू नहीं) से रोगी की हालत दिन-दिन ठीक हो रही है। शरीर दिन-दिन बलवान् बनता जा रहा है। मल-मूत्र, पसीना खूब आते हैं। धातु आदि दवाइयों के जहर अपना स्थान छोड़ने लगते हैं और बाहर निकलने लगते हैं।

तेज रोग-निवारक कष्ट उत्पन्न होने लगते हैं और कुनैन व धातु रूपी जहर धीरे-धीरे शरीर से निकल जाते हैं और आंखें निर्मल, साफ, कमल के फूल की तरह हो जाती हैं और यही सच्चे आरोग्य की पहचान है और वह है प्रकृति की गोद में, दवा रूपी जहर में नहीं है।

गिल्टी आदि की चीर-फाड़ से हानि लाभ

इस अध्याय में मैं यह दिखाने की कोशिश करूंगा कि जिस प्रकार औषधियां रोगों को दबाकर मनुष्यों के शरीर का नाश करती हैं, उसी प्रकार चीर-फाड़ आदि क्रियाएं भी बड़ी भयानक और हानिकर होती हैं।

शरीर में भिन्न-भिन्न कई गिल्टियां हैं, इनमें होकर शरीर अनेक मल-पदार्थ बाहर फेंकता रहता है। जब गिल्टियां सूज जाती हैं, फूल जाती हैं या गलने लग जाती हैं तो यह समझना चाहिए कि शरीर में विजातीय द्रव्य या मैल बहुत अधिक भर गया है और गिल्टियां उस मैल को निकालते-निकालते थक गई हैं।

वास्तव में ये गिल्टयां रक्त संचार के कार्य से भारी सम्बन्ध रखती हैं और उसका वे एक भाग हैं।

जब अधिक प्रकृति विरुद्ध खूराक खाने या अन्य कारणों से खून खराब हो जाता है, तो शरीर के अन्य भागों की तरह शरीर के विकार निकालने के लिए टांसिलों या गिल्टियों को भी सफाई का काम सौंपा जाता है।

फिर अगर ऐसी सफाई करते-करते अक्सर वे सूज जाएं या खराब होने लग जाएं तो इसमें ऐसे आश्चर्य की कौन-सी बात है? और फिर उन पर टिक्चर आइडन आदि दवा लगाकर या तेज छुरी या चाकू से निकालकर क्या भलाई हो सकती है? कुछ नहीं, अगर आपका नौकर आपके घर के काम-काज की ज्यादती से थककर कम-जोर हो जाय तो क्या आप उसे निकालना या मार डालना पसन्द करेंगे? आपके घर के परनाले या मोरी बगैरा इतने छोटे या तंग हों कि उनमें होकर तमाम कचरा, मैल वगैरा बाहर न निकल सके तो क्या आप उन परनालों को बन्द करेंगे? या निकाल देंगे? बस यही हाल टांसिल, फोड़े, नासूर आदि की चीर-फाड़ का है।

इसका सच्चा रहस्य यह है कि शरीर जब कभी अन्दर की सफाई करने के लिए जोर देता है, तो किसी खास हिस्से में छेद या सूजन आदि पैदा कर देता है और वह अनेक रूप से बवासीर के मस्सों द्वारा टांसिलों में होकर, फोड़े-फुन्सी, नासूर में होकर, आंख, कान, नाक में होकर मवाद व अन्य विकार बाहर निकाला करता है। अब अगर उस मुंह पर चीर-फाड़ करके उसे अच्छा किया तो वह मवाद व गन्दे पदार्थ दूसरा रास्ता पकड़ लेंगे या वापस शरीर में रहकर भयङ्कर उपद्रव पैदा करेंगे।

टांसिल निकलवा डालने के बाद मल-पदार्थ उसके सबसे निकट के भाग या नाक आदि द्वारा निकलना आरम्भ करते हैं और इस

बार प्रवाह अधिक कष्टप्रद व जोरदार होने से सूजन आदि पैदा होती हैं।

कंठबेल की एक गांठ को चीर-फाड़ के जरिए निकालना भी ऐसा ही मिथ्या व भयङ्कर उपाय है और परिणाम यह होता है कि एक गांठ निकालते ही दूसरी जगह गांठ बन जाती है, जो और भी दुःख-दाई होती है। यहां तक कि हतभाग्य बेल का रोगी चीर-फाड़ के दारुण दुःख सहन करता-करता शीघ्र मारा जाता है।

कोई-कोई डाक्टर लोग बीमारों को नाक के छेदों की हड्डियों को छीलकर रोग हटाने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं, जिससे शीघ्र ही रोगी नाक से श्वास लेनें के बजाय मुख से श्वास लेने वाला हो जाता है।

नासूर के इलाज में बजाय शरीर शुद्धि के घाव को छीलकर चौड़ा करते हैं और गले हुए हिस्से को छील-छीलकर घाव भरने का प्रयत्न किया जाता है जिससे कभी-कभी नासूर का घाव भर जाता है पर फिर दूसरे स्थान से मवाद या पानी झरना आरम्भ हो जाता है।

वास्तव में नासूर आदि का सच्चा इलाज तो यह है कि शरीर को उपवास, फलाहार, स्नान आदि से शुद्ध किया जावे, ताकि रोग का मूल कारण ही दूर हो जाय। इसी प्रकार बवासीर का इलाज इस प्रकार किया जाता है कि मस्से निकाल डाले जाते हैं और वहां से खून निकलना बन्द हो जाता है, परन्तु इसका परिणाम क्या होता है? सिर दर्द, रक्त विकार, अंतड़ियों की खराबी आदि रोग हो जाते हैं।

इसी प्रकार अदीठ जैसे रोग में प्राकृतिक उपचार न करके चीरे द्वारा उसका विष निकालते हैं जिससे हृदय को भारी हानि पहुंचती है जिससे अकसर रोगी बेमौत मारे जाते हैं। एक खास बात तो यह भी होती है कि कमजोर रोगियों का आपरेशन नहीं किया जाता वे तो भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाते हैं।

इसी प्रकार एपेंडिसाइटीज आंतों के रोगों में शुद्ध आहार-विहार आदि द्वारा आंतों को शुद्ध करने के बजाय सूजे हुए भाग को काटकर फेंक दिया जाता है जिससे रोग समूल नष्ट नहीं होता।

सरतान (बदगोश्त)

अब हम सरतान या बदगोश्त का जिकर करेंगे जो कि एक महा भयानक दीर्घ रोग है और बहुत तेजी से दुनिया में बढ़ रहा है और जिसे आयुर्वेद व एलौपैथी वाले असाध्य समझे बैठे हैं। डाक्टरलोग तो बदगोश्त के लिए यह राय देते हैं कि शुरू में ही आपरेशन करवा डालना चाहिए और यह भी उनका मत है कि यह रोग स्थानीय है सारे शरीर से इसका सम्बन्ध नहीं है। पर वास्तव में यह उनकी भूल है। इसका समस्त शरीर से गहरा सम्बन्ध है और इसीलिए बढ़े हुए बदगोश्त अर्थात् दूषित मांस को चीर-फाड़ से, बिजली की सुइयों एक्सर से काट डालने व हटा देने के बाद भी दूषित मांस उसी जगह या दूसरी जगह पर बढ़ने लग जाता है।

अगर किसी छोटे रोग जालीदार, मांस, बिची या गिल्टी को घातक सरतान या दूषित मांस का रूप देना हो तो उनका चीर-फाड़ करने से मतलब सिद्ध हो जायगा। वास्तव में जितना ही दूषित मांस को खुरचोगे या चीर-फाड़ करोगे तो वह हमेशा बढ़ जायगा। इस प्रकार चीर-फाड़ अन्य रोगों की भांति सरतान को घटाता नहीं बढ़ाता है। एक बड़े भारी सर्जन ने स्त्रियों को यह उपदेश दिया है कि अगर उनके शरीर पर मुस आदि हो जाये तो उन्हें आरम्भ में ही प्राकृतिक उपायों से ठीक कराना चाहिए और चीर फाड़ के जरिये उनको दूर नहीं कराना चाहिए।

आगे उन डाक्टर महोदय ने यह भी कहा है कि छोटे-छोटे दाद, मस्सों आदि पर शस्त्र क्रिया करने से वे आगे भयानक कैंसर हो जाते हैं। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि जिस प्रकार तेज नई बीमारियों में दवा देने से वे बढ़कर महा भयानक दीर्घ व असाध्य रोग बन जाती हैं उसी

प्रकार छोटे-छोटे मस्से, दाद, गिल्टी आदि चीर-फाड़ करने से वे कैंसर आदि भयानक रोग बन जाती हैं।

मैं अनेक बार अपने व्याख्यानों में कह चुका हूं कि बदगोश्त व एक्जिमा आदि रोग स्वयं शरीर से भिन्न कोई वस्तु नहीं हैं; बल्कि यह शरीर में स्थित मल पदार्थों का उफान या उभार मात्र है और शरीर की अंदरूनी सफाई के साथ-साथ नष्ट हो जाते हैं और गंदगी बढ़ जाने से बढ़ जाते हैं।

मांस भक्षण भी दूषित मांस का एक कारण होता है वास्तव में सरतान के परमाणु रक्त के हर एक परमाणु में मिले हुए होते हैं। एक खास बात और है। दाद, खाज, एक्जिमा आदि को दवा के जरिये जब दबा दिया जाता है तो इनके अन्दर के कीड़े मर जाते हैं और उनमें जो विषैले पदार्थ होते हैं वे शरीर में वापिस चले जाते हैं और शरीर पहले से भी अधिक गन्दा हो जाता है।

इसलिए खुजली या दाद आदि का दवा से इलाज करने से कई हानियां होती हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हो चुका है कि एलोपैथी और आयुर्वेद वाले सरतान बदगोश्त को अच्छा करने में असमर्थ होते हैं।

हमारी प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली में सैकड़ों बदगोश्त सरतान के रोगियों का बड़ी सफलता पूर्वक इलाज किया गया।

इलाज करते ही रोगियों में से कइयों को खुजली, पित्ती आदि उभर आई और कई दिनों के बाद धीरे-धीरे ठीक हुई। वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा इन छोटे-छोटे कष्टों द्वारा पुराने भयानक रोगों को शरीर से बाहर निकाल कर शरीर को पूर्ण निरोग मल रहित बनाती है।

इसलिए दूषित मांस, (एक्जिमा) कुष्ठ आदि रोगों में वही उपाय सफल हो सकते हैं जिनके शरीर निर्मल व रक्त शुद्ध हो सके अन्यथा सभी उपचार निरर्थक होंगे।

अक्सर इसका ऐसा इलाज भी किया जाता है कि निरोग जानवरों का शुद्ध रक्त तो रोगी मनुष्यों के शरीर में भर दिया जाता है और बीमार मनुष्यों का रक्त निकाल कर निरोग पशुओं के शरीर में भरा जाता है और वे रोगी अच्छे हो जाते हैं परन्तु बेचारे अभागे पशु मर जाते हैं।

पर प्राकृतिक चिकित्सा ऐसी निर्दयता की बात नहीं सिखाती।

सूजन (वर्म)

पिछले अध्यायों में मैं भली-भांति यह सिद्ध कर चुका हूं कि सभी प्रकार के ज्वर व तेज बीमारियां जो सूजन लिये हुए होती हैं वे सब शरीर की सफाई करती हैं और इसीलिए भूलकर दुनियां की देखा-देखी उन रोगों को चीर-फाड़ या दवा रूपी जहर से दबाना या रोकना नहीं चाहिए।

सच्चा इलाज यह होना चाहिए कि रोगों की वृद्धि को प्राकृतिक उपचारों से रोका जाय और वह भी विधि पूर्वक अन्यथा उन्हें मिथ्या उपायों दवा या चीर-फाड़ बरफ आदि से रोकने या दबाने से वे रोग प्राणघातक सिद्ध होंगे या वे ही नए रोग दीर्घ व पुराने बन जायेंगे। याद रहे प्रकृति कभी भी धोखा नहीं देती और उसके मार्ग पर चलने वाले कभी दीर्घ रोग या रोग जनित अकाल मृत्यु के शिकार नहीं होंगे।

इसलिए अगर तज बीमारियों में दवा या चीर-फाड़ आदि झूठे इलाजों से हमारे साथी मर जायें तो इसके लिए ईश्वर और प्रकृति कभी दोषी नहीं हैं। दोष हमारी समझ व हमारे इलाज का है—दो दवा आदि झूठे इलाजों का है और दोष चिकित्सकों का है जो रोग के सच्चे कारण व उपचार न जानते हुए झूठे उपचारों से रोगियों के प्राण, आरोग्य व धन हरण कर लेते हैं।

सूजन की गाथा

अन्य तीव्र रोगों की भांति सूजन भी प्रकृति का एक रहस्यमय कार्य है और बार-बार मुझे ऐसा निश्चित हो चुका है कि प्रकृति ही सच्चा वैद्य है और कोई उसके समान नहीं है, सूजन तभी पैदा होगा जब कि शरीर में कोई अनावश्यक घातक वस्तु मौजूद होगी फिर

चाहे वह रक्त या मांस में हो या कोई अन्य स्थान, हड्डी आदि में दो।

सूजन पैदा करने के लिए अवश्य हो कोई हड्डी या लकड़ी, लोहा वगैरह के टुकड़े अन्दर हों या कोई जहरीले कीड़े का डंक लगा हो या रक्त में कोई विकार होगा और सूजन के द्वारा प्रकृति इन शरीर के शत्रुओं को बाहर फेंकने का यत्न करती है।

जब कोई सूजन पैदा करने वाली वस्तु शरीर में मौजूद हो जाती है, उसी समय रक्त उस घातक स्थान पर से तेजी से दौड़ने लगता है।

इस प्रकार खून के उस स्थान पर अधिक मात्रा में व अधिक वेग से दौड़ने के कारण उस स्थान की छोटी-छोटी नसें फूलकर आकार में बढ़ जाती हैं—उनके आकार में बढ़ जाने व फूल जाने से उसकी झिल्लियां कमजोर हो जाती हैं। इन झिल्लियों में होकर रक्त के सफेद कण नसों के अन्दर प्रवेश करते हैं और उनमें होकर सूजन के स्थान तक चले जाते हैं—इस झगड़े के परिणाम स्वरूप रक्त की शुद्धि होकर मवाद उत्पन्न होता है जो खून का मैल होता है।

सूजन की पांच श्रेणियां होती हैं—

प्रथम श्रेणी—सूजन के आरम्भ की अवस्था कुछ मिनट, कुछ घंटे, कुछ दिन, सप्ताह, माह या वर्षों तक हो सकती है। इस काल में मल-पदार्थ, विष, अन्य घातक वस्तुएं शरीर के किसी विशेष स्थान में इकट्ठी होती रहती हैं और जब यह घातक पदार्थ पूर्ण रूप से इकट्ठी हो चुकती हैं तब प्रथम श्रेणी समाप्त हो जाती है और प्रकृति अपना दूसरा कार्य आरम्भ करती है।

दूसरी श्रेणी—दूसरी श्रेणी सूजन की वह होती है जब प्रकृति उन एकत्रित हुए पदार्थ विष, मैल आदि को शरीर से बाहर फेंकने का प्रयत्न करती है और जीवन शक्ति व रोग-पदार्थों में घोर युद्ध (संघर्ष) होता है जिससे बुखार आदि रोग होते हैं।

तीसरी श्रेणी—तीसरी श्रेणी में रोग व जीवन शक्ति या युद्ध समाप्त हो जाता है और परिणाम स्वरूप मल पदार्थ तैयार होकर बाहर निकलने योग्य हो जाते हैं, इस श्रेणी में मवाद का बनना, फोड़े-फुंसी आदि होना, नासूर आदि क्रियाएं होती हैं।

सूजन की इस तीसरी श्रेणी के दो परिणाम होते हैं, मृत्यु या सुधार। अगर इलाज प्राकृतिक ढंग से किया जाय तो धीरे-धीरे मल पदार्थ बाहर निकलकर शरीर शुद्ध व निरोग तेजस्वी हो जाता है और सच्चा आरोग्य प्राप्त होता है और दवा आदि से दबाने की चेष्टा की जाती है तो दीर्घ रोग या मृत्यु परिणाम होते हैं।

चौथी श्रेणी—सूजन की चौथी श्रेणी वह होती है जिसमें शरीर के विकार पीले पानी, मवाद, खराब खून आदि के रूप में निकलते हैं।

पांचवीं श्रेणी—सूजन की पांचवी व अन्तिम श्रेणी वह है जिसमें मल पदार्थ निकल चुकने के बाद शरीर घाव, चोट आदि को ठीक करने व नवीन रूप से बिगड़े अङ्गों को सुधारने में लग जाता है। बुखार आदि उतर जाने के बाद शरीर फिर से नवीन रक्त बनाने व थके हुए पाचक अङ्गों को पुनः बलवान बनाने का काम करता है, इसलिए यह पांचवीं श्रेणी सबसे प्रधान व महत्व की है।

अगर सूजन आदि तीव्र रोगों को प्रकृति के ऊपर छोड़कर उसे अपना काम करने दिया जाए तो हर एक तेज बीमारी जुकाम, बुखार, दस्त आदि कुछ भी हो वह शरीर के लिए बड़ी हितकारी सिद्ध होगी क्योंकि मल पदार्थ विजातीय वस्तुएं जहरीले पदार्थ और रोग परमाणु, शरीर के बाहर निकल जावेंगे। पुरानी थकी हुई नसें फिर से बलवान होकर ठीक-ठीक काम करने लग जायेंगी।

जिस प्रकार किसी स्थान की गन्दी हवा प्रबल आंधी के वेग से बहकर चलें, फिर से शुद्ध हवा इकट्ठी हो जाती है उसी प्रकार तेज बीमारियां भी शरीर को फिर से नवीन, ताजा, काम के लायक बना

देती हैं। इसलिए प्रकृति के शुद्ध मार्ग पर चलने से ये तेज बीमारियां सदा लाभदायक होती हैं, परन्तु दुर्भाग्य से, अज्ञान से या देखा-देखी सूजन या तेज बीमारियों को प्रकृति पर न छोड़ा जावे और उल्टा उन रोगों को हानिकारक जहरीली दवाइयों से, बर्फ के प्रयोगों से दबाया या रोका जावेगा तो प्रकृति रोगों से युद्ध करते-करते हार जायेगी और परिणाम जैसा कि हम रोजाना देखते हैं यही होगा कि या तो बेचारा रोगी मौत के मुंह में चला जायेगा या वह सदा के लिए किसी दीर्घ व अधिक भयानक रोग का शिकार हो जाएगा।

सरदी लगना या जुकाम होना

आमतौर पर सभी लोगों की यह धारणा जमी हुई है कि सरदी-जुकाम ही अधिकांश रोगों का मूल कारण है। आए दिन हम रोगियों को व उनके अज्ञान भाई-बन्धु, रिश्तेदारों से कहते हैं कि भाई पहले पहल सरदी का झोंका या ठण्ड ही मुझे लगी थी तभी से बीमार हूं।

मगर ऐसे डरपोक व भोले लोगों को मेरा यही जवाब होता है कि सरदी-जुकाम ठंडी हवा या ठंडे पानी से नहीं होते; बल्कि शरीर के अन्दर मल-पदार्थ मौजूद होने के कारण होते हैं और जिन मनुष्यों का रक्त शुद्ध, शरीर निर्मल जठराग्नि प्रबल होगी उन्हें कभी सर्दी-जुकाम न लगेगा। चाहे वे कितने भी ठंडे पानी या ठंडी हवा में रहें।

जिस समय ठंड (सरदी) मालूम होती है तो खाल को ठण्ड-सी लग कर उसमे छेद बन्द हो जाते हैं और रक्त अन्दर की तरफ दौड़ जाता है और इस अवधि में खाल में होकर मल-पदार्थ पूरी तरह से बाहर नहीं निकलते। अब अगर शरीर में मल-पदार्थ कम हैं और मल प्रबल हैं तो शरीर को गंदगी मल-मूत्र आदि की राह बाहर फेंक दी जावेगी।

मगर यदि शरीर में मल-पदार्थ अधिक मात्रा में मौजूद हैं और

अगर अधिक या प्रकृति विरुद्ध भोजन के कारण गुर्दा, मसानें, अंतड़ी, मेदा कमजोर हो चुके हैं तो शरीर की गंदगी मल-मूत्र आदि के जरिये न निकलकर नाक में व मुंह गले में होकर निकलती है।

इन उपद्रवों को खांसी, जुकाम, सरदी आदि के नाम से पुकारा जाता है। शरीर में जितनी अधिक गंदगी होगी, अंग जितने कमजोर होंगे उतनी ही अधिक सरदी व जुकाम लगने की सम्भावना भी रहेगी। फिर इतना होते हुए अगर सरदी, जुकाम, खांसी आदि मल-निवारक कष्टों को काढ़े, दवा, नशे या गरम चीजों से दबाया जावे तो सिवा अपार हानि के लाभ की क्या सम्भावना है? क्या इन रोगों को दबाना अपने शरीर के साथ घोर अन्याय करना नहीं है? दवा आदि खाकर सरदी, जुकाम, खांसी, बुखार आदि को दबाने से शरीर की गंदगी तो शरीर में रहती ही है उल्टे दवा रूपी जहर सदा के लिए वहां उसके साथ और घर कर लेते हैं और परिणाम यह होता है शरीर रूपी लकड़ी के पुरानी बीमारी का घुन (कीड़ा) लगकर वह धीरे-धीरे खोदकर गलकर जल्दी नष्ट हो जाती है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि सरदी, जुकाम, खांसी, बुखार का मूल कारण ठंडी हवा या ठंडा पानी नहीं हैं; बल्कि शरीर के अन्दर मैल मौजूद होना है। तो फिर आप ही बताने की कृपा करें कि वास्तव में इसका असली इलाज यह है कि यह उपद्रव होने पर उपवास किया जाय और केवल फलों का रस दिया जावे, धूप-हवा के स्नान किये जावें, प्राकृतिक जल स्नान किया जावे, शुद्ध हवा में घूमना चाहिए। मिट्टी व पानी के प्रयोग किये जावें, फल व दूध या मेवा, हरे शाक का भोजन भूख लगने पर किया जावे। बस इससे हर प्रकार की सरदी, जुकाम, खांसी, बुखार अवश्य दूर हो जायेंगे।

कुछ वर्ष पूर्व मूल लेखक को एक रोगी को देखने के लिए जाना पड़ा था, जो एक अस्पताल में लगभग दो माह से बीमार पड़ा हुआ था। जांच करने पर मालूम हुआ कि वह रोगी निमोनियां रोग से

दुःखी था। वहाँ के डाक्टरों ने उसकी छाती व पेट पर बर्फ की थैली का प्रयोग किया था। कई सप्ताह के बर्फ-प्रयोग से बुखार जाता रहा। दर असल बात तो यह है कि बर्फ दवाइयों से अधिक रोग दबाने की शक्ति रखती है। यह बुखार की गरमी को बड़ी जल्दी खींचकर बुखार को दबा देती है और डाक्टर लोग इसे बड़ी सफलता समझते हैं।

इस रोगी के भी बर्फ के प्रयोग ने फेफड़ों की कफ फेंकने की हालत में उनकी क्रिया को दबाकर कफ फेंकना बन्द कर दिया और मल-पदार्थ फेफड़ों में रह गये और परिणाम यह हुआ कि उन्हीं डाक्टरों ने रोगी के रिश्तेदारों को कह दिया कि अब रोगी को द्रुतगामी क्षय (Gallopingthysis) हो गया है और यह कि वह एक-दो सप्ताह में मर जायगा।

इस भयंकर सूचना को पाकर उसके रिश्तेदार उसकी प्राकृतिक चिकित्सा कराने हमारी संस्था में लाये और तत्काल उसके प्राकृतिक उपचार आरम्भ किये गए, बजाय बर्फ की थैली के पानी व मिट्टी की पट्टी बांधकर ऊपर से उनको पट्टिया बांधी गईं, जो कुछ ही मिनटों में गरम हो गई, इससे खाल के छेद खुल गये और खून खाल की तरफ दौड़ने लगा और गरमी भी आई। इनसे बुखार दबा नहीं; बल्कि समान अवस्था पर बना रहा।

रोगी को उपवास कराया गया और मर्दन क्रियाएं विधि पूर्वक कराई गई जिससे बर्फ द्वारा दबा हुआ बुखार फिर उभर आया और उसे फिर प्रकृति पर छोड़ दिया गया कि वह स्वयं ही दूर हो जावे।

इस प्रकार नियम पूर्वक उपचार करने से लगभग २ माह में यह रोगी ठीक हुआ और फल व दूध लेने लग गया। घर जाकर वह पूर्ण स्वस्थ हो गया। लेखक ने अनेक दमा व क्षय वाले रोगियों की जांच करके पता लगाया है कि वे दवाइयां खाकर तेज बीमारी को दबा चुके थे, इसीसे इन भयानक रोगों के शिकार हुए।

वास्तव में तीव्र रोगों को दवा या बर्फ या चीर-फाड़ से दबाने की कोशिश करना काल को चलकर न्यौता देना है और अधिकांश इनका परिणाम मृत्यु होता है। प्राकृतिक चिकित्सक ऐसे हानिकारक भयानक उपचारों को दूर से ही नमस्कार करते हैं, इसमें सदा ताजा पानी काम में लिया जाता है। बर्फ न गरम पानी मिट्टी व ताजा पानी की पट्टी शीघ्र उचित गरमी लाकर गरमी बनाये रखती हैं और बर्फ शरीर को ठण्डा रक्त सहित कर डालती है और खाल के छेद बन्द कर डालती है।

मोतीझारे में दवा प्रयोगों का भयंकर परिणाम

लेखक ने सैकड़ों-हजारों रोगियों की आंखें देखकर उन्हें यह बताया है कि मोतीझारा में औषधि-सेवन करने से उनके पाचक अंग खराब होकर अग्नि मन्द हो गई, खून नहीं बनता और शरीर खराब हो गया है और यह कि उन जहरीली दवाइयों की शरीर में स्थिति उनकी आंखें साफ-साफ बता रही थीं।

ऐसे रोगों में आंखों की पुतली के बाहरी गोलाकार में गोल-गोल सफेद रंग की पपड़ी की एक माला-सी बन जाती है। हम लोग इसे मोतीझारे का उपहार कहते हैं। यह इस बात की सूचना देता है कि ये अंतड़ियों के सूक्ष्म नाड़ी समूह से हैं और यह आंखों में जभी दिखाई देता है जब कि अंतड़ियों के सूक्ष्म नाड़ी जाल का सत्यानाश दवाइयों, बर्फ के प्रयोगों या चीर-फाड़ से हो चुका है।

जब कभी मोतीझारे का झूठा प्रकृति विरुद्ध इलाज होता है तभी अंतड़ियां व पाचक अंग इतने निकम्मे हो जाते हैं कि वे आए भोजन को नहीं पचा सकते और बिना रस बने हुए भोज्य पदार्थ यों ही मल-मूत्र द्वारा बाहर निकल जाते हैं। मोतीझारे की हालत में आंतें पूर्ण रूप से विषैले पदार्थ निकालने में लगी रहती हैं। और अगर इस हालत में दवा आदि उपचारों से उनकी यह क्रिया बंद कर दी जाये तो वह सदा के लिए बेकार हो जाती है।

परन्तु यदि पूर्ण विश्राम, उपवास आदि से मोतीझारे की प्राकृतिक चिकित्सा की जावे तो आंतें आराम से अपना काम कर चुकती हैं फिर से सशक्त काम करने लायक बन जाती हैं और रोगी फिर से निरोग व बलवान बन जाता है और पहले से अधिक स्वस्थ बन जाता है। लेकिन रोगी के दुर्भाग्य से उसे खराब भोजन दिया जाय या उसके पेट में कुनैन, पारा, दस्तावर, नमकीन चीजें, नशीली चीजें या अन्य जहरीली दवाइयां डाली जायें तो प्रकृति के कार्य में भारी बाधा पड़ेगी, दोषों का पाचन भली-भांति नहीं होगा और परिणाम में पाचक अंग थक जायेंगे, बेकार हो जायेंगे और अंतड़ियां रस चूसने योग्य न रहकर मुरदा बन जायेंगी।

ऐसा रोगी भले ही अपने मन में यह समझे कि मैं अच्छा हो गया हूं और वैद्य या डाक्टर भले ही इस सफलता पर धन व यश प्राप्त करें, परन्तु वास्तव में बेचारे गरीब रोगी के भाग उसी दिन फूट जाते हैं जब वह दवा रूपी जहर पीना आरम्भ करता है। ऐसे दवा से अच्छे होने वाले रोगी क्षय, दमा, मंदाग्नि आदि भयानक रोगों से घोर कष्ट व दुःख पाते हुए महीनों व वर्षों में तड़प-तड़प कर मरते हैं।

अगर दवा के जहर से वह तुरन्त मृत्यु से बच भी गया तो भी ऐसा रोगी उम्र भर कब्ज, सिर दर्द, पेट दर्द आदि शिकायतों से दुखी रहता है।

सच्चा उपाय

हमें यह लिखते हुए बड़ा हर्ष होता है कि सर्व साधारण के लाभार्थ मोतीझारे की सबसे ऊंची प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली ने ये उपाय निकाले हैं—ठंडे जल का स्नान (प्राकृतिक) और उपवास, दवा हरगिज नहीं।

एक नहीं हजारों ऐसे बुखार व मोतीझारे के रोगों में केवल हवा स्नान, जल स्नान, उपवास या फलों के रस से सौ फीसदी सफलता

मिली है। कभी भी कोई हानि व अकाल मृत्यु नहीं हुई न वह रोगी बाद में किसी दीर्घ रोग का शिकार हुआ। इससे यह सिद्ध हुआ कि वास्तव में सब रोगों का कारण व इलाज एक है।

मोतीझारा, क्षय, चेचक आदि रोगों में प्राकृतिक चिकित्सक लोग रोग जन्तुओं को मारने की झूठी चिकित्सा नहीं करते और वे कभी जन्तुओं के लिए जहरीली दवा, धातु आदि का कष्ट नहीं उठाते। वे यह दृढ़ता पूर्वक मानते हैं कि मोती-झरे के लिए उपवास, फलों का रस, हवा स्नान आदि श्रेष्ठ इलाज हैं और पहाड़ व जंलगों में फिरते हुए फल खाना क्षय का एक मात्र रामबाण इलाज है। अगर हमारे डाक्टर वैद्य भी इन सिद्धान्तों पर चलें तो वह अधिक यश व धन कमा सकते हैं और अधिक जानें बचा सकते हैं।

जननेंद्रिय रोगों को दबा देने के भीषण परिणाम

आजकल अधिकांश इलाज इस ढंग के चल रहे हैं कि रोगों को दबाकर उन्हें अच्छा करने की कोशिश की जाती है। सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात तो यह है कि रोगों को आरम्भ में हीउ न्हें पकने से पहले ही दबा दिया जाता है जिससे वे स्थाई रूप से शरीर में रह जाते हैं—अथवा रोगी के प्राण हरण कर लेते हैं। इतना ही नहीं वे मल पदार्थ जो बाहर निकलने वाले थे अन्दर रह जाते हैं और समय पाकर दूसर मार्ग ढूंढ़ते हैं और अनेक नवीन उपद्रव खड़े होते हैं।

फिर इन उपद्रवों को दबाने के लिए धातु, रस, तेज दवा, इंजेक्शन आदि दिये जाते हैं, जो और भी अधिक भयानक रोग शरीर में उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार दवा रूपी जहर पीकर भोली दुनियां छोटे रोगों के बजाय दीर्घ व कठिन रोगों का शिकार बन रही है; इतना ही नहीं उसे इस अंध विश्वास के कारण उनकी भावी संतान भी उन्हीं रोगों में फंसकर कष्ट उठाती है—कोढ़ियों की संतान भी कोढ़ी होती है।

अङ्गरेजी अखबार नेचरोपाथ लिखता है कि—

सुजाक, गरमी आदि रोगों को पारा आदि धातु दवाइयों से दबाने से कैसे-कैसे भयानक परिणाम होते हैं । हड्डियों के व मांस के नासूर हो जाते हैं, दिमाग खराब हो जाता है, रीढ़ की हड्डी झुक जाती है, संधिवात गठिया हो जाता है, शरीर के अङ्ग नष्ट हो जाते हैं । यह क्यों ? यह दवा के भूत दवा के अंधविश्वास का परिणाम गरमी, सुजाक, प्रमेह, मधुमेह आदि रोग, जिन्हें आयुर्वेद, एलोपैथी आदि असाध्य समझते हैं, बड़ी आसानी से प्राकृतिक उपचारों से ठीक हो सकते हैं, परन्तु ऐसे रोगों में धैर्य व दृढ़ता की आवश्यकता होती है ।

सबसे बड़ी यह बात है कि अगर इन रोगों का व सभी का इलाज बिना चीर-फाड़ प्राकृतिक उपचारों से किया जावे तो कभी कोई और बीमारी शरीर में नहीं लग सकती जैसा कि दवा रूपी जहर से होती है । ये जहर पारा, भस्म, आइडिन, कुनेन आदि शरीर के सभी मर्म स्थानों व अङ्गों को इतनी धीरे-धीरे पूर्ण रूप से नष्ट करते हैं जैसे कि काठ को घुन परंतु आजकल तो दुनिया इन्हें अमृत समझकर सेवन करती है ।

स्त्री-रोगों का कारण व चिकित्सा

आजकल के शिक्षित सभ्य युग में पुरुषों की भांति स्त्रियां कई प्रकार के भयानक रोगों का शिकार होकर कष्ट पा रही हैं, खासकर प्रसव की पीड़ाओं से तो लाखों महिलाएं अपार कष्ट झेलकर मर रही हैं । इन स्त्री-रोगों की चिकित्सा के लिए अधिकांश लोग चीरत्फाड़ की शरण लेते हैं । सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात तो यह है कि मासिक-धर्म के समय बच्चा पैदा होते समय स्त्रियों को जो घोर कष्ट उठाना पड़ता है उसे सर्व साधारण एक होनहार या भावी समझे हुए हैं, पर यह केवल भ्रम व उनका अज्ञान है ।

जानवरों को देखिए गधा, ऊंट, गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि कोई भी इस प्रकार कष्ट नहीं पाते न चीर-फाड़ कराते हैं न दवा लेते हैं, इसी प्रकार जंगली जातियों में भी स्त्रियां इन कष्टों व रोगों

से सर्वथा मुक्ति हैं। क्यों ? इसलिए कि वे प्रकृति के नियमों को भंग नहीं करतीं, इससे सिद्ध हुआ कि हमारे महिला-समाज के सब कष्टों का कारण प्रकृति विरुद्ध रहन-सहन खराब खान-पान और दवा का सेवन करना ही है।

जिन परिवारों में प्रकृति के नियमों का पालन होता है, जहां औषधियों को विष समझकर उनका सेवन नहीं किया जाता जहां की स्त्रियां फल दूध, मेवा, हरे शाक आदि खाती रहती हैं, कपड़े कम पहनती हैं, वहां ऐसे रोग व कष्ट स्वप्न में भी नहीं होते।

एक महिला कई वर्षों से स्त्री रोग से दुखी थी। जांच करने पर मालूम हुआ कि उसका शरीर विजातीय द्रव्य व मैल से भरा हुआ था, खाल के स्रोत रुके थे और निरन्तर दवा सेवन करने से उसके पेट व आंतों की दीवारें निष्क्रय व सूखी सी हो गई थीं। उसको भोजन भली-भांति नहीं पचता था, कब्ज भी था और भी कई शिकायतें प्रदर आदि रोग थे।

उस स्त्री की परीक्षा से साफ-साफ यह हाल मालूम हो रहा था कि उसके प्रकृति विरुद्ध रहन-सहन व औषधि-सेवन के कारण उसका पेट, वड़ी अंतड़ियां, जिगर आदि आकार में बढ़ गए थे जिससे उसकी जननेंद्रियां शिथल ढीली हो गई थीं और इसलिए उसका गर्भाशय भी अपने स्थान पर ठीक तरह से स्थित नहीं था।

यद्यपि आखें देखकर हम लोगों का पूरा-पूरा हाल बता देते हैं और वह हमारी बताई हुई सभी बातें मान भी लेते हैं परन्तु फिर भी वह बड़े-बड़े डाक्टर वैद्यों की जांच पड़ताल पर ही कायम रहते हैं, क्यों कि हम उन्हें बिना दवा की सीधी-सीधी प्राकृतिक चिकित्सा वताते हैं, जिसमें कौड़ी भी खर्च नहीं होती। इसलिए ऐसी सरल चिकित्सा प्रणाली को जंगली समझकर श्रद्धा नहीं रखते और चूंकि डाक्टर, वैद्य उन्हें वड़-वड़े नुस्खे, कीमती दवाइयां बताते हैं या चीर-फाड़ की सलाह देते हैं इसलिए उन पर तत्काल विश्वास कर लेते हैं। खूब !

ऐसी अनेक स्त्री रोगों की जांच तथा चिकित्सा से यह अनु-

भव हो चुका है कि अधिकांश स्त्री-रोगों का कारण यही था कि प्रकृति विरुद्ध भोजन आदि से उनकी अंतड़ियां और पेट-फूल गये थे और ढीले, निकम्मे व मुलायम हो गए थे और परिणाम स्वरूप पेट की सभी नाड़ियां व अन्य अङ्ग ढीले व कमजोर हो गए और इसी से गर्भाशय की थैली कमजोर होकर नीचे तक लटक आई थी और ऐसी स्त्रियां अनेक रोगों से कष्ट पाती थीं।

ऐसे सभी रोगियों ने हमसे यह कहा था कि डाक्टरों ने हमें चीर-फाड़ की राय दी थी और यह कहा था कि पिचकारी से अन्दर की सफाई कराओ और फिर गर्भाशय की नसों को काटकर ठीक स्थान पर सी दिया जावेगा और इलाज हो जावेगा। इसके सिवा कोई इलाज नहीं है।



२६

परन्तु हमारी चिकित्सा प्रणाली तो इन सिद्धांतों को मिथ्या समझती है। ऐसे सभी रोगियों को हम स्पष्ट रूप से कह देते हैं कि जननेंद्रियों का ढीला होना और मांस का बाहर निकल पड़ना और गर्भाशय का लटक जाना तुम्हारे रोगों का कारण नहीं है; बल्कि यह कि तुम्हारे पाचक अङ्ग कमजोर और ढीले हो गये हैं, जिससे तुम्हें

भोजन ठीक-ठीक नहीं पचता, रक्त भी नहीं बनता, पसीना नहीं आता और पाखाना व पेशाब भी खुलकर नहीं होता और इन सब रोगों का सच्चा इलाज यह है कि तुम अपना भोजन यथाशक्ति फल, मेवा, दूध, हरे शाक आदि स्वाभाविक पदार्थों पर रखो धूप और हवा में खुले बदन परिश्रम करो जिससे पाचनशक्ति ठीक होकर शुद्ध रक्त पैदा होने लगे और स्वाभाविक व्यायाम, जल के उपचार आदि से पेट व आंतों को बलवान बनाओ जिससे उनका ढीलापन दूर होकर वे ठीक-ठीक काम करने लगें।

इस प्रकार इलाज करने पर हमने हजारों स्त्रियों के ऐसे रोगों को समूल नष्ट किया है और सबसे बड़ी बात यह थी कि एक भी मामले में चीरफाड़, काटा-कूटी या किसी धातु, जड़ी, क्वाथ, चूर्ण आदि किसी भी प्रकार की दवा नहीं दी गई केवल स्वभाविक उपचार, फलाहार, मिट्टी की पट्टियां, धूप व हवा का नग्न स्नान, प्रकृति जल स्नान, खुली हवा में टहलना, मर्दन आदि के प्रयोग ही किये गए।

इसके विरुद्ध जो स्त्रियां अज्ञान के कारण रोजाना नये वैद्य व डाक्टरों का इलाज दवाइयों से, चीर-फाड़ व पिचकारी आदि से कराती हैं वे असंख्य प्रकार की पीड़ायें सहन करती हैं और धन व स्वास्थ्य का नाश कर रही हैं।

पिचकारियों का इलाज प्रकृति विरुद्ध है और बजाय लाभ के बड़ी हानि होती है, इनसे कोई सुधार नहीं होता उल्टा अन्दर के भागों पर अनुचित दबाव पड़कर सूजन या गिल्टियां आदि उपद्रव हो जाते हैं।

पिचकारी से अन्दर दवा पहुंचाना और भी भयानक उपचार है। गर्भाशय का छीलना या खुरचना आदि से उसमें से मवाद बहना ठीक नहीं हो सकता; बल्कि वह उल्टा कमजोर हो जाता है और फिर उसमें बालक भली-भांति रखने की शक्ति नहीं रह जाती।

कृत्रिम उपायों से गर्भ की थैली को ऊपर उठाकर रखना ऐसा

हो निरर्थक है कि किसी कमजोर भुजा को वलवान वनाने के लिए पट्टी में लटकाकर चलना है। किसी अंग को ठीक करने के लिए उसे काटना या दूर करना आदि से वे अंग कभी ठीक नहीं होते; बल्कि सदा के लिए कमजोर हो जाते हैं। चाकू आदि से चीर-फाड़ हो जाने के बाद क्या वह अंग पहले जैसा सशक्त रह सकता है ?

कितने खेद की बात है कि कमजोर अङ्गों को चीर-फाड़ द्वारा वलवान बनाने की कोशिश की जाती है और उससे भी अधिक खेद की बात यह है कि प्राकृतिक उपचारों के बजाय दवा रूपी जहर से शरीर को नीरोग करने की कोशिश की जाती है, परन्तु अगर ऐसा न किया जावे तो कहां धन से हाथ लगे, बड़े-बड़े दवाखाने कहां से चलें, डाक्टरों व वैद्यों की जेबें कहां से गरम हों।

अनुभव ने बार-बार यह सिद्ध कर दिया है कि सभी प्रकार के प्रदर, हिस्टीरिया, पेट के दर्द, गांठे हो जाना, आंतों का फूल जाना, गर्भाशय के रोग, जननेंद्रियों के रोग, दूध का खराब होना आदि सभी स्त्री रोग इसलिए उत्पन्न होते हैं कि स्त्रियां दिन-रात कैदियों की भांति अंधेरे तंग गंदे मकानों में रहती हैं, कपड़े भारी या कस-कर पहनती हैं, भोजन में अनेक प्रकार के आचार, मिठाई, तेल के पदार्थ व घी से बने पकवान आदि खाती रहती हैं, इसलिए यह वस्तुएं न पचने से वे दिन-दिन बीमार होती जाती हैं और फिर दवा रूपी जहर खाकर तो वे अपने शरीर का और भी अधिक सर्वनाश कर रही हैं।

एक स्त्री को कई दिनों से कब्ज की शिकायत थी। परिणाम स्वरूप उसके पेट में गांठें हो गई और प्रसूत ज्वर प्रदर भी हो गया। कमजोर बहुत हो गई, उस स्त्री ने अनेक वैद्यों की शास्त्रोक्त दवाइयां सेवन की पर लाभ के बदले उल्टी हानि हुई। अन्त में राय यह ठहरी कि आपरेशन कराया जाय परन्तु वह स्त्री चीर-फाड़ कराने को राजी नहीं हुई; बल्कि मर जाना अच्छा समझा। हमारे यहां उस स्त्री की प्राकृतिक चिकित्सा अग्र रीति से की गई—

सुबह १५ मिनट हवा-स्नान (नग्न स्नान), उसके बाद ३० मिनट धूप स्नान, उसके बाद उसे थोड़े रसदार फल दिए जाते थे, दोपहर को १० मिनट प्राकृतिक जल स्नान (टब बाथ) और कुछ मेवा (भीगा हुआ) और दूध दिया जाता था। पेट पर १ घंटे तक मिट्टी की पट्टी बांधी जाती थी। तीसरे पहर वह महिला जंगल में एक बाग में नंगे खले वदन दरख्तों के नीचे घूमती थी। शाम को दूध व फल दिए जाते थे। इस प्रकार ३० दिन में वह स्त्री पूर्ण रूप से रोग रहित हो गई और आज भी वह जीवित है और प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली व उसके प्रचारकों की हृदय से कृतज्ञ है। इसी प्रकार कई स्त्रियों के रोग श्वेत प्रदर तो केवल मिट्टी की पट्टियों व फलाहार से ही समूल नष्ट चुके हैं।

जो महिलाएं भाग्यवश प्राकृतिक चिकित्सा की शरण में आती हैं उनके सभी रोग समूह बड़ी आसानी से दूर हो जाते हैं। भिन्न-भिन्न अङ्गों के दर्द व पीड़ाएं तो मालिश व नैसर्गिक व्यायामों से ही दूर हो जाते हैं और रक्त का बनना, मंदाग्नि और कब्ज की शिकायतें प्राकृतिक जल स्नान व फलाहार आदि से दूर हो जाते हैं। अङ्गों का ढीलापन व नसों की कमजोरी, व्यायाम व आसनादि से दूर हो जाते हैं और प्रदर आदि शिकायतें दूध पीने व मिट्टी की पट्टियों से दूर हो जाती हैं।

जिन्हें हमारे कथन पर विश्वास न हो वे परीक्षा करके देख लें। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि जो स्त्रियां प्रकृति माता के सरल अचूक उपचारों को ठुकराकर दवा के झूठे भंवर जाल में फंस गई या अज्ञान रिश्तेदारों के कहने में आकर आपरेशन के भयानक व मिथ्या उपचार करा चुकी हैं वे अब तक अपने किये पर पछता रही हैं।

डाक्टर लोग सरके हुए गर्भाशय को ठीक स्थान पर रखने के लिए पेट की सामने की झिल्ली से उसे सी देते हैं पर वह बहुधा उस जगह ठहरता ही नहीं। टांके ढीले हो जाते हैं या टूट जाते हैं और

अगर वह कभी उस स्थान पर रह भी गया तो जब बेचारी स्त्री गर्भवती होती है तो उसकी बड़ी मिट्टी पलीत होती है और गर्भ की थैली फूलती है, इधर-उधर डुलती है जिससे उस स्त्री को भारी यातनाएं भुगतनी पड़ती हैं।

वास्तव में चीर-फाड़ से न तो कोई शरीर की सफाई ही हुई और न दवा या खराब भोजन से एकत्र हुए मल पदार्थों को ही निकाला गया; बल्कि परिणाम उल्टा यह होता है कि हृदय कमजोर हो जाता है। आपरेशन कराने वाले का जीवन बिगड़ जाता है।

जरा भी इस बात को डाक्टर लोग नहीं सोचते कि किसी भी अङ्ग, गर्भाशय, जनेन्द्रिय, आदि को चीर-फाड़ का मस्तिष्क पर तत्काल व बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है, क्योंकि शरीर का समस्त सूक्ष्म नाड़ी-जाल बिल्कुल एक-दूसरे स्थान से बंधा हुआ है—अलग कोई नाड़ी नहीं है।

इसलिए हर आपरेशन का स्त्री के कोमल हृदय व मस्तिष्क पर बड़ा घातक प्रभाव होता है और ऐसी स्त्रियां जिनके अंगों का आपरेशन हो चुका है, चिड़चिड़ी या पागल हो जाती हैं। ऊंचे दर्जे के विद्वान सर्जन खूब समझते हैं कि हर चीर-फाड़ का परिणाम बड़ा ही घातक होता है पर अपने पेशे व धनसंचय की लालसा के वश होकर वे इन बातों पर ध्यान नहीं देते।

मासिक-धर्म की खराबियां

वास्तव में मासिक-धर्म एक ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा स्त्री हर महीने बहुत अधिक मात्रा में मल-पदार्थ व विजातीय वस्तुएं बाहर निकालती रहती है। जिन स्त्रियों का रक्त शुद्ध होता है, शरीर में विजातीय द्रव्य अधिक नहीं होता उनको मासिक-धर्म में कोई पीड़ा नहीं होती, बड़ी सरलता से हो जाता है।

परन्तु साधारण तौर पर हमारा महिला-समाज प्रकृति के नियमों

को भंग करने की आदी हैं। वे मसालेदार खाना खाती हैं, खराब चीजें पीती हैं, अधिक भारी व तंग कपड़े पहनती हैं, गन्दे घरों में रहती हैं जरा-जरासी शिकायतों में दवा लेती रहती हैं इससे उनके गुरदे, मसाने अंतड़ियां, खाल आदि बेकार होकर अपना काम बन्द कर देते हैं।

जब तक ऐसी स्त्रियों को मासिक-धर्म ठीक होता रहता है तब तक तो सब काम ठीक-ठीक चलता रहता है लेकिन जब जठराग्नि कमजोर हो जाने से मासिक-धर्म बन्द हो जाता है या बहुत कम होता है तो वह विष, जो निकला करता था, शरीर में जमा होने लगता है और अनेक रोग समूह उत्पन्न होने लगते हैं।

यह जहरीले पदार्थ समस्त शरीर को दूषित बनाते हुए मस्तिष्कको ओर नाड़ी समूह को नष्ट करने लगते हैं और हिस्टीरिया आदि रोग हो जाते हैं। ऐसे सभी स्त्री रोगों का आखिर सही और अचूक इलाज कौन-सा है।

इनका सच्चा इलाज दवा या चीरफाड़ नहीं है। रोशनी, धूप और हवा के नग्न स्नान, प्राकृतिक जल स्नान और मालिश से मुर्दा चमड़े में नई जान पैदा हो जाती है।

इसी प्रकार फल, शाक, दूध, मेवा आदि खाने से, उचित व्यायाम से और मिट्टी की पट्टियों से आंतें, पेट, जिगर, गुर्दे सब अपना काम ठीक-ठीक करने लग जायेंगे। इलाज करने वाले के शुद्ध हृदय, सच्चे प्रेम आदि से रोगी शरीर पर बड़ा भारी उत्तम आरोग्यदायक प्रभाव पड़ेगा और वह शीघ्र स्वस्थ हो जायगा।

आइये अब हम आयुर्वेद चिकित्सा एलोपैथिक आदि की प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली से तुलना करें इनमें कौन-सी सरल व अचूक है।

यह चिकित्सा प्रणाली लक्षणों पर निर्भर है। प्रकृति विरुद्ध आहार-विहार आदि से थके हुए कमजोर अंगों को अनेक प्रकार की जहरीली दवाइयां ठूंस-ठूंसकर जुलाब देकर, अर्क शराब पिला कर, पाचक चूर्ण खिला कर, पसीना लाने वाली दवा काढ़े आदि देकर

धातु, रसायन, टानिक आदि खिलाकर नष्ट कर दिया जाता है। प्रत्यक्ष में तो इन घातक दवाइयों का परिणाम क्षणिक बल व सुधार जान पड़ता है परन्तु इनका असर उतर जाने के बाद शरीर अधिक कमजोर, थका हुआ, अनेक दीर्घ रोगों का घर बन जाता है। अगर किसी के सिर में या नसों में पीड़ा होती है तो डाक्टर-वैद्य लोग अफीम का सत आदि नशीली वस्तुएं या बाम, तेल आदि से उनके दूर करने का यत्न करते हैं। अगर किसी का हृदय कमजोर है या धड़कता है तो जहरीली पौष्टिक दवाइयां देकर उसे एक तरह का चाबुक-सा मारने की कोशिश की जाती है और अगर दमा है तो धातु दवा खिलाकर फेफड़ों में ही दबाया जाता है।

इस प्रकार रोगों के वास्तविक कारणों को दूर करने के स्थान पर डाक्टर-वैद्य रोगों के लक्षणों को ही तुरन्त दबा देना जानते हैं। शरीर में पहले से हो खराब खुराक से काफी मैल (जहर) भरा रहता है। यह लोग दवा रूपी जहर और उसमें भरकर रोगियों के जीवन बिगाड़ देते हैं और पहले से भी शरीर बिगड़ जाता है। "मर्ज बढ़ता गया ज्यूं ज्यूं दवा की" वाली कहावत अक्षरश: सत्य है। इन्हीं दवाओं के कारण-जगह जगह पेचिश, शिर दर्द, गठिया, लकवा, दमा, चिन्ता, पागलपन, कुष्ठ आदि रोग बढ़ते चले जा रहे हैं।

पहले पहल वैद्यराज इलाज करने आते हैं। जब वे खूब दवाइयां देकर थक जाते हैं, जब उनकी जेबें फीस व दवा की कीमतों से भर जाती हैं और जब उनके बस का रोग नहीं रहता तो सिविल सर्जन साहब को बुलाया जाता है और 'कांचो' मुद्राएं भेंट की जाती हैं और जब उनसे भी कुछ नहीं होता तो यह समझ लिया जाता है कि रोगी के भाग्य में ऐसा ही लिखा था। इलाज तो बहुत किया पर ईश्वर ने टेक नहीं रखी। आए दिन संसार में यही घटनाएं देखते हैं, वास्तव में बात तो यह है कि हमारे देश में लोगों को आरोग्य के विषय में कोई शिक्षा दी ही नहीं जाती। चाहे कितने हो योग्य व्यक्ति हों शरीर शास्त्र से तो वह अनभिज्ञ ही रहेंगे।

अगर कहीं शिक्षा दी भी जाती है तो शरीर व कपड़ों की सफाई आदि ऊपरी बातें बता दी जाती हैं और खास कर यह सिखाया जाता है कि बीमार होने पर निकट के अस्पताल में जाकर रोग परीक्षा कराओ और डाक्टर वैद्य का इलाज कराओ। भला ऐसी शिक्षाओं से कभी भलाई की आशा की जा सकती है।

अगर हमारे विद्यार्थियों को आरम्भ से ही स्वाभाविक जीवन के लाभ सिखाए जावें और दवाइयों के भूत से बचाया जाय तो दुनियां में इतने रोग समूह देखने को न मिलें। मगर आरम्भ से ही उन्हें टीका, इंजेक्शन आदि से बुरी तरह खराब कर दिया जाता है। माताएं छोटे बच्चों को हर्र के जुलाब व दवा, घूटियां देकर उनके नन्हें सुकुमार शरीरों को नष्ट कर देती हैं। चेचक के टीके लगाकर भावी सन्तान को नामर्द, मूर्ख, कुरूप व अल्पजीवी बनाया जाता है।

तीव्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

पिछले अध्यायों में हम प्राकृतिक चिकित्सा व स्वभाविक रहन-सहन की महिमा का भली-भांति बर्णन कर चुके हैं और यह भी दिखा चुके हैं कि वास्तव में नए व पुराने सभी रोग प्राकृतिक चिकित्सा से अवश्य ठीक हो जाते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पुराने रोग तो अधिकांश दवाइयों के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं परन्तु नये व तीव्र रोग केवल शरीर की सफाई के लिए किये गए प्रकृति के जोरदार यत्न ही हैं और इनके बजाय डरने से इनका स्वागत करना चाहिए।

वास्तव में प्रकृति बड़ी न्याय प्रिय है और दयालु भी है। अन्न, मांस, नशा, मसाले, मिठाइयां, दवा आदि चीजें खाकर अपने शरीर में मल पदार्थों का संचय करते रहते हैं। प्रकृति इसके विरुद्ध है। वह हमारे शरीर की सफाई के लिए नई व तेज बीमारी उत्पन्न करती है और प्रकृति के इस नियम को सत्य व अटल मानने से यह भी सिद्ध होता है कि सभी नई व तेज बीमारियों को प्रकृति के अचूक उपचारों द्वारा अवश्य दूर किया जा सकता है।

सब प्रकार के बुखार, मलेरिया, मोतीझारा, प्लेग, हैजा, सूजन, दस्त, कै आदि सभी नई व तेज बीमारियों को पूर्ण सफलता पूर्वक, सरलता से, अल्प समय में, बिना कुछ खर्च किए, बिना किसी डाक्टर-वैद्य को बुलाए हर एक मनुष्य ठीक कर सकता है और इसका अनुभव सैकड़ों वर्षों में जरमनी, अमेरिका, इङ्गलैंड आदि में लाखों रोगियों पर किया जा चुका है और स्वयं लेखक ने गत १० वर्षों में यह अनुभव किया है कि इस चिकित्सा प्रणाली के चमत्कार एवं सफलताएं अलौकिक हैं।

एक सबसे अच्छी बात तो इस चिकित्सा प्रणाली में यह है कि रोग के पहले लक्षण उत्पन्न होते ही यह शुरू को जा सकती है और बिना निदान किए इसमें पूर्ण सफलता मिल सकती है, क्योंकि इसमें सब रोगों का इलाज एक ही है।

हमारे डाक्टर साहब और वैद्यराज जी को इन रोगों की चिकित्सा के लिए उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब तक कि रोग का पूर्ण निदान, पूरी जांच या एक्सरे न हो जाय और जब तक उसका विशेष नाम न रखा जावे और कई मामलों में तो रोग के पकने तक भी ठहरना पड़ता है। तब तक घर वालों पर रोब जमाने के लिए अथवा पैसे बनाने के लिए यह लोग काल्पनिक अनुमानी चिकित्सा करते रहते हैं, ताकि घर वाले यह समझें कि कुछ कर तो रहे हैं।

परन्तु इस धींगा-धींगी व काल्पनिक चिकित्सा में बहुधा बड़ी-बड़ी हानियां भी हो जाती हैं और अक्सर रोगियों के प्राण सङ्कट में पड़ जाते हैं जैसे कि अकसर लोग तेज बुखार में मल को कच्चे ही विरेचन द्वारा निकालते हैं और उससे अकसर रोगी बेमौत मर जाते हैं।

बहुधा ऐसा होता है कि रोग कुछ होता है और चिकित्सा कुछ ही की जाती है, जिससे कभी रोगी की भलाई हो नहीं सकती उल्टो हानि ही होती चली जाती है और एक बार रोग बिगड़ जाने के बाद संभालना बड़ा कठिन हो जाता है इसलिए मेरी राय में अपनी भलाई

चाहने वाले रोगियों को कभी ऐसी काल्पनिक व लक्षणों पर निर्भर रहने वाली झूठी चिकित्सा प्रणालियों में नहीं फंसना चाहिए।

भला जरा आप ही सोचिए कि यह आयुर्वेदिक व डाक्टरी इलाज कितने अविश्वसनीय और असंतोषजनक हैं। इनमें कितना खरचा व जेरबारी होती है। इसके विपरीत प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली कितनी सरल, वैज्ञानिक, सही और अचूक प्रणाली है। इसके गुणों को देखिए किसी रोग परीक्षा की आवश्यकता ही नहीं है, चाहे कोई भी रोग हो आंतों के रोग, बुखार, चेचक, जुकाम, काल ज्वर आदि कुछ भी क्यों न हो सभी का एक इलाज है एक ढंग है कोई भी फरक नहीं है।

यदि रोगों के लक्षण आरम्भ होते ही प्राकृतिक चिकित्सा की जाय तो रोग पूर्ण उग्र रूप धारण न करके पहले ही ठीक हो जाते हैं, जबकि आयुर्वेदिक व डाक्टरी में अक्सर जांच व रोग परीक्षा में ही रोगी पूरे हो जाते हैं, इलाज तो दूर रहा। नीचे की पंक्तियों में प्रकृति के भिन्न-भिन्न उपचारों का पूर्ण रीति से वर्णन किया जावेगा, जिनको समझकर हर एक मनुष्य पूर्ण सफलता पूर्वक सभी प्रकार के रोग मिटा सकेगा, कम से कम ९६ फीसदी सफलता अवश्य ही मिलेगी, इसके सिवा इस चिकित्सा प्रणाली से जो रोगी अच्छे किए जाते हैं, उनके शरीर में बाद में कोई रोग नहीं रहते, पूर्ण आरोग्य की प्राप्ति होती है, मगर औषधियों या चीर-फाड़ से जो रोग ठीक किए जाते हैं, उनमें शरीर विजातीय द्रव्य से पूर्ण होकर दीर्घरोगों का शिकार बन जाता है, जिससे बेचारा रोगी जन्म भर दुःखी रहता है।

प्राकृतिक उपचार

प्रकृति के सर्वश्रेष्ठ उपचार बिना पैसा-कौड़ी खर्च किए घर पर सबको मिल सकते हैं। वे ये हैं : हवा, उपवास, पानी, मिट्टी व सच्चा स्नेही हृदय। मुझे पूरा व पक्का भरोसा है कि सभी तेज बीमारियों के लिए प्रकृति माता की यह मुफ्त व शर्तिया दवाइयां ही काफी हैं—

अगर आरम्भ से ही इनका उचित प्रयोग किया गया हो। ऐसा कोई रोग नहीं है जो इनसे ठीक न हो सके, परन्तु जैसा मौका हो आवश्यकतानुसार हम मालिश, इच्छा शक्ति या प्रकृतिदत्त वनस्पतियों या तेलें आदि का उपयोग कर सकते हैं।

साफ ताजा हवा से इलाज

चाहे रोग कोई भी हो साफ हवा हर समय रोगी को मिलना परम आवश्यक है। हम भोजन के बिना कई सप्ताह जीवित रह सकते हैं और पानी के बिना भी दो-चार दिन रह सकते हैं, परन्तु हवा के बिना हम चंद मिनट भी जिन्दा नहीं रह सकते। अग्नि को ही लीजिए बिना हवा शीघ्र ही बुझ जाती है, इसी प्रकार हमारा जीवन-दीप भी हवा के बिना शीघ्र बुझ जाएगा।

तेज बीमारियों में शरीर बड़े जोरों से अन्दर की सफाई में लगा रहता है और अन्दर गर्मी बढ़ी हुई रहती है और फेफड़े, हृदय आदि खास तौर से थके हुए रहते हैं, मल-पदार्थों का संघर्षण होता है और विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर निकाले जाने की कोशिश की जाती है। इन अवस्थाओं में शरीर को नाक व रोम कूपों में होकर दोनों प्रकार शुद्ध ताजा हवा मिलना अत्यन्त आवश्यक है।

मगर हमारे वैद्य बन्धु, हकीम साहब व डाक्टर महोदय अभी तक प्रकृति के उस अचूक, सस्ते, सरल किन्तु रामबाण नुस्खे—ताजा हवा—को महिमा को नहीं समझ पाए हैं। रात-दिन हम लोग अपने पड़ोस व परदेश में रोगियों के कमरों की हालत देखकर बड़े दुःखी होते हैं।

रोगियों को हवा से खास तौर पर दूर रखा जाता है। अव्वल तो हम लोगों के मकान ऐसे गंदे, तंग होते हैं कि हवा और धूप वहां जाती नहीं और अगर किसी कमरे में सौभाग्य से खिड़कियां मौजूद

भी हुईं तो बीमार के लिए तो वे सभी खिड़कियां व दरवाजे तक वैद्य, डाक्टरों की आज्ञा से वन्द कर दिए जाते हैं।

लोग इतना भी नहीं समझते कि पत्थर, चूने, कलई आदि के बने हुए पक्के मकानों की दीवारें वैसे ही दिन-रात जहरीली गैस निकालती रहती है और फिर खिड़कियां वंद कर देने पर तो वह जहरीली गैस कमरे में ही रह जाती है और बेचारे गरीब बीमार उस जहरीली हवा को दिन-रात श्वास के जरिये अन्दर लेते हैं, उतनी ही जहरीली गैस उनके बदन से खाल में होकर निकलती रहती है और कुछ नाक में से (श्वास से) होकर निकलती रहती है और कमरे का जहरीली गैस साथ, बस फिर खैर कहां से होगी ?

बड़े-बड़े सुधार चिकित्सा प्रणाली में किए जाते हैं, पर रोगियों के प्रति हमारे अस्पतालों, औषधालयों व घरों में जो यह अन्याय किया जा रहा है, वह कोई भी दूर करने की कोशिश नहीं करते।

जैसा कि अज्ञानवश जनसाधारण समझे हुए हैं—बीमार के कमरे में ठण्डी हवा के झोंके आना बुरा नहीं है, बड़ा अच्छा है। खासकर बुखार में गर्मी बढ़ी हुई हालत में ठण्डी हवा का झोंका बड़ा ही आवश्यक व परम लाभप्रद है। वास्तव में भयानक व प्राणघातक तो नाक से निकली हुई जहरीली हवा है, जो रोगियों को मार डालती है।

मेरे कहने का यह अर्थ नहीं है कि सख्त जाड़े में भी सारी खिड़कियां और दरवाजे खोलकर रोगी को जाड़े में ठिठुरने दिया जाए और वह कष्ट पावे। मतलब यह है कि गर्मी के मौसम में तो सभी खिड़कियां, दरवाजे दिन-रात ही खुले रहने चाहिए। जाड़े या बरसात में या तो इस ढंग से खिड़कियां व दरवाजे खुले रहें कि साफ, ताजा हवा भी अन्दर आती रहे और रोगी शरीर पर भी एकदम जोर से सीधी हवा न लगे। जाड़े में हल्का-सा पर्दा देना काफी होगा। एक घण्टे या आधे घण्टे से कमरे के खिड़की, दरवाजे जाड़े में

भी एकदम खोल देने चाहिए। बाद पांच मिनट के बन्द करा दिए जा सकते हैं, जिससे उतनी देर में इकट्ठी हुई जहरीली हवा बाहर निकल जाए और ताजा हवा अन्दर आ जाए।

मैं पहले अपनी पुस्तक "रोशनी, धूप, हवा व आरोग्य" में भली-भांति हवा के नग्न स्नान की महिमा और उसकी विधियां बता चुका हूं, पर वहां इतना अवश्य ही लिखना पड़ता है कि हर एक तेज बीमारी में चाहे उसका कुछ भी नाम क्यों न हो, रोगी को कभी-कभी कुछ मिनट नंगे बदन हवा जरूर लगाई जावे और साथ ही धूप भी दस-बीस मिनट या आध घण्टे नंगे बदन पर सीधी आने दी जावे, इससे रोगी को अपार लाभ होगा। डरने की आवश्यकता नहीं है।

बीमारों को खूब कपड़े पहनाकर, उढ़ाकर व अंगीठी रखकर अधिक गर्म रखने का मैं घोर विरोधी हूं, खासकर छोटे नौजवान लड़कों के लिए तो ऐसा करना अक्सर प्राणघातक हो जाता है। आये दिन हम देखते हैं, बच्चों को तेज बुखार की हालत में खूब कपड़ों से लपेटा जाता है और भारी गद्दों पर सुलाकर मोटी रजाई उढ़ाई जाती है और ख्याल यह रखा जाता है कि कभी हवा का स्पर्श भी न हो जावे, वरना बड़ी हानि हो जाएगी। परन्तु यह प्राणघातक भूल है, ऐसा करने से बुखार आदि जल्दी ठीक नहीं हो सकते।

तीव्र रोगों में स्वाभाविक भोजन

तेज बीमारियों के लक्षण, जैसे सिर दर्द, हाथ-पांव टूटना, जाड़ा-सा लगना या दर्द आदि होना, इनके उत्पन्न होते ही अपना भला चाहने वाले रोगी को चाहिए कि वह एकदम सब प्रकार का भोजन खाना छोड़ दे और भोजन उस समय तक बिल्कुल जब तक बुखार बिल्कुल दूर न हो जाय और भूख खूब खुलकर न लगे। ऐसा करने से मृत्यु बिना समय के हरगिज न आवेगी।

परन्तु खास-खास मामलों में, जहां रोगी दुर्बल हो या बीमारी

अधिक दिन चले और रोगी भूख से व्याकुल हो उठे, उस समय बीच-बीच में रोगी की भूख देखकर उसकी इच्छानुसार बहुत हीं थोड़ी सूक्ष्म मात्रा में गाय या बकरी का दूध पानी मिलाकर अथवा फलों का रस, मुनक्का या रसदार हल्के फल, नीबू का रस या थोड़ा साबूदाना, आलू या हरे शाक दिए जा सकते हैं।

पानी भी रोगियों को उनकी इच्छानुसार पिलाना चाहिए, न तो प्यास से कम पिलाना चाहिए, जैसा कि लोग करते हैं कि बीमार को कम पानी पिलाते हैं, जो महा मूर्खता है और न ऐसा ही चाहिए कि खामखां उसे प्यास लगे बिना प्यास से ज्यादा पिलाया जावे। इच्छा व प्यास होने पर पानी न पिलाने से परिणाम मूर्छा या प्राणों का नाश भी हो सकता है और आवश्यकता से अधिक पिलाने से रोगी कमजोर हो जाएगा व रोग दीर्घ बन सकता है। पानी गरम या औटाकर नहीं पिलाना चाहिए, इससे बड़ी हानियां होती हैं। लोगों की यह धारणा एक भ्रम है कि ठण्डे पानी से रोग बढ़ जाते हैं। वास्तव में शुद्ध, ताजा पानी ही सबसे अच्छा गुणकारी होता है। साथ ही बर्फ पिलाना या बर्फ से ठण्डा किया हुआ पानी या बहुत अधिक ठण्डा पानी पिलाना भी मूर्खता है।

फलों का रस भी प्यास बुझाने के लिए बहुत ही अच्छी वस्तु है, वह अमृत समान दवा है। परन्तु अजीर्ण की हालत में केवल पानी ही पिलाना चाहिए। सोडा, लेमन व अन्य बालरी वाटर आदि वस्तुएं प्रकृति के विरुद्ध हैं, इसीलिए मैं कभी इनकी राय नहीं दे सकता।

तीव्र रोगों में उपवास या लंघन

हर एक तेज बीमारी में उपवास का महत्त्व बहुत अधिक है। खासकर अजीर्ण से उत्पन्न होने वाले व पेट, आंतों के रोग में, बुखारों में उपवास या लंघन उस समय तक जारी रहना चाहिए, जब तक बुखार के सब लक्षण दूर न हो जाएं।

लोगों की यह भूल प्राणघातक व बड़ी मूर्खतापूर्ण है जो यह ख्याल करते हैं कि न खाने से कमजोरी आ जाएगी, बिना खाये कैसे प्राण रहेंगे आदि। सबसे भयानक भूल तो लोगों की यह है कि वे अन्नमयी प्राण समझकर बुखारों में रोगियों को रोटी-दाल आदि पदार्थ भी खिला देते हैं और साथ ही दवाइयां भी ठूंसते हैं कि जिससे शक्ति बनी रहे, रोग दूर हो जाए, परन्तु यह बिल्कुल गलत ख्याल है और अनेक बीमारी इन भूलों के कारण घर वालों व चिकित्सकों की जान को रोकर सदा के लिए चल बसे हैं।

जरा एक रोगी की चारपाई के पास चलकर वहां का दृश्य तो देखिए। बीमार की उसके रिश्तेदार, दोस्त अज्ञानवश कह रहे हैं कि भाई थोड़ा-सा तो जरूर खाओ, थोड़ा जरूर पिओ, वरना कमजोर हो जाओगे, देखो डाक्टर साहब व वैद्य जी भी तो आज्ञा दे गए हैं। आखिर उनका तो कहना मानना ही चाहिए!

रोगी को रोग बिल्कुल नहीं है, घोर अजीर्ण हो रहा है, पर उसे जबरन कुछ भोजन या दवा खिला दी जाती है और उसका पेट उसे स्वीकार नहीं करता है और उसे उल्टी के जरिए बारह फेंक देता है।

ऐसा होने पर उसे पाचक चूर्ण, हाजमे की दवा आदि दी जाती है। वास्तव में तेज बीमारियों में चाहे वह कुछ भी हो शरीर भोजन पचाने की क्रिया ही बन्द रखता है और पूण रूप से अन्दर की सफाई में लगा रहता है, इसीलिए भूख बिल्कुल बन्द हो जाती है। जीभ सफेद होना, उल्टी आना, कब्ज होना, पेचिश होना, पेट फूलना आदि इस बात के सूचक हैं कि पाचक अंग रोग पदार्थों को बाहर फेंक रहे हैं और इसीलिए भोजन ग्रहण करने व पचाने में असमर्थ हैं।

आप लोगों स्पंज (पानी सोख) देखा होगा। उसे पानी में डालने से वह पानी खूब सोख लेगा और फूल जाएगा, फिर निचोड़ने से

पानी निकलकर वह मुरझा जाएगा । इसी प्रकार पेट, आंतें, जिगर आदि भोजन को पचाकर सदा उसका रस ग्रहण किया करते हैं, परन्तु तीव्र रोग होनें पर यह क्रिया बिल्कुल उल्टी हो जाती है अर्थात् वे पाचक अंग बजाय भोजन ग्रहण करने के मल-पदार्थ अपनें अन्दर से निचोड़कर अधिक मात्रा में बाहर फेंकते रहते हैं और इसीलिए पाचनक्रिया बन्द रहती है ।

सारा शरीर आराम करता है, कमजोर व दुबला हो जाता है और सारी शक्तियां शरीर की सफाई में लगी रहती हैं, इसीलिए भूख नहीं लगती है ।

इसलिए जो खूराक तेज बीमारियों में खाई जाती है, उसके भीषण परिणाम निम्न होते हैं—

१—अव्वल तो भोजन पचता नहीं है, न रस बनता है, न रक्त; बल्कि वह पेट में पड़ा सड़ता है, खराब होता रहता है और शरीर को जहर से भर देता है ।

२—शरीर के अन्दर होनें वाले सफाई के काम में भारी बाधा डालता है और बलपूर्वक पेट, आंतों से पाचन का काम लिया जाता है ।

३—जठराग्नि को शरीर के मल-पदार्थों से लड़ने-झगड़ने के काम से हटाकर इस सड़े हुए भोजन को बाहर फेंकने में लगाती है ।

लेखक ने आंखों से एक ही नहीं सैकड़ों रोगियों को देखा है जिन्होंने अज्ञानवश अथवा अपने मित्रों या घर वालों का कहना मानकर अनिच्छा से बिना भूख तेज बीमारियों में कुछ खा लिया और उनके रोग बिगड़कर वे बेमौत मर गये । इसलिए हर एक पाठक से मेरी प्रार्थना है कि इस भीषण कार्य से सदा ही बचें । जब तक अजीर्ण रहें, बुख़ार का अंश रहे, भूख न सतावे चाहे सारा संसार भी कहा करे पर बिल्कुल भी कुछ न खाना चाहिए । चाहे जितनें

दिन लगें, चाहे डेढ़ महीना ही क्यों न हो। लेखक ने अपनी चिकित्सा में यह अनुभव किया है कि कई रोगी तो मोतीझारा आदि रोगों में सात सप्ताह से भी अधिक केवल पानी या थोड़े फलों के रस पर रहे थे और बाद में उनका वजन बहुत अधिक बढ़ गया था।

खासकर मोतीझारा, मियादी बुखार, हैजा, पेचिश, अंत्रवृद्धि, सूजन आना, अजीर्ण, प्लेग आदि रोगों में तो पूर्ण लंघन ही रखा जाना चाहिए। जब तक सूजन, बुखार आदि पूरी तरह अच्छे न हो जायें तब तक दूध भी नहीं देना चाहिए और इसके बाद भी कुछ दिन दूध व फल ही देना चाहिए। अगर इन रोगों के बाद में जल्दी करके जो रोगी अनाप-शनाप चाहे जो खाने लग जाते हैं उनको बाद में बहुत पछताना पड़ता है और उनके बड़ी-बड़ी शिकायतें पैदा हो जाती हैं।

बहुत दिन लंघन कर चुकने पर उसको तोड़ते समय बड़ी सावधानी रखने की आवश्यकता है। कुछ घण्टों से हल्का पथ्य, भोजन, दूध, फल, शाक आदि देने चाहिए। पेचिश व मोतीझारे के लंघन के बाद गाय या बकरी का दूध, कुछ फल, हरे शाक या साबूदाना अथवा मूंग की दाल का पानी दिये जा सकते हैं जिससे थकी हुई आतें व मेदा फिर काम करने लग जायेंगे। फिर धीरे-धीरे कुछ दिन बाद दलिया, खिचड़ी, दाल, मूंग व सूखी रोटी देनी चाहिए।

वास्तव में तो इन रोगों में व बड़े लंघन के बाद सदा ही रोग की अवस्था देखकर ही रस पान, फल, नारङ्गी, अंगूर, सेब, नाशपाती वगैरह तथा रसदार शाक-भाजी, टमाटर, अजवायन, खुरासानी, अथवा गोभी, करमकल्ला, कच्चा प्याज (कांदे), ककड़ी आदि खाना चाहिए। उनमें कोई तेल-मसाले, घी या और चीजें मिलाना या खूब पकाकर नहीं खाना चाहिए कच्ची खाई जावें।

तीव्र रोगों में जल चिकित्सा या पानी का इलाज

हमारा यह [दावा और दृढ़ विश्वास है कि तेज बीमारियों में

जल के प्रयोगों से वे सभी बातें ठीक होती हैं जिन्हें हमारे वैद्यराज और डाक्टर साहब दवाइयों के द्वारा करते हैं और साथ ही हमारा यह भी दावा है कि पानी के प्रयोगों से सब रोगों का इलाज बड़ी ही जल्दी, आसानी से, बिना खतरे के व बिना हानि किये हुए हो जाता है। जैसा किसी भी दवा से नहीं होता।

इन तेज बीमारियों में ये बातें पूरी तरह ध्यान में रखना आवश्यक हैं—

१—भिन्न-भिन्न अंगों के दर्द व पीड़ा को रोकना व घबराहट को हटाना चाहिए।

२—खाल के छिद्रों को खोलकर उनके द्वारा शरीर की गरमी निकालकर अंदरूनी गरमी को अत्यधिक बढ़ने से रोकना चाहिए।

३—शरीर के मल निकालने वाले अङ्गों की क्रिया को बढ़ाना चाहिए और इस प्रकार शरीर से मल पदार्थों को बाहर निकाल कर शरीर शुद्ध करना चाहिए।

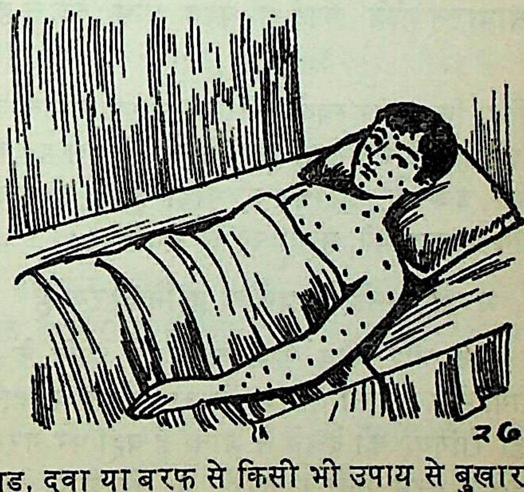
ये सभी बातें पूर्ण रूप से पानी के सरल प्रयोगों से होती हैं। चाहे रोग सरदी, जुकाम हो चाहे चेचक, मोतीझारा आदि हो नीचे लिखे जल के प्रयोग अकेले या अन्य प्रयोगों के साथ रोगी की अवस्था व ऋतु अनुसार सदा ही लाभप्रद सिद्ध हुए हैं और होंगे।

जल स्नान व जल क्रियायें

तेज बीमारियों में जब कभी गरमी (टेम्प्रेचर) अधिक बढ़ जाय तो उस समय ताजा जल का फव्वारा दो या एक मिनट उस पर छोड़ा जाय परन्तु अगर रोगी कमजोर हो और बिस्तर पर से न उठ सके तो कोई रेजी या मलमल को गीला करके निचोड़ कर सारे शरीर को बार-बार पोंछना चाहिए और सुखाकर पुनः गरमी लाना चाहिए। ऐसा करने में खून की गरमी कम हो जायगी और मल-पदार्थ

आसानी निकल जायेंगे। इससे बुखार अधिक तेज नहीं होगा। मगर यहां भी यह ध्यान में रखना जरूरी है कि रोगी की इच्छा के विरुद्ध यह क्रिया नहीं की जावे। पानी बहुत ही ठण्डा भी न हो, ताजा हो।

यहां पर यह बड़ी सावधानी रखनी चाहिए कि ठण्डे पानी का स्नान या गीली चादर या जल के प्रयोग बहुत अधिक देर तक नहीं किए जावें और पानी बहुत अधिक ठण्डा न हो अन्यथा एक दम बुखार उभरकर भारी हानि हो सकती है। खासकर जो रोगी कमजोर हों या जिनमें खून की कमी हो या जो जल की क्रियायें न करना चाहें, उन पर यह क्रियायें नहीं करनी चाहिए। साथ ही इन जल की क्रियाओं के बाद सदा कम्बल या रजाई में लपेटकर या धूप में लिटाकर रोगी को गरमी अवश्य पहुंचाई जावे।



२७

चीरफाड़, दवा या बरफ से किसी भी उपाय से बुखार को दबाना हानिकारक है। हमें केवल इतना करना चाहिए कि बुखार को सम अवस्था पर रखें। अत्यधिक परिणाम पर न पहुंचने दें। ऐसा करने से सूजन व बुखार धीरे-धीरे स्वयं शरीर को लाभ पहुंचाते हुए उतर जायेंगे।

हम अपने चिकित्सालय में सदा ही प्राकृतिक अवस्था में ही जल को प्रयोग में लाते हैं अर्थात जैसा नल व कुवें से निकलकर आता है कुछ नहीं मिलाते। वास्तव में जिस प्रकार गरम पानी शरीर के लिए हानिकारक होता है वैसे ही वरफ या वरफ का पानी दोनों शरीर को कमजोर व रक्तहीन बना देते हैं और सूजन व बुखार समय से इनसे दबाई जाती है जो हानिकारक है। इसलिए बर्फ या ठण्डे जल से बुखार को दबाना या रोकना बुरा है। उदाहरणार्थ अगर बुखार अधिक होकर १०४ डिगरी हो जाय तो ठण्डी हवा के स्नान या ठण्डे जल के प्रयोगों द्वारा आप उसे १०२ डिगरी तक ले आवें। लेकिन अगर बुखार १०२ डिगरी हो तो उसे १०१ या १०० डिगरी से अधिक कम मत करो।

अगर बुखार १०७ या १०१ डिगरी हो तो साधारण नग्न हवा स्नान या साधारण गीले कपड़े से बदन पोंछ देने से ही ठीक हो जायगा।

याद रखिए कि बुखार स्वयं शरीर की सफाई व इलाज करता है इस लिए कभी भी उसे रोकने या दबा देने की कोशिश मत करो। खास कर दवा, काढ़े, इंजेक्शन, मिक्चर या झाड़ा-फूंकी, डोरा जंतर आदि से सिवा हानि के लाभ की आशा रखना मूर्खता है।

गरम पानी के प्रयोग हानिकारक हैं

हर एक सूजन, चोट, मोच, कुचलना व दर्द आदि के लिए गरम पानी के प्रयोग, सेंक लगाना आदि बिल्कुल गलत व हानिकर होते हैं। जहां कहीं रोगियों को देखने मैं जाता हूं वहीं पर गरम पानी की भरी हुई बोतलें व गरम पानी के कपड़ों से सेंक आदि करते देखता हूं। सूजी हुई आंतों गुरदे आदि की पीड़ाओं पर गरम रबड़ की थैलियां आदि से सेंक करके सूजे हुए स्थानों को हर समय गरम रखने की कोशिश की जाती है।

परन्तु यहां भी हमारे चिकित्सक बन्धु प्रकृति माता का विरोध करते हैं। वे यह समझने का कष्ट नहीं करते कि इस प्रकार के प्रयोगों से सूजन आदि अधिक कष्टदायक व भयानक बना दी जाती है या फोड़े आदि का रूप बन जाती है।

गरम पानी की पट्टियां या रबड़ की गरम पानी से भरी हुई बोतलें या थैली सूजे हुए स्थान से रक्त को खाल की सतह पर थोड़ी देर के लिए खींच कर लाती हैं परन्तु अगर यह प्रयोग बराबर न किया जावे तो रक्त फिर सूजी हुई जगह वापिस चला जाता है और इस प्रकार क्रिया व प्रतिक्रिया के नियमानुसार पीड़ा व सूजन पहले से अधिक बढ़ जाती है।

अगर बार-बार गर्म पानी के प्रयोगों को किया जायगा तो वह गरमी उस स्थान पर स्थिर रह जायगी और सूजन व पीड़ा के स्थान की गरमी भी बढ़ जायगी। सूजन का अर्थ यह है कि सूजन के स्थान पर पहले ही बहुत अधिक मात्रा में गरमी मौजूद रहती है इसलिए बुद्धिमानी तो यही है कि गीली मिट्टी या ठण्डे पानी से उसको शांत किया जावे।

इसके विपरीत ठण्डे पानी या मिट्टी की पट्टियां सूजन पर तुरन्त ठण्डा प्रभाव डालती हैं और क्रिया व प्रतिक्रिया के नियमानुसार उनका दूसरा व स्थाई असर यह होता है कि वह सूजन व गरम स्थान के रक्त को खींचकर खाल की सतह पर ले आती हैं जिससे खाल के छेद खुल जाते हैं और उनमें होकर मल-पदार्थ व गरमी बाहर निकलने लगते हैं।

इसलिए ऐसे सभी मामलों में बर्फ के प्रयोग या गरम पानी के प्रयोगों को बिल्कुल ही हानिकर समझकर छोड़ देना चाहिए।

केवल गीली मिट्टी की पट्टियां और ठण्डे जल की पट्टियां या छिड़कना—यही सूजन हटाने और अन्दरूनी गरमी दूर करने के सर्व-

श्रेष्ठ उपाय हैं। पानी भी बरफ का न हो कुएं या नल का ताजा पानी होना चाहिए। इस प्रकार प्रकृति देवी के इन सस्ते सरल उपचारों से पानी, मिट्टी, उपवास आदि से हर प्रकार की सूजन व बुखार बिना शरीर को हानि पहुंचाए शीघ्र दूर हो जाती हैं।

गीली चादर का प्रयोग

सारे शरीर पर गीली चादर का प्रयोग बड़ा ही लाभदायक सिद्ध होता है और इसके द्वारा रोगी को खूब पसीना आ जावे। पसीना आ जाने पर गीली चादर हटा दी जावे और रोगी को ठण्डे तौलिए से पोंछ डालना चाहिए।

बहुधा ऐसा भी देखा गया है कि ऐसा करने पर दुबारा भी पसीना आ जाता है जो बड़ा गुणकारी सिद्ध होता है। दुबारा पसीना आने पर भी गीले कपड़े से बदन पोंछ डालना व सुखा देना चाहिए।

इस प्रयोग से शरीर के अन्दर स्थित विजातीय द्रव्य बाहर निकालना आसान हो जायगा और वैसे भी रोग सरलता से दूर हो जायेंगे जो दवा आदि झूठे उपचारों से प्राणघातक बन जाते हैं।

गीली चादर लगाने की तरकीब

किसी बिस्तर या चारपाई पर दो या अधिक चादर बिछा दो। ऊपर की चादर (लट्ठा या रेजो) पर ऐसी मलमल या लट्ठे की चादर बिछा दो जिसको ठण्डे ताजा पानी में भिगोकर निचोड़ लिया गया हो। यह निचोड़ी हुई चादर रोगी के शरीर से कुछ अधिक लम्बी होनी चाहिए। फिर इस निचोड़ी हुई चादर पर रोगी को लिटा दो और चादर गरदन तक आवे और सिर से नीचे सारे शरीर पर उसे लपेट दो, ताकि शरीर का हर एक भाग उससे ढक जावे और टांगों व हाथों के पास उसे ढीला-ढीला बांधे रखो। उत्तम विधि यह भी है कि गीली चादर के तीन टुकड़े किए जावें, एक टुकड़ा टांगों पर एक पेट-छाती पर व एक सिर पर रहे नाक व मुंह खुले ही छोड़ दिए

जावें। फिर नीचे की चादर को इस प्रकार इस पर लपेट दिया जावे कि सारा शरीर ढक जावे, नाक व मुंह खुले रहें और उन चादरों को स्थान पर रखने के लिए पिन लगा दी जावें। इस गीली चादर में रोगी को उसकी इच्छानुसार जाड़ा-गरमी देखकर आध घण्टे से दो घण्टे तक रखा जावे। जाड़े में कम देर रखना चाहिए। अगर चादर ठीक तौर पर विधि से लगाई जावेगी तो रोगी कुछ ही मिनट में गरम हो जायगा और चादर भी गरम हो जायगी।

पसीने लाने वाला गरम स्नान

इतना करने पर भी अगर रोगी को गरमी न आवे जाड़ा लगे, जैसा कि मलेरिया आदि बुखारों में होता है और अगर पसीना खूब लाने को जरूरत हो तो गरम पानी से भरी हुई बोतलें या गरम ईंटें फलालेन में लपेटकर चादर के पास इधर-उधर कुछ हटाकर रख देना चाहिए। यह प्रयोग पसीना लाने वाला स्नान कहा जाता है और खासकर उस समय बड़ा उपयोगी होता है जब कि रोगी को जाड़ा अधिक मालूम होता हो।

गीली चादर हटाने के बाद शरीर को ठंडे पानी से भीगे कपड़े से पोंछ डालना चाहिए। इसके लिए मोटा कपड़ा या रुंएदार तौलिया प्रयोग में लाना उचित है। शरीर को शीघ्र ही पोंछकर सुखा दो और फिर सारे शरीर को सूखे हाथों से मलकर सुखा दो व गरम कर दो।

इसके बाद गीले बिस्तरों को हटा देना उचित है और दूसरे सूखे कपड़ों में बीमार को सुलाना चाहिए। अगर चारपाई भी गीली हो गई हो तो उसको भी तुरन्त बदल देना ठीक है। साथ ही गीली चादर के प्रयोग के बाद फौरन ही रोगी को बिस्तर में ले लेना चाहिए और खूब गरम रजाई या कम्बल उढ़ाना चाहिए और हो सके तो इस प्रकार पसीना लाना चाहिए और फिर गीले कपड़े से बदन खूब पोंछकर उसे दूसरे सूखे बिस्तर पर सुलाना चाहिए और उसे पूरी तरह आराम करने दिया जावे।

अगर रोगी बहुत कमजोर हो तो ठंडे पानी का प्रयोग कोई मोमजामे पर किया जावे जिस पर कम्बल बिछा रहे और चादर के प्रयोग से पहले उसे बिस्तर पर बिछा देना चाहिए। गीली चादर हटाने के बाद रोगी के शरीर को कम्बल से ढक दिया जावे, ताकि जाड़ा न मालूम दे और उसके अन्दर ही अन्दर कपड़ा निचोड़ कर पहले खूब जल्दी-जल्दी सब अङ्गों, छाती, पेट व पीठ को धोकर पोंछ देना चाहिए और तुरन्त ही उस स्थान को ढकते जाना चाहिए, फिर उस खद्दर की चादर को बिस्तर से हटा देना चाहिए और रोगी को सूखे व गरम कम्बलों में या रूई की रजाई या सौड़ आदि में लिटा देना चाहिए, ताकि पसीना खूब आ जावे।

छोटी गीली चादर के प्रयोग

किसी लट्ठे या मलमल के चौड़े टुकड़े को भिगोकर निचोड़ कर रोगी के बाजुओं से घुटनों या जंघाओं को दो-तीन या चार तहों में लपेट देना चाहिए और उसको सब जगह से फलालेन या गर्म कपड़े के टुकड़े से इस तरह ढक देना चाहिए कि गीला कपड़ा कहीं से भी बाहर निकला हुआ न रहे।

इसी प्रकार जहां भी रोग, पीड़ा या सूजन आदि हो गले के जाभुओं के, टांगों के, कंधों के जोड़ों और सिर के अन्य भागों पर गीली चादर का प्रयोग किया जा सकता है और परिणाम बड़ा ही उत्तम और आरोग्यदायक होगा।

यह बात कि गीली चादर और सूखी पट्टी की तह कितनी होनी चाहिए—रोगी की जठराग्नि पर गरमी के कम-ज्यादा होने पर और चादर के उद्देश्य पर निर्भर है।

आया वह प्रयोग—

१—बढ़ी हुई गरमी को कम करने के लिए किया गया है।

२—या सरदी से खूब गरमी लाने को किया गया है।

३—अंदरूनी घबराहट को दूर करने को किया गया।

४—अथवा मल पदार्थों को बाहर निकालने के लिए किया गया है।

अगर गीली चादर का प्रयोग गरमी कम करने के लिए किया जावे तो मलमल या लट्ठे की कई तह करके शरीर में लपेटी जावे और बिस्तरे को गीला होने से बचाने की गरज से एक-दो तह सूखे कपड़े की उसके ऊपर ढीली सी लपेटी जावें मगर ज्योंही पट्टी गरम हो जावे या सूख जाय तुरन्त ही हटाकर दूसरी लगाना चाहिए।

अगर रोगी को शीत आया हुआ हो और उसमें गरमी लाना जरूरी हो तो थोड़ा-सा गीला लट्ठा लगाया जावे और सूखा कपड़ा अधिक लगया जावे और उस गीली चादर को आध घंटे से दो घंटे तक रक्खा जा सकता है। इस पर भी असर न हो तो गरम ईंट या गरम बोतलें चादर के चौतरफा रखकर गरमी लाई जावे अथवा भापस्नान (स्टीम बाथ) से गरमी लाई जावे।

जब गीली पट्टी का प्रयोग किया जावे तो बिस्तर के ऊपर कोई मोमजामा आदि बिछाया जा सकता है, परन्तु किसी भी हालत में मोमजामा या खद्दर की चादर ऊपर नहीं उढ़ाना चाहिए इसका असर खराब होता है। ऊपर का कपड़ा गरम होना चाहिए, पर साथ ही हवादार भी होना चाहिए, ताकि शरीर के निकले दूषित पदार्थों की गंदी हवा और गरमी निकलती रहे।

स्थानीय सूजन

खास-खास जगह सूजन होने पर आंतों की पीड़ा, सूजन, दर्द व ऐंठन पर वायुशूल आदि पर अलग-अलग ठंडे पानी की पट्टियां चढ़ाई जावें और ऊपर से फलालेन आदि सूखी गरम पट्टी बांध देनी चाहिए। इन छोटी पट्टियों को गरम होते ही या सूख जाने पर उतारकर बदल देना चाहिए।

सभी प्रकार के बुखारों में गरमी अधिक बढ़ने पर गरदन के चारों तरफ ठंडे पानी की गीली पट्टी चढ़ानी चाहिए, क्योंकि मस्तिष्क की नसों का समूह गरदन से बिल्कुल सटा हुआ है और यहां ठंडी पट्टी से गरमी आसानी से कम हो जायगी और बुखार में बड़ा आराम पहुंचेगा।

एनीमा या बस्ति-क्रिया

साधारण तौर पर हम वस्ति-क्रिया रोगियों पर नहीं करते जब तक कि ऐसा करना बहुत जरूरी न हो जाय। परन्तु फिर भी बुखार व तत्सम्बन्धी रोगों में हम लोग आमतौर पर बस्ति क्रिया (एनोमा देना) इसलिए करते हैं कि बड़ी आंत में इकट्ठे हुए मल के समूह गांठें आदि बाहर निकल जायें और वे रक्त में मिलकर शरीर को जहरीली वस्तुओं से न भर दें।

बहुत पुरानी सख्त कब्ज मलावरोध में कुछ गरम जैतून का तेल भी दिया जा सकता है। ऐसे बस्ति जल को लगभग आध घंटे अंतड़ियों में रखना चाहिए, ताकि सूखा हुआ मल ढीला हो जाय और फिर थोड़े गरम पानी के एनीमा से बाहर आ जाय।

परन्तु यह ध्यान रहे बुखार तेज हो रहा हो, मल कच्चा हो उस समय एनीमा नहीं देना चाहिए; बल्कि बुखार पककर उतर जाय और दोषों का पाचन हो चुके उसी समय बस्ति द्वारा मल निकालना उचित है, परन्तु दौरे पड़ने, मैड़ आने या विष पान करने पर तुरन्त बिना कुछ विचार किए गरम पानी से वस्तिक्रिया कर डालनी चाहिए।

ठण्डी गीली चादर के चमत्कारी गुण

(१) ठंडे पानी या मिट्टी की पट्टियां गरमी बाहर निकालने में सहायता देती हैं। बहुत से लोगों का तो यह ख्याल है कि पट्टियों से बुखार की गरमी इसलिए कम हो जाती है कि वे ठण्डी होती हैं, परन्तु वास्तव

में यह बात नहीं है। बात यह है कि पट्टियां थोड़ी देर शरीर पर रहने के बाद ही गरम हो जाती हैं। पट्टियों से शरीर की गरमी बड़े जोरों से खींच ली जाती है, इसलिए बुखार की गरमी कम हो जाती है। पट्टी को ठण्ड से चाहे गरमी कुछ कम हो जाय परन्तु वास्तव में बात यह है कि पट्टी के नीचे गीलापन लिये हुए गरमी बनी रहती है जो खून को गरम हुए शरीर में से खींचकर खाल पर ले आती है और उससे खाल के बारीक छिद्र व रोम कूप खुल जाते हैं और उनमें होकर शरीर की गरमी बाहर निकल जाती है।

वास्तव से बुखारों व सूजन में खाल के छेद और बारीक नसें तन जाती हैं और बन्द हो जाती हैं इसलिए गरमी बाहर नहीं निकल पाती और खाल गरम व सूखी हो जाती है और शरीर अन्दर से बहुत अधिक गरम हो जाता है। जब खाल ढीली या मुलायम हो जाती है और रोगी को खूब पसीना आने लग जाता है तो हम यह कहते हैं कि बुखार टूट गया।

खाल को इस प्रकार मुलायम बनाने के लिए गीली पट्टी एक बड़ा अच्छा सुलभ व अचूक साधन है। इन सीधी गीली चादर व पट्टियों के द्वारा हम बड़ी आसानी से बिना शरीर को हानि पहुंचाए तापमान या गरमी चाहे जितनी रख सकते हैं या घटा-बढ़ा सकते हैं। न हमें बुखार तोड़ने वाली घातक व जहरीली दवाइयां देने की जरूरत है न काढ़े पिलाने की और न मिक्सचर देने की जरूरत है, क्योंकि ये बुखार की गरमी तो कम जरूर कर देती है परन्तु हृदय तथा पसीना आने की क्रिया रक्त के लाल व श्वेत कणों को नष्ट कर देती है और शरीर की जीवन शक्ति व जठराग्नि को मन्द कर डालती है।

(२) ठंडी पट्टियां व गीली चादर अन्दरूनी घबराहट दूर करती हैं सभी तेज बीमारियों में रक्त सूजे हुए भागों व अङ्गों में भारी तेजी पैदा करता है जिससे सुर्खी, सूजन, गरमी और पीड़ाएं उत्पन्न होती

हैं। अगर रक्त संघर्ष तेज हो तो सूजन की क्रिया भली-भांति चालू नहीं रह सकती और तत्सम्बन्धी स्थानों में रक्त का दबाव बढ़ जाता है। इसीलिए उस दबाव को कम करने में गीली चादर बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। इससे शरीर का रक्त अन्दर की तरफ से खिचकर खाल में आ जायगा और इस प्रकार अन्दर की गरमी व घबराहट दूर हो जायगी।

बहुधा ऐसा देखा गया है कि बच्चे को डिप्थेरिया व सूजन लिये हुए ज्वर था और गले व नाक में मल पदार्थ पहुंचकर बच्चे का दम घुट रहा था और उसके गले के चौतरफ और सारे शरीर पर गीली चादर का प्रयोग किया गया तो गले व नाकों की सूजन व दम घुटना आदि इतनी जल्दी ठीक हो गए कि पट्टी या गीली चादर लगाने से आध घण्टे बाद तो रोगी बड़े मजे से सांस लेने लगा और बिल्कुल ठीक हो गया। वास्तव में दर्द, गरमी, घबराहट, सूजन आदि को दूर करने के लिए गीली चादर या पट्टियों का प्रयोग एक आश्चर्य-जनक रामबाण इलाज है।

(३) ठंडी पट्टियां मल-पदार्थों को निकालने में सहायता देती हैं।

तेज नई बीमारियों में जो इतनी असंख्य मौतें हो रही हैं उनमें से अधिकांश इस कारण होती हैं कि शरीर में बहुत अधिक मात्रा में विजातीय द्रव्य (विषैली वस्तुएं) इकट्ठी हो जाती हैं और वे शरीर के प्रधान अङ्गों व मुख्य भागों का नाश कर डालती हैं।

इसलिए जहां तक हो सके अति शीघ्र इन मल-पदार्थों को शरीर में से बाहर निकालने का यत्न करना चाहिए।

गीली चादर के द्वारा यह मल-निवारण कार्य बड़ी आसानी व उत्तम रीति से किया जा सकता है। चूंकि गीली चादर के प्रयोग से खून खाल के बाहर की तह में आ जाता है इसलिए उस रक्त में जो विषैले पदार्थ मिले हुए होते हैं वे खाल के छेदों में होकर बाहर

निकाल दिए जाते हैं और खाल पर लगी गीली चादर उन विषैले वस्तुओं को चूसकर बाहर फेंक देती है।

वास्तव में ऐसा ही होता है, यह बात जानने के लिए आप रोगी शरीर के लग चुकने के बाद भीगी चादर के भागों को ध्यान से देखिए, उसका कुछ रंग बदल जायगा और उसमें बदबू भी मालुम देगी।

बुखार आदि तेज व नई बीमारियों में कब्ज हो जाने का एक प्रधान कारण यह भी होता है कि अन्दर की बढ़ी हुई गरमी से बड़ी आंतें सूख जाती हैं। इसलिए ऐसी हालत में अन्तड़ियों पर गीली चादर या गीली मिट्टी लगाने से अन्दरूनी गरमी कम हो जायेगी और दस्त व पेशाब साफ आने लगेंगे। अगर ठंडे पानी की पट्टी या गीली मिट्टी की पट्टी बांधने के बाद भी कब्ज दूर न हो, दस्त साफ न आवे, पेशाब रुक जावे या न उतरे तो साधारण उष्ण (निवाया कम गरम) पानी से हर रोज या एक दिन छोड़कर एनीमा देना चाहिए जिससे बड़ी आंतों में इकट्ठा हुआ मल निकल जाय और फिर रक्त में मिलकर उसे दूषित न कर डाले।

परन्तु बहुत ठण्डे पानी का एनीमा इस ख्याल से कभी मत दो कि इससे बुखार उतर जायेगा, ऐसा करना बड़ा खतरनाक है और मृत्यु तक हो सकती है।

ठण्डे जल के अन्य चमत्कार

नंगे शरीर पर ठंडी हवा या ठंडे पानी के स्पर्श होने का और ठंडी हवा फेफड़ों में जाने का असर यह होता है कि शरीर की जीवन शक्ति को भारी बल व स्फूर्ति प्राप्त होती है।

इसी प्रकार शीघ्र जल्दी से शरीर पर ठंडे जल के छिड़कने का भी बड़ा उत्तम प्रभाव पड़ेगा।

मैं पहले अपनी पुस्तक 'रोशनी, धूप, हवा' में यह भली-भांति

दिखा चुका हूं कि ठण्डी हवा का स्नान बड़ा ही आरोग्यदायक, अमृत-तुल्य है और सबसे अधिक बलदायक रसायन है।

इसी प्रकार गीली चादर का, ठंडे जल छिड़कने का, इन्द्रियस्नान का, नंगे पांव चलने का भी बड़ा भारी आरोग्यदायक प्रभाव पड़ता है। शायद आप लोग भी जानते होंगे कि ठंडे मुलकों में रहने वाले लोग वहां की ठंडी साफ हवा के प्रभाव से गरम देशों में रहने वाले लोगों से अधिक सुन्दर, बलवान, नीरोग व दीर्घ-जीवी होते हैं।

यह कितनी मूर्खता पूर्ण बात है अगर उत्तम उत्तरीय भू प्रदेशों को छोड़कर कोई खराव गरम देशों में जाने की कोशिश करे। मैंने अपने सजे-सजाये सम्पन्न घर को अपना भारी नुकसान करके भी गरम प्रदेशों में होने के कारण छोड़ दिया, क्योंकि मैं अपने बालकों को ऐसी गरम, कमजोर बनाने वाली आबो-हवा में रखकर उनका जीवन बिगाड़ना नहीं चाहता था। मैं स्वयं जाड़े के मौसम व ठंडी बलदायक ताजा हवा को बहुत अधिक चाहता हूं, क्योंकि ठंडी हवा से मेरी सुस्त रक्तवाहिनी नसें बलवान हो जाती हैं और मेरे शरीर के रोग-जन्तु नष्ट हो जाते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सालय में हम रोज यह अनुभव करते हैं कि बराबर गरम प्रयोगों के करते रहने से शरीर नाजुक व कमजोर हो जाता है और यह कि ठंडे और गरम—दोनों प्रयोग ही क्रमानुसार करने से ही इच्छित फल, आरोग्य लाभ होता है और इन दोनों क्रमों के बराबर करते रहने से दीर्घ रोग भी शीघ्र अच्छे हो जाते हैं।

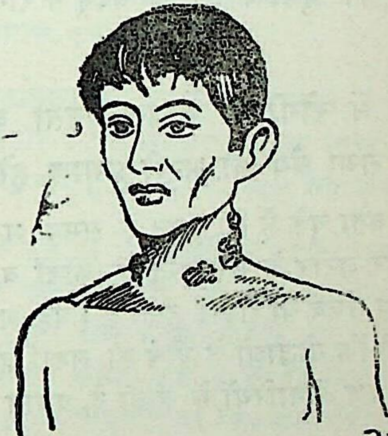
हमारे वैद्य बन्धु भी अगर इन बातों को समझने लगें कि गरम दवा, गरम बिस्तर, गरम कपड़े, गरम पानी रोगियों के शरीर बिगाड़ने के अथवा शीघ्र मार डालने वाले अमोघ उपाय हैं तो बड़ा लाभ होगा।

रोगी की सेवा-शुश्रूषा के नियम

१—रोगी का कमरा निहायत साफ-सुथरा रहना जरूरी है। मक्खियां, पेशाब, पाखाना, थूक आदि बिल्कुल अन्दर न रहने चाहिए।

२—रोगी के कमरे में उत्तम वस्तुएं, फूल, मालाएं, धूप, सुगंधि, बाजे, उत्तम चित्र आदि वस्तुएं होनी चाहिए।

३—रोगी के कमरे में अधिक तरी, अन्धकार व गन्दी हवा न रहनी चाहिए; बल्कि धूप अवश्य आनी चाहिए, ताकि हवा भी आवे।



२८

४—रोगी के कमरे में रात के समय मिट्टी तेल की लालटेन, चिमनी आदि न रहे, दिया, मोमबत्ती या बिजली की रोशनी ठीक है।

५—रोगी पर कभी क्रोध न करो न कभी उससे घृणा करनी चाहिए। जो मनुष्य रोगी से घृणा करता हो या महा कंजूस हो, उसे रोगी के पास न आने देना चाहिए।

६—रजस्वला स्त्री तथा दूसरे रोगियों को रोगी के पास न बैठने दो।

७—रोगी के कपड़े मैले हरगिज न होने दो, हर-दूसरे तीसरे दिन बदल दो, चादर सफेद धुली हुई होनी चाहिए।

८—अगर रोगी का दिल कमजोर हो तो उसे गाना सुनाना चाहिए, ताश खिलाना चाहिए या कहानी सुनानी चाहिए।

९—अगर रोगी सम्पन्न हो तो उसे कुछ समय के लिए बाग-बगीचे या झरने के पास रखना चाहिए, ऐसा करने से उसका स्वास्थ्य बड़ी जल्दी सुधर जायगा।

१०—तम्बाकू का धुआं व तेल की बदबू से रोगी को बचाना चाहिए।

तीव्र रोगों में रोगी के साहस, दृढ़ता व अटल विश्वास तथा धैर्य का भारी प्रभाव होता है

हम पहले यह बता चुके हैं कि सूजन के समय शरीर की रोग-नाशक शक्तियों और शरीर के रोग-जन्तुओं, कीड़ों व मल-पदार्थों के बीच एक प्रकार का संघर्ष या लड़ाई होती है। यह लड़ाई वैसी ही सच्ची होती है जैसी कि योद्धाओं के बीच की लड़ाई होती है। इस झगड़े में, जो सभी तेज बीमारियों में होता है, प्रधान सेनापति मन होता है।

यह मन रूपी प्रधान सेनापति बड़ा साहसी, धीर-वीर और स्थिर चित्त होना चाहिए, तभी यह विजय व लाभ कर सकता है इसलिए रोग समूह की इस भयंकर लड़ाई में भी मन रूपी सेनापति को प्रकृति की सदा विजय लाभ कराने वाली सेना (शक्तियों) पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिए।

अगर मन तेज बीमारियों में उत्पन्न होने वाली सूजन, बढ़ी हुई गरमी, घबराहट आदि से घबराकर डर जाय और उनके भयानक परिणामों से शंकित हो उठेगा तो यह मन के विचार शरीर के अन्दर

के हर एक भाग में जाकर वहां पर लड़ने वाले छोटे परमाणु रूपी सिपाहियों का साहस डिगा देंगे और वे डरकर युद्ध में हार जायेंगे।

मन की घबराहट या डर हृदय की क्रिया को बड़ा धक्का पहुंचाता है। पसीना बन्द कर देता है और शरीर में विजातीय द्रव्य की वृद्धि करता है। आगे के भागों में हम विस्तार से यह वर्णन करेंगे कि रोगों में भय, चिंता, क्रोध, चिड़चिड़ापन, असंतोष, घृणा आदि मानसिक विकारों का रोगी के शरीर पर कैसा घातक प्रभाव पड़ता है और यह कि सभी विकार शरीर की मल-निवारक शक्तियों को क्षीण करके शरीर को विषाक्त कर डालते हैं।

तीव्र रोगों में खासकर इन मानसिक विकारों का यह भयानक असर होता है कि शरीर के मल-निवारक मुख्य स्थानों पर आघात पहुंचता है और वे कमजोर होकर अपना काम बन्द कर देते हैं।

जीवन शक्ति के पूर्ण या अधिकाधिक प्रवाह पर ही हर एक चिकित्सा क्रम निर्भर रहता है और उसे सबसे अधिक निर्बल बनाने वाली दो वस्तु हैं: चिता और शोक। शरीर की सभी शक्तियों की क्रियाओं को सबसे अधिक धक्का भय से ही पहुंचता है। अकस्मात् भयातुर होने वाला मनुष्य आमतौर पर किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर पत्थर की नाई जड़-सा हो जाता है।

इन सच्चाइयों का वर्णन दूसरे प्रकार भी किया जा सकता है। शरीर की रोग-निवारक शक्तियों की विजय तीव्र रोगों पर तभी हो सकती है जब जीवन शक्ति का पूर्ण संचार होता हो और अगर मन दृढ़,शान्त,प्रफुल्लित व निर्भय होता है तो शरीर की रोगनाशक शक्तियां बड़ी उत्तमता से रोग समूह पर विजय पाती हैं। इसके विपरीत मन के अन्दर भय, चिन्ता, शोक व निराशा आदि होने से सभी शक्तियां कमजोर होकर रोग समूह से हार जाती हैं। इसीलिए प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली में स्वाभाविक भोजन, ठंडे-प्रयोग, हवा स्नान,

धूप स्नान आदि के साथ मन और इच्छा की शक्ति को भी एक प्रधान अङ्ग माना गया है।

इच्छा शक्ति के चमत्कार किसी से भी छिपे नहीं हैं, "योग: चित्त-वृत्ति निरोध:" चित्त की वृत्तियों को एक जगह सही तौर पर लगाने से जब आठों सिद्धियां प्राप्त हो सकती हैं तो फिर रोग समूह पर विजय पाना क्या बड़ी बात है। इसी प्रकार रोग चिकित्सा में मन को एकाग्र करके विश्वास के साथ चिकित्सा करने से बड़े भयानक रोगों पर भी विजय पाना बाएं हाथ का खेल है।

इसलिए रोगों में सफलता प्राप्त करने के लिए यह बड़ा आवश्यक है कि चिंता और भय को मन से बिल्कुल निकाल देना चाहिए। झिझकने या चौंकने की आवश्यकता नहीं है। मन के मुरझाने से शरीर की सभी क्रियाएं बंद हो जायेंगी और रोग-निवारण कठिन हो जाएगा।

मन में यह दृढ़ विश्वास जमा लेना चाहिए कि रोगों के कारण को भी हम भली-भांति जानते हैं और उनकी चिकित्सा भी जानते हैं और यह सूजन और बुखार आदि प्रकृति की केवल रोग-निवारक क्रियाएं हैं और यह कि प्रकृति के नियमों का पालन करने से अवश्य ये दूर हो जाएंगे।

बुखार तो हमारा परम मित्र है, शरीर की सफाई करने वाली झाड़ है और इसके द्वारा शरीर अपनी तमाम गंदगी बाहर निकाल-कर फेंक रहा है। इससे हमारा जीवन बिगड़ सकता है और शरीर को पुन: नवीन बना रहा है।

हमें इस बुखार रूपी मित्र को देखकर डरना नहीं चाहिए। यह दुश्मन नहीं दोस्त है। यह हमारे शरीर को साफ करने के लिए सुधारने के लिए आया है इससे मत डरो। अपना काम धैर्य से किए जाओ, बराबर अन्त:करण स्थित परमेश्वर की आवाज सुनकर उसके इशारे से चलो। फिर भय व चिन्ता या अकालमृत्यु पास नहीं फटक

सकेंगे। ऐसी भावना से तुम्हारे अन्दर नवीन उत्साह व बल उत्पन्न हो जाएगा और शरीर की सफाई करके आसानी से चला जाएगा।

जिस आदमी को पुरानी या बहुत दिनों की कब्ज हो, दस्त न होता तो उसे नीचे लिखो क्रियाएं करने से बड़ा लाभ होगा—

जिगर, बड़ी आंतों व मेदों को यह आज्ञा दो कि देखो तुम अपना काम ठीक करते रहो। मैं अब तुम्हें आयंदा एनीमा या जुलाब या और दवाइयां देकर कष्ट नहीं दूंगा। अब से तुम स्वयं अपना काम ठीक-ठीक करते जाओ। इस प्रकार करने से तुम्हें दस्त साफ होने लग जाएगा और नियत समय पर दस्त साफ आने लग जाएगा।

हर रोज इसी प्रकार शौच के समय यह क्रिया करते जाओ, अगर एक बार सफलता न मिले तो इस क्रिया को बार-बार दुहराते जाओ। और कभी एनीमा उस समय तक मत लो जब तक ऐसा करना परम आवश्यक न हो जाए। साथ ही अगर इस इच्छा शक्ति के प्रयोग के साथ तुम स्वाभाविक भोजन, फल, मेवा, दूध, हरे शाक आदि खाना आरम्भ कर दोगे, ठंडे जल का स्नान करोगे, मालिश आदि व नैसर्गिक व्यायाम भी करोगे, पेट पर मिट्टी की पट्टी रक्खोगे तो शायद ही कभी तुम्हें एनीमा की जरूरत पड़ेगी।

लेकिन याद रहे कि इच्छा शक्ति का उपयोग बहुत सोच-समझ कर करो। कभी बुखार को, दस्तों को या उल्टी या सूजन की क्रियाओं को इच्छा शक्ति के बल से दबाने की कोशिश मत करो अन्यथा दवा, बर्फ आदि के प्रयोगों की भांति इच्छा शक्ति से भी रोग दब जाएंगे और बजाय तीव्र नवीन रोगों में दीर्घ व भयानक रोग हो जाएंगे।

इस स्थान पर मैं यह बता देना आवश्यक समझता हूं कि आज-कल जाड़ा, बुखार इकतरा, मोतीझारा आदि रोगों में डोरा-जंतर झाड़ा-फूंकी गहुत ही चल गई हैं। जिनसे अकसर रोग समूह दब जाते हैं और लोग अपनी इस मिथ्या सफलता पर बड़े प्रसन्न होते हैं। प्रदर आदि तीव्र रोग गंडे ताबीज से दबा दिये जाते हैं, जिसका परिणाम

यह होता है कि बेचारी स्त्रियां अन्य दीर्घ रोगों का शिकार बन जाती हैं।

रोगी के घर वालों और इष्ट-मित्रों के विचारों व भावनाओं का उसके रोग पर भारी प्रभाव पड़ता है

जैसा कि हम ऊपर रोगी के विषय में कह चुके हैं, उसके घर वालों के लिए भी सभी बातें वैसी ही असर डालने वाली होती हैं। रोग एक नष्ट होता है। रोगी मनुष्य अपनी परिस्थितियों व आस-पास के वातावरण का बड़ा ख्याल रखता है। हर एक निराशाजनक बातों का घृणा या प्रेम का. हानि या लाभ की संभावना आदि का उस पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अपने नौकरों रिश्तेदारों व इष्ट-मित्रों के हर काम का व उनके हर एक शब्द का हर एक चहल-पहल का व उनकी हर एक दृष्टि का, अगर उनमें भय या चिंता मौजूद हो या उनसे प्रकट होती हो तो रोगी पर तत्काल बड़ा ही खराब असर पड़ता है।

जरा देखिए! बच्चे के पीड़ित होने पर उसकी माता कैसा लाभ-प्रद असर उस पर डालकर उसे अच्छा कर लेती है, क्योंकि माता व बच्चे के बीच एक बड़ा भारी नैसर्गिक तार संदेश सम्बन्ध बना रहता है।

माता के केवल बाहरी भय व चिंता की भावनाओं का ही बच्चे पर प्रभाव नहीं पड़ता; बल्कि माता के हृदय में छिपे तौर पर भी भय, चिंता आदि मौजूद हों उसका भी प्रभाव बालक पर पड़ता है।

आमतौर पर पहली बात जो मेरे सामने आती है वह यह होती है कि जब कभी मैं किसी रोगी बच्चे को देखने जाता हूं तो उसकी माता को मैं बड़ी ही चिंतित, भयग्रस्त, वहम की-सी दशा में पता हूं और पहला काम जो मैं करता हूं उसे समझाता हूं

कि उसके इस काम का रोगी बच्चे पर बड़ा ही भयानक असर पड़ेगा मैं उससे यह सवाल करता हूं क्या तुम राजी-खुशी अपने बालकों को हलाहल विष पिलाना चाहती हो ? उसका जवाब यह देती है कि हरगिज नहीं। इस पर मैं उसे यह जवाब देता हूं कि क्या तुम नहीं जानती हो कि रो-पीटकर चिंता करके आंसू डाल या भय व भ्रम रखकर तुम वास्तव में बच्चे को कालकूट विष पिला रही हो। और इससे बालक के शरीर पर बड़ा भयानक प्राणघातक असर पड़ता है। ऐसा हरगिज मत करो। अगर तुम अपने बालक को अच्छा करना चाहती हो तो मन में श्रद्धा, गंभीरता रखो और खूब प्रसन्न रहो जिससे बालक शरीर का रोग बजाय बढ़ने के घट जाएगा और यह बड़ी जल्दी ठीक हो जाएगा। तुम बच्चे के पास हंसते हुए रहो, खुशी की बातें करो, आनन्द मग्न निर्भय रहो इससे बालक को शक्ति, साहस, धैर्य व रोग से मुक्त मिलेगी—यह मानव शास्त्र का अटल नियम है। आध्यात्मिक चिकित्सा का यही सिद्धांत है कि श्रद्धा व विश्वास शांति प्रसन्नता के कारण रोगी बड़ी ही जल्दी आरोग्य लाभ करते हैं।

परन्तु अपने घरों में आज हम विपरीत बातें देख रहे हैं व अज्ञानता के कारण घर में किसी के बीमार हो जाने पर सारे घर वाले चिंता-सागर में डूब जाते हैं और कभी-कभी तो पति के बीमार होने पर स्त्री उसके पास बैठकर ही रोने लगती है और माता स्नेहवश बालक को बार-बार सीने से लगाकर आंसू बहाया करती है जो बिल्कुल बुरी बात है। ऐसे समय में धैर्य, प्रसन्नता, आनन्द व विश्वास ही रखना उचित है।

वास्तव में तो प्रकृति विरुद्ध उपचारों से आजकल अधिकांश बीमार काल के ग्रास बन जाते हैं, इसीलिए रोगी के रिश्तेदार यह समझ बैठते हैं कि शायद ही यह रोगी अच्छा होगा परन्तु उन्हें धैर्य-पूर्वक प्रकृति के अचूक, रामबाण व सस्ते उपचारों की शरण लेनी चाहिए, ताकि उन्हें अपने प्रिय सम्बन्धियों का नाश अपने सामने न देखना पड़ेगा।

तीव्र रोग चिकित्सा सार ताजी हवा

(क) बीमार के कमरे में रात-दिन साफ ताजा हवा खूब आनी चाहिए।

(ख) बार-बार समयानुसार रोगी का शरीर नंगा या अर्धनग्न करके ठंडी हवा और धूप में रखना चाहिए।

(ग) रोगी को बहुत अधिक गर्म नहीं रखना चाहिए न अत्यधिक ठंडा।

प्राकृतिक भोजन

(क) बहुत कम मात्रा में इच्छानुसार हल्का भोजन, खास कर फल और शाक-भाजी अथवा पानी मिला हुआ गाय या बकरी का दूध।

(ख) केवल प्यास बुझाने को ताजा पानी अगर फलों के रस में मिला हुआ हो तो अच्छा है।

(ग) भयानक अधिक तेज बीमारियों में व अजीर्ण में या मोतीझारा आदि में लङ्घन रखा जावे, कुछ भी खाने को न दिया जावे।

(घ) उल्टी, पेचिश या अन्य अजीर्ण आदि में पेट फूलने पर व सूजनादि में लंघन रोग रहने तक जारी रहना चाहिए।

(ङ) पथ्य साधते समय बड़ी सावधानी रखी जावे।

जल के प्रयोग

(क) जब कभी ज्वर अधिक बढ़े, ठंडे जल के छिड़काव और पोंछना आदि।

(ख) बुखार और सूजन आदि को कभी ठंडे पानी या बर्फ आदि से दबाया या रोका न जावे, बल्कि अधिक तापमान बढ़ने से रोका जावे।

(ग) बर्फ का प्रयोग न किया जावे न गरम पानी ही काम में लिया जावे।

(घ) गीली चादर का प्रयोग व गीले कपड़े से पोंछना, मल-पदार्थों को बाहर निकालने में सहायक होता है।

(ङ) गरदन के चौतरफ व स्थानीय पीड़ा दूर करने के लिए उस स्थान पर गीली पट्टी का प्रयोग।

(च) चादर कैसी कितनी देर रहे—यह रोगी की हालत व उद्देश्य पर निभर है।

(छ) जरूरत होने पर कब्ज दूर करने के लिए कम गरम पानी का एनीमा (बस्ति) देना।

औषधियां

(क) किसी भी प्रकार की आयुर्वेदिक, एलोपैथिक दवा, काढ़ा, मिक्सचर आदि नहीं देना चाहिए जिससे बुखार या सूजन रुक जाए या दबा दी जावे।

(ख) ऐसी वस्तुएं या वनस्पतियां आदि दी जा सकती हैं जो हानि-कर न हों।

मालिश आदि

(क) जरूरत होने पर मालिश या अङ्गों को दबाना आदि किये जा सकते हैं।

मन का प्रभाव

(क) घर वालों व रोगी को धैर्य, गंभीरता और साहस रखना चाहिए।

(ख) भय, शंका और चिंता रोग बढ़ाने वाली हैं, शरीर की क्रियाओं पर बुरा असर डालती हैं और रोग-निवारण में बाधक हैं।

(ग) इच्छा शक्ति के द्वारा या झाड़ा-फूंकी, डोरा-जंतर आदि से बुखार या सूजन आदि को रोकना या दबाना बुरा है।

(घ) रिश्तेदारों, मित्रों व घर वालों के मन का प्रभाव रोगी के शरीर पर बहुत पड़ता है।

उनके चिंतित शोकातुर रुष्ट होने पर व रोगी से घृणा करने पर रोगी के प्राणों का नाश संभव है और स्नेही, प्रसन्नवदन, हंस मुख होने पर मरने वाले रोगी भी बचाए जा सकते हैं।

विचार और समृद्धि

अपराध का पाठ

मानसिक अशांति, पीड़ा और शोक मानव आत्मा के प्रतिबिंब हैं। छाया मात्र हैं।

समस्त संसार में ऐसा कोई हृदय नहीं है जिसको पीड़ा का आघात न हुआ हो, ऐसा कोई मन नहीं है जिसको कष्टों के काले समुद्र में धकेला न गया हो, ऐसी कोई आंख नहीं है जिसने अपार शोक (रंज) से पीड़ित होकर गरम-गरम करुणा पूर्ण आंसू न बहाए हो।

दुनियां में ऐसा कोई घर या परिवार नजर नहीं आया, जहां महान संहारक विपात्तियों, रोग व अकाल मृत्यु ने प्रवेश न किया हो और जिन्होंने वहां दिलों को दिलों से जुदा न किया हो और उन्हें शोक समुद्र में न डुबाया हो।

सभी जन-साधारण थोड़ा या बहुत अपराध पाप व कुकर्म के मजबूत और प्रकट अकाट्य बंधनों में मजबूती से बंधे हुए हैं और सभी मानव मात्र पीड़ा, कष्ट, दुख व दुर्भाग्य से ग्रसित हैं। अपने इन कष्टों व दुखों से बचने या उन्हें कम करने के लिए वे पुरुष अन्धे होकर ऐने अगणित मार्गों व उपायों को ग्रहण करते हैं जिनके द्वारा वे व्यर्थ ही स्थाई सुख-शांति की आशा करते हैं।

इनमें कोई तो शराबी, व्यभिचारी बनकर क्षणिक सुख प्राप्त करना चाहते हैं, कोई धन व यश के पीछे दौड़ते हैं और कोई दान, पूजा-पाठ आदि में शांति ढूंढते हैं, परन्तु इतने पर भी केवल क्षणिक विश्राम ही प्राप्त होता है—अपराध विस्मृति का यह स्वप्न संसार शीघ्र ही ढह जाता है।

और अन्त में ऐसा समय आता है जब रोग रूपी भयानक विपत्ति अथवा कोई भारी शोक, प्रलोभन अथवा दुर्भाग्य हमारी आरक्षित आत्मा पर अचानक प्रहार करते हैं और हमारा काल्पनिक सुख नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

अतः यह सिद्ध हुआ कि प्रत्येक व्यक्तिगत स्वार्थयुक्त आनन्द के सिर पर अधर में दुख-पीड़ा की दुधारू पैनी तलवार लटकती है जो किसी भी क्षण गिरकर ऐसे व्यक्ति की आत्मा को कुचल सकती है जो विद्या व ज्ञानरूपी कवच से आरक्षित है। तो फिर क्या शोक और पीड़ाओं से बचनें का कोई मार्ग नहीं है ? क्या कोई ऐसे साधन नहीं हैं जिनसे दुष्कर्मों के बंधन तोड़े जा सकें ? क्या स्थाई सुख-समृद्धि चिरशांति केवल कल्पित स्वप्न ही हैं ? ऐसी बात नहीं है। अवश्य ही एक ऐसी विधि है, जिसके द्वारा दारिद्रय, रोग अथवा अन्य कष्ट-दायक परिस्थितियों को सदा-सदा के लिए समाप्त किया जा सकता है और अनंत वैभव प्राप्त हो सकता है और वह है अपराध (दुष्कर्म के मर्म को भली-भांति ठीक-ठीक समझना।)

केवल प्रार्थना के बल पर आप पाप को दूर नहीं कर सकते। आपको यह समझना ही पड़ेगा कि अपराध प्रवृत्ति क्यों हुई और इसमें क्या शिक्षा मिली ? और इस बंधन का मूल कारण क्या है। इसके लिए आपको बाहर खोजने की जरूरत नहीं है; बल्कि अपने स्वयं के अन्तर्मन में खोज करें। पाप (अपराधो) के भयानक परिणाम से शिक्षा ग्रहण कीजिए, ताकि उसकी पुनरावृत्ति न हो सके। हर अपराध अथवा कुकर्म या बुराई भली-भांति समझ ली जाने पर हमें कड़ा सबक सिखाती है। सभी बुराइयां दूर हो सकती है व ठीक की जा सकती हैं, क्योंकि वह स्थाई नहीं है, बुराई की जड़ अज्ञान है, ऐसा अज्ञान कि जिसके कारण चीजों के असली स्वरूप और सम्बंध की जानकारी न हो। और जब तक हम अज्ञान की अवस्था में रहेंगे तब तक हम कुकर्म (अपराध) के वशीभूत बने रहेंगे।

संसार में ऐसा कोई भी अपराध (बुराई) नहीं है जो अज्ञान संभव न हो और यह कि अगर हम सच्चे हृदय से उसके परिणाम से शिक्षा ग्रहण करें तो यह निश्चय है कि वह हमें परम बुद्धिमान बनाकर सदा के लिए अदृश्य हो जायगा।

परन्तु अफसोस ! आज का मानव आंखें होते हुए भी अन्धा है, वह बार-बार दुष्कर्म करता है और पछताता है पर उनसे निवृत्त नहीं होता, क्योंकि वह अपराध से शिक्षा ग्रहण नहीं करता।

हमारी जानकारी में एक बच्चा रोज रात को अपनी मां से इसलिए झगड़ता था कि वह उसे जलती मोमबत्ती से खेलने दे। एक रात माता की अनुपस्थिति में बालक ने जलती मोमबत्ती (दीपक) को हाथ से पकड़ लिया और उसका हाथ कुछ जल गया, फिर तो कभी बच्चे ने दीपक से खेलने का हठ न किया। अपने इस बेवकूफी के काम से उसे आज्ञा पालन (अनुशासन) को पूरी-पूरी शिक्षा मिल गई और साथ ही उसे यह भी ज्ञान हो गया कि आग जलाती है, क्योंकि अपराध सर्वथा अज्ञान संभव है, अतः जब अपराध से पूरी शिक्षा ग्रहण कर ली जाय तो अज्ञान दूर होकर उसकी जगह बुद्धि स्थान ग्रहण कर लेती है।

जो लोग अपराध के भयानक परिणामों को देखकर भी नसीहत नहीं लेते वे सदा ही अन्धकार में रहते हैं और ऐसे लोग अपराध में प्रवृत्त होकर शोक, निराशा और रोग व पीड़ाओं के रूप में निरन्तर बार-बार अपने कर्मों का दण्ड भोगते हुए सदा ही दुखी रहते हैं। इसलिए याद रखें कि समस्त कष्ट, पीड़ाएं, शोक व दुर्भाग्य उस नियम (कानून) के आधीन आपको मिले हैं जो अटल है और सर्वथा पूर्ण है और यह कि इन सजाओं के योग्य हैं और यह कि आपके लिए यह सजा जरूरी भी है।

यह संसार मन की अवस्थाओं का प्रतिबिंब है

जैसे आप हैं वैसी ही आपकी दुनियां है। विश्व की प्रत्येक वस्तु आपके स्वयं के आंतरिक अनुभव से सम्बन्धित है।

बाह्य जगत में जो कुछ भी है वह गौण है, क्योंकि सभी कुछ आपकी ही अन्तर चेतना की अवस्थाओं का प्रतिबिंब मात्र है।

जो कुछ आपके मानस जगत में है वही प्रमुख है, क्योंकि बाहर की दुनियां व परिस्थितियां (वातावरण) तो उसी के अनुसार आकार, रूप, रंग व गुण धारण करती हैं।

जो कुछ आप निश्चय पूर्वक जानते हैं वह सब आपके निज के अनुभव में समाया हुआ है और भविष्य में भी आप जो कुछ कभी भी जान जायेंगे वह सब अवश्य ही अनुभव का अंग बनकर आपका स्वयं का ही एक अंग बन जायगा।

आपके खुद के विचार, इच्छाएं और आपकी महत्वाकांक्षाएं ही आपके बाह्य जगत का निर्माण करती हैं और विश्व में जो कुछ सौंदर्य, आनन्द एवं वैभव है अथवा जो कुछ अरुचि कर तथा शोक और पीड़ा है वह सब आपके अन्तर्मन में ही स्थित है।

अपने निज के विचारों व कल्पनाओं के द्वारा ही आप अपनी जिन्दगी, अपनी दुनियां व अपने संसार को बनाते अथवा बिगाड़ते हैं। जो कुछ भी आप अपनी विचार शक्ति के द्वारा अपने अन्दर बनाते हैं, बिल्कुल उसी के अनुसार आपकी बाहरी जिन्दगी और परिस्थितियां साकार बन जाती हैं।

निश्चय जानो कि जो कुछ भी मनोरथ आपके हृदय मन्दिर में,

अन्तःकरण में बहुत समय से रह रहा है (स्थिर हो रहा है) वह अवश्य ही जल्दी या देर से, क्रिया व प्रतिक्रिया के अनिवार्य विधान के अनुसार आपके बाह्य जगत में साकार बन जायगा अर्थात सफल होगा।

जो आत्मा मलिन (गन्दी) स्वार्थी व कपटी है वह निसंदेह विनाश, दुर्भाग्य, विपत्ति को आकर्षित करती है अथवा बुलाती है और जो आत्मा पवित्र, स्वार्थ रहित एवं उदार है, वह अपने प्रबल आकर्षण द्वारा सुख, समृद्धि, वैभव, कल्याण को बुलाती है। हर एक आत्मा अपने सदृश को खेंचती है और जो कुछ भी उससे भिन्न है उसका उसके पास आना असम्भव है—ऐसा यह विश्वव्यापी अटल दैवी विधान है।

इसी प्रकार हर एक मानव के जीवन की बाह्य घटनाएं, जो उसे बनाती व विगाड़ती भी हैं, वे सभी खुद के अन्दर की कल्पना (विचार) जगत की शक्ति और श्रेणी के अनुसार ही उसके पास वलात आ जाती हैं।

हर एक आत्मा, एकत्रित अनुभवों तथा विचारों का एक संयुक्त जुड़ाव है और स्थूल शरीर तो उसको प्रगट करने व साकार रूप देने का नैमित्तिक वाहन मात्र है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसे भी आपके विचार (खयालात) हैं, बिल्कुल वैसे ही आप स्वयं हैं। और बाहर की दुनियां अथवा परिस्थितियां वैसा ही साकार रूप धारण करती हैं (जामा पहनती हैं) जैसा कि आपकी कल्पनाएं उन्हें धारण कराती हैं।

हम जो कुछ भी हैं या जैसे भी हैं वह सभी हमारे विचारों या कल्पनाओं का ही परिणाम है। उसकी नींव (बुनियादी जड़) हमारे खयालात ही हैं और वह हमारे विचार समूह द्वारा ही बनी है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि अगर कोई मनुष्य सुखी है तो इसका कारण यह है कि वह सुख के देने वाले विचारों से पूर्ण है और अगर

वह दुखी है तो कारण यह है कि वह दुर्बल, निराशा पूर्ण विचारों से युक्त है। आप मूर्ख हों चाहे विद्वान, डरपोक हों या बहादुर, अभागे हों या भाग्यवान इन सबका मूल कारण अर्थात् इन सब ही बातों या परिस्थितियों की जड़ (कारण) स्वयं आपकी अन्तरात्मा में ही है बाहर हरगिज नहीं। बहुत-से लोग इस तथ्य के विषय में हमसे अचम्भे के साथ यह पूछ सकते हैं तो क्या आपके ख्याल से बाह्य परिस्थितियों का हमारे मन पर कोई प्रभाव नहीं होता? हम यह नहीं कहते, परन्तु हम यह कहते हैं; बल्कि हम यह जानते भी हैं कि यह ध्रुव सत्य है कि परिस्थितियों का असर आप पर उतना ही पड़ सकता है जितना सा असर डालने की आप उन्हें आज्ञा देते हैं।

आप परिस्थितियों के अधीन केवल इसलिए हैं कि आपको विचार शक्ति या इच्छा शक्ति के स्वरूप उसके उपयोग और उसकी असाधारण क्षमता का ठीक-ठीक ज्ञान व जानकारी नहीं है।

आपका यह विश्वास है (और इसी छोटे-से शब्द विश्वास पर ही हमारे सभी रंज और खुशियां निर्भर हैं उसी पर वे लटकती हैं) कि बाहरी वस्तुएं आपको जिन्दगी को बनाने या बिगाड़ने की शक्ति रखती हैं।

इसी मिथ्या धारणा के कारण आप उन बाहरी बातों के सामने झुक जाते हैं तथा यह मानते हैं कि आप उनके गुलाम हैं और वे आपकी मालिक (एक मात्र स्वामी) हैं। ऐसा करके आप बाह्य वस्तुओं को व बाह्य परिस्थितियों को एक ऐसी शक्ति प्रदान करते हैं जो वास्तव में उनमें नहीं है और इसीलिए सचमुच आप परिस्थितियों को आत्मसमर्पण कर देते हैं (झुक जाते हैं) और साथ-साथ अपने विचार समूह द्वारा बाहर फेंके हुए रंज या खुशी, भय अथवा आशा, शक्ति अथवा दुर्बलता के वशीभूत हो जाते हैं। हमारी जानकारी में दो व्यक्तियों की बरसों की गाढ़ी कमाई बैंक फेल होने से नष्ट हो गई। उनमें से एक तो इस हानि से उद्विग्न, उदास व हताश होकर चिन्ता-

ग्रस्त रहने लगा, दूसरे को जब पता चला कि बैंक फेल होने से उसका सब धन नष्ट हो गया तो वह बोला जो धन चला गया है वह तो मेरे रोने व चिन्ता करने से वापस आ नहीं सकता इसलिए अब कठिन परिश्रम द्वारा धन संचय करूंगा। इसके बाद उत्साह पूर्वक कठिन श्रम करके वह पहले से अधिक धनवान बन गया जब कि दूसरा व्यक्ति अपने धन की हानि को रोता रहा और अपने दुर्भाग्य को कोसता रहा और वह विपरीत गिरी हुई परिस्थितियों में फंसकर कष्ट झेलता रहा, क्योंकि उसके विचार ही दुर्बल एवं गुलामी की भावना से ओत-प्रोत थे। एक ने अपने भयप्रद,चिंताप्रद हीन विचारों से दरिद्र को बुलाया और दूसरे ने सबल तथा उत्साह पूर्ण विचारों द्वारा जीवन आनन्दमय व सुखी बना लिया।

अगर परिस्थितियों में ही हमें बनाने या बिगाड़ने की ताकत होती तो वे सब हो को समान रूप से लाभ या हानि पहुंचातीं। अपने जीवन की घटनाओं को हम जैसे विचारों से आच्छादित करेंगे वैसा ही साकार रूप धारण करके वे हमारे बाह्य जगत में प्रकट होंगी। और जिस प्रकार हम घटनाओं तथा उद्देश्यों को अपने स्वयं के विचारों से ढकते हैं उसी प्रकार हम अपने विचारों की पोशाक दूसरी आत्माओं को धारण कराते हैं। उदार हृदय लोग दूसरों के सौभाग्य पर प्रसन्न होते हैं, कभी ईर्षा नहीं करते क्योंकि उन्होंने अपने हृदय स्थित परमेश्वर को पहचान लिया है और वे उसका प्रकाश सब जीवमात्र में देखते हैं।

कारण और कार्य के अटल विधान के अनुसार वे जो कुछ बाहर भेजते हैं वही उनकी तरफ खिंच कर आता है और इसीलिए वे अपने सरीखे व्यक्तियों का सम्पर्क प्राप्त करते हैं। सारांश तो यह है कि यह संसार जो बाहर दिखाई दे रहा है, वह सब आपके अंत:स्थित विचार जगत की ही छाया या प्रतिबिंब है। स्वर्ग या नरक सब कुछ यहां पर ही है। बैकुण्ठ भी यहीं पर मौजूद है।

आप केवल ऐसा करें कि सभी संदेह-शंका दूर करके अंतःकरण का अनुसरण दृढ़ विश्वास एवं श्रद्धापूर्वक करें और चिंतन, मनन द्वारा उसके स्वरूप को समझने की चेष्टा करें। इससे आपका मानस संसार पवित्र एवं शक्ति सम्पन्न हो जायगा।

आखिर यह रहस्य, यह गुप्त भेद यह अटल विधान आपकी समझ में आ जायगा कि स्वनियंत्रित अन्तरात्मा की अद्भुत अलौकिक शक्ति एवं सामर्थ्य के आगे बाह्य वस्तुएं व परिस्थितियां कितनी कमजोर, तुच्छ तथा शक्तिहीन हैं।

अशोभनीय अथवा अवांछनीय

परिस्थितियों से रक्षा (बचने) के उपाय !

यह जानने और देख लेने के पश्चात् कि बुराई केवल एक ऐसी अस्थिर छाया मात्र है जो कि चिरस्थाई अन्तरात्मा द्वारा फेंकी गई है और यह कि वह अनादि अन्त:करण के प्रकाशयुक्त स्वरूप पर डाली गई है और यह जगत ऐसा दर्पण है जिसमें हर एक अपना प्रति-बिम्ब देखता है तब हम उस स्थान पर पहुंच गए हैं, जहां दैवी विधान दृष्टिगोचर हो जाता है।

इस अनुभूति के साथ यह ज्ञात हो जाता है कि हर वस्तु, हर कार्य, कारण और परिणाम कारण (कार्य) की कभी बन्द न होने वाली प्रतिक्रिया के ही अन्तर्गत है और यह कि विधान (कानून) से कुछ भी अलग नहीं किया जा सकता।

मनुष्य का छोटे-से-छोटा विचार, वचन अथवा उसका कार्य सभी विधान के सर्वाधिकार के नियंत्रण में हैं। इसके बदलने या टालने की शक्ति किसी में नहीं है।

इसलिए हमारे जीवन की प्रत्येक अवस्था (हालत) एक नियमित और निष्पक्ष प्रारब्ध से बंधी हुई है और हर एक अवस्था का रहस्य एवं कारण उसी में निहित होता है।

'अवश्यमेव भोक्तव्यं, यत् कृतंच शुभाशुभं' अर्थात मनुष्य जैसा भी कर्म होता है वैसा ही उसका फल उसे भोगना पड़ता है। यह कानून दैव के निवास स्थान पर ज्वलन्त अक्षरों में लिखा हुआ है और इससे इंकार करने, धोखा देने या इससे बचने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। जैसे कि जो मनुष्य अग्नि के अन्दर अपना हाथ रखेगा

वह जलने की पीड़ा जरूर भोगेगा और प्रार्थना से अथवा गाली देने से इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।

यही विधान अन्तर्जगत पर भी लागू है। घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, कामवासना, घमण्ड ये सब जलती हुई आग हैं और जो कोई भी इनका स्पर्श करेगा, उसे जलने से उत्पन्न भीषण यातना अवश्य सहन करनी पड़ेगी। मन की ये सब अवस्थाएं सही तौर पर अपराध हैं और यह अज्ञान सम्भव भी है।

अतः यह मानसिक विकार अन्तःकरण में अशान्ति व पश्चाताप उत्पन्न करते हैं और शीघ्र अथवा देर से हमारी बाह्य परिस्थितियों में रोग, असफलता, दुर्भाग्य व कष्ट के रूप में प्रकट होकर हमें शोक, पीड़ा व निराशा प्रदान करते हैं।



२६

इसके विपरीत प्रेम, कोमलता, उदारता, पवित्रता, शान्तिदायक वायु हैं, जो दुःखी आत्मा को सुखी बनाती है और चूंकि उपरोक्त गुण दैवी विधान के अनुकूल हैं, इसीलिए वे बाह्य जगत में स्वास्थ्य,

आनन्दप्रद वातावरण, स्थिर सौभाग्य और अतुलनीय सफलता के रूप में प्रकट होते हैं।

अगर आप इस महान विधान को भली-भांति समझ लेंगे, जो कि समस्त विश्व को संचालित करता है, तो आप मन की उस अवस्था को प्राप्त कर लेंगे जो 'अनुशासन' कहलाती है।

जो व्यक्ति यह जानता है कि न्याय, समानता और प्रेम विश्व में सर्वोपरि हैं, वह यह भी जान जाएगा कि सभी विपरीत एवं कष्ट-दायक परिस्थितियां उस विधान के न मानने (विपरीत आचरण करने) के ही परिणाम हैं।

विधान की जानकारी, चाहे वह शरीर सम्बन्धी हो या मन सम्बन्धी, हमें शक्ति एवं बल प्रदान करती है और केवल इसी ज्ञान पर सच्चा जीवन है, स्थाई सफलता और सुख निर्भर हैं।

आप सभी परिस्थितियों को प्रभु की इच्छा समझकर सन्तुष्ट रहिए और सभी परिस्थितियों को आपके जीवन पाठ के लिए आव-श्यक समझकर उन्हें स्वीकार कीजिए। बस! आप उन सब कष्टदायक परिस्थितियों पर विजयी बनेंगे और फिर उनकी पुनरावृत्ति का कोई भय नहीं होगा।

अनुशासन अथवा विधान का पालन करने की शक्ति द्वारा सभी संकट सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। सृष्टि के विधान के अनुसार चलने वाले व्यक्ति दैवी विपत्तियों के शिकार कभी नहीं होते।

सभी कमजोरी का, सभी ताकत का कारण आपके स्वयं के अंदर है। इसी प्रकार सभी प्रकार के सुख, आनन्द तथा दुःख व कष्टों का रहस्य व मूल आपके अन्दर ही मौजूद है।

विद्या के प्रकाश के बिना आप कभी भी उन्नति नहीं कर सकते तथा जब तक विद्या रूपी रत्न आपके हाथ में नहीं होगा, तब तक सुख, सम्पत्ति, सौभाग्य भी आप प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

लोग समझते हैं कि वे परिस्थितियों से जकड़े हुए हैं। वे बार-बार अधिक अच्छे अवसरों की तलाश करते हैं, शारीरिक व आर्थिक उन्नति के लिए छटपटाते हैं और जब वे सफल नहीं होते तो अपनी क़िस्मत को गालियां देते हैं कि उसने हमें बांध रखा है।

परन्तु ऐसा नहीं है, आप निश्चय जानिए और इस बात को ध्रुव सत्य ही समझिए कि आप अपनी इच्छा के अनुसार ही अपने बाह्य संसार एवं परिस्थितियों को सुधार सकते हैं. परन्तु इसके लिए आपको सर्वप्रथम दृढ़तापूर्वक अपने मानसिक संसार (कल्पना जगत) को सुधारने का संकल्प करना चाहिए।

इसके लिए आपको लगातार दृढ़तापूर्वक अपने मन को वश में करना पड़ेगा, कमजोरियों को हटाना होगा और एकाग्र होकर अपनी गुप्त आध्यात्मिक शक्ति एवं मानसिक वेगों को काम में लाना पड़ेगा। फिर आपके बाह्य संसार एवं परिस्थितियों में जो अद्भुत आश्चर्यजनक परिवर्तन होंगे, उन्हें देखकर आपको भारी अचम्भा-सा होगा।

ज्यों-ज्यों आप इस ओर बढ़ते जाएंगे, आपका मार्ग सुनहरे अवसरों से पूर्ण होता रहेगा और उन अवसरों से उचित लाभ उठाने की शक्ति व ज्ञान भी आपके अन्तःकरण में प्रकट हो जाएंगे। स्वयं व अकस्मात आपको सच्चे मित्र मिलेंगे और जिस प्रकार सुई चुम्बक के पास आकर्षण के प्रभाव से खिचकर चली जाती है, उसी तरह सहानुभूति वाले व्यक्ति आपके पास खिचकर आ जाएंगे एवं पुस्तकें व अन्य बाहरी साधन भी, जो जरूरी होंगे, अनायास ही बिना मांगे आपको मिल जाएंगे।

शायद आप गरीबी की जंजीरों से बुरी तरह बंधे हुए हैं। आपका कोई मित्र, हितैषी नहीं, आप अकेले हैं और आप हृदय से दरिद्र के बोझ को हल्का करना चाहते हैं, परन्तु बोझ हल्का नहीं होता और आप और भी गहन अन्धकार में डूब जाते हैं।

इस पर आप अपने भाग्य को कोसने लगते हैं, आप अपने जन्म को, माता-पिता को, मालिक को दोष लगाते हैं अथवा ईश्वर को ही गालियां देते हैं, जिसने आपको व्यर्थ ही दरिद्र व दुःखी बनाया।

यह सब निरर्थक है। कोसना, गाली देना या दोषारोपण करन बन्द कीजिए, क्योंकि उपरोक्त बातें कोई भी आपकी गरीबी के कारण नहीं है; बल्कि कारण तो आपके स्वयं के अन्दर ही है और जहां कारण हैं वहां इलाज भी है।

आप अपने भाग्य को कोसते हैं, यह बात जाहिर करती है कि आप अपनी परिस्थितियों के ही योग्य हैं। इससे यह भी प्रकट होता है कि आपमें उस विश्वास की कमी है, जिसके आधार पर आप परिश्रम और उन्नति करते हैं।

याद रखिए! विधान की मर्यादा में असंतुष्ट एवं आलोचना करने वालों के लिए कोई स्थान नहीं और चिन्ता तो आत्महत्या ही है।

आप अपने आलोचक मन की भावना एवं दृष्टिकोण द्वारा उन बन्धनों को और भी बलवान बना रहे हैं, जिनसे आप बन्धे हैं और अपने चारों ओर अविद्या व अज्ञान रूपी घोर अन्धकार को फैला रहे हैं।

आप जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण बदल डालिए, इससे आपकी बाहरी दुनिया की जिन्दगी बदल जाएगी।

आप अपने मन में श्रद्धा, विश्वास एवं विद्या का गढ़ बनाइए, ताकि आप ज्यादा अच्छी हालतों व विस्तृत अवसरों से लाभ उठाने योग्य बन सकें।

सबसे पहले यह अवश्य करें कि जो कुछ भी आपके पास मौजूद है, उसका अच्छा से अच्छा उपयोग करें। यह कभी न सोचें कि बिना छोटे लाभों पर ध्यान दिए, आप बड़े लाभ प्राप्त कर सकेंगे, क्योंकि

ऐसा करके आपको वापस अवनति की ओर जाना पड़ेगा, इसलिए कि आपने शिक्षा ग्रहण नहीं की।

अगर आपकी यह इच्छा है कि अधिक उत्तम पदार्थ प्राप्त हों तो आप सर्वप्रथम अपने अधिकार वाले पदार्थ का सदुपयोग अवश्य करें। अगर आप उन वस्तुओं का दुरुपयोग करेंगे, लापरवाही दिखाएंगे अथवा उन्हें खराब करेंगे, चाहे वे छोटी व तुच्छ हों, तो नतीजा यह होगा कि वह तुच्छ (छोटे) पदार्थ भी आपसे छीन लिए जाएंगे, क्योंकि अपने आचरण द्वारा आप यह प्रकट करते हैं कि आप उसके योग्य नहीं हैं।

अगर आप किसी छोटी झोंपड़ी में रह रहे हैं और पड़ौस में गन्दगी या गुण्डागर्दी फैली हुई है, तो चिन्ता न करें। आप सर्वप्रथम अपनी इस छोटी झोंपड़ी को ही स्वर्ग तुल्य बनावें, उसे आप खूब साफ-सुथरी रखिए।

इसी झोंपड़ी में आप अपना भोजन अति स्वच्छता व सादगी से बनावें और भोजन की मेज को सादा ढंग से सजावें।

आपके पास एक सुन्दर कीमती गलीचा न हो या खरीदने की शक्ति न हो तो आप अपने घर के कमरों में मधुर मुस्कुराहट और हार्दिक स्वागत का सुन्दर गलीचा बिछाइए और उसमें मीठे शब्दों व उदार हृदय की कीलें लगाइए।

ऐसा गलीचा कड़ी धूप में भी खराब न होगा और लगातार उपयोग करने पर भी वह कभी जीर्ण न होगा।

अगर आप अपने वर्तमान वातावरण को उदार बना लें तो आप अवश्य उन्नति कर सकेंगे और उचित समय पर आपको ऐसा सुन्दर घर और ऐसा श्रेष्ठ वातावरण प्राप्त हो जाएगा, जो भाग्यवश आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे और जिनके योग्य अपने को आपने निज सत्कर्मों द्वारा बना लिया है।

याद रखिए! समय बड़ा कीमती है और उसे बरबाद करना महा-मूर्खता है, जो भी थोड़ा बहुत समय आपको मिले, उसका पूर्ण सदुपयोग कीजिए। पर निन्दा, व्यर्थ बहस, चुगली, क्रोध, ताश आदि में समय खोने वाले कभी आदमी नहीं बन सकते।

निश्चय जानिए और विश्वास कीजिए कि जिस हद तक आप अपने मन को वश में करके उत्तम विचारों से पूर्ण करेंगे, उसी हद तक आप अपना भाग्य भी अच्छा बना सकेंगे, क्योंकि मन को वश करने का परिणाम यह होगा कि आपकी आपत्तियां वरदान बन जाएंगी, दुःख सुखों में बदल जाएंगे।

जिस प्रकार बंजर, ऊसर भूमि में अत्यन्त सुन्दर फूल उगाए जा सकते हैं, उसी प्रकार गरीबी की काली धरती में मानवता के अति मनोरम पुष्प विकसित होकर फूले हैं। कठिनाइयां एवं निराशा के वातावरण में फूले हुए बहुत-से महापुरुष संसार में चिर यश व सम्मान प्राप्त कर चुके हैं। अनेक अकिंचन भक्त भगवान का साक्षात्कार पा चुके हैं।

संभवतः आप एक ऐसे मालिक या मालकिन के यहां नौकर हैं, जो अत्याचारी हैं और आप पर जुल्म व ज्यादती करते हैं। आप ऐसा समझिए कि यह अवस्था आपके लिए शिक्षाप्रद है। आप अपने स्वामी के साथ क्षमा और उदारता का व्यवहार कीजिए। सताए जाने पर भी बुरा न मानकर संयम व संतोष रखिए।

इससे आपको मानसिक एवं आध्यात्मिक बल प्राप्त होगा और आपके मालिक व मालकिन को शिक्षा मिलेगी, वे अपने दुर्व्यवहार पर लज्जित होंगे।

साथ ही कष्ट सहन के परिणाम स्वरूप आप आत्मोन्नति करके अधिक सुन्दर व सुखकर वातावरण प्राप्त कर सकेंगे।

कभी यह शिकायत न करें कि आप दास हैं; बल्कि अपने उदार आचरणों द्वारा गुलामी के वातावरण से ऊंचे उठिए और आप

अपनें मन की दासता के बन्धन तोड़िए। सर्वप्रथम अपनी इन्द्रियों व मन को वश में कीजिए, फिर किसी व्यक्ति में यह शक्ति न होगी कि आपको गुलाम बना सके। साथ ही मन एवं इन्द्रियों पर विजय पाने पर आप अपनी सभी विपरीत परिस्थितियों पर भी विजय प्राप्त करेंगे और सभी कठिनाइयां स्वयं दूर हो जाएंगी।

संभव है, आप पूंजीपतियों द्वारा सताए जा रहे हैं। यदि रखाए कि ईश्वरी संविधान सर्वथा न्याय करता है और इसीलिए जो कोई व्यक्ति आज किसी को सताता है, कल अवश्य ही वह भी किसी के द्वारा सताया जाएगा और यह कि इस अनिवार्य दण्ड से बचने का कोई उपाय नहीं है।

यह भी सम्भव है कि आप भी इस जन्म में या पूर्व जन्म में ऐसे ही धनवान थे और साथ ही मदांध, अत्याचारी थे, अतः आप आज उसी महान् न्याय, विधान के अनुसार पिछला ऋण चुका रहे हैं।

इसलिए आप सहनशीलता व श्रद्धा रखिए और अपने मन में ईश्वरीय न्याय, प्रारब्ध के प्रति भरोसा रखिए। व्यक्तिगत, क्षण-भंगुर वस्तुओं का मोह छोड़कर नित्य व अनश्वर का आश्रय ग्रहण कीजिए।

सृष्टि के नियमों का गंभीर अध्ययन कीजिए और यह विश्वास रखिए कि आप स्वयं अपनें दूषित मन द्वारा ही हानि व कष्ट प्राप्त कर रहे हैं।

हीन भावना अथवा अपने को तुच्छ समझना छोड़िए। इससे अधिक गिराने वाली, हानिकर तथा आत्मघातक प्रवृत्ति अन्य कोई नहीं है। जिन मनुष्यों के हृदय में भिक्षावृत्ति अथवा ऐसी पराधीन बनाने वाली मनोवृत्तियां मौजूद हैं वे कभी तरक्की नहीं कर सकते। दूसरों की नुक्ताचीनी व आलोचनाएं करना छोड़ दें, पहले अपनें स्वयं के दोषों को दूर करने की चेष्टा करें।

आप यत्नपूर्वक अपने ऐसे समस्त कार्यों, इच्छाओं तथा विचारों का परित्याग कर दीजिए, जो सर्वथा पवित्र नहीं हैं अथवा जो दया और धर्म से प्रतिकूल हैं।

ऐसा करने से आपका शरीर रूपी भवन अभेद्य व अजेय बन जाएगा, दुष्ट ग्रहों का आप पर कोई प्रभाव न होगा तथा जो कुछ भी आपके सुख, स्वास्थ्य व जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक होगा, वह सब बिना मांगे ही उचित समय पर अवश्य आपको मिलेगा।

यदि आप स्थाई रूप से निर्धनता, दारिद्रय अथवा गृहकलह से, रोग व सभी अन्य कष्टदायक परिस्थितियों से छुटकारा पाकर चिर सुखी बनने के इच्छुक हैं, तो आप अपने मन में बसी हुई खुदगर्जी (स्वार्थ), छल-कपट व परद्रोह की भावनाओं का सर्वथा परित्याग कर दीजिए, क्योंकि सभी विपरीत कष्टदायक परिस्थितियां आपकी उपरोक्त दूषित आंतरिक भावनाओं की ही छाया अथवा प्रतिबिम्ब हैं और इन्हीं से विपरीत परिस्थितियां पनपती हैं। सच्चा धन चांदी व सोने के टुकड़े नहीं; बल्कि सद्‌गुण ही स्थाई धन है और जिसका हृदय उदार है, वही सच्चा धनवान है और जिसमें उपरोक्त गुण नहीं हैं, वह दरअसल गरीब है। लाखों-करोड़ों की सम्पदा तो क्षण-भंगुर एवं मदांध बनाने वाली वस्तु है।

एक महापुरुष ने लिखा है कि धन सभी पापों व अनर्थों की जड़ है और यह कि धनवानों की दुर्गति भली-भांति देख चुके हैं।

केवल धन से ही सुख मिल सकता है, यह भी एक भयंकर भूल है।

वास्तव में गुणरहित, कुकर्मरत धनवान व्यक्ति दरिद्री है, क्योंकि धन मद से वह अंधा होकर नाना प्रकार के घोर अनर्थ एवं जघन्य पाप करता हुआ शीघ्र ही दैवी विपत्तियों, दुर्घटनाओं व बीमारियों का शिकार होकर अकाल-मृत्यु का ग्रास बनता है।

इसके विपरीत एक गरीब, निर्धन व्यक्ति जो सद्‌गुणों से परिपूर्ण

है, सच्चा मालदार है और वह कालांतर में अपने अच्छे कार्यों व उदार कर्मों के फल स्वरूप स्थाई सम्पत्ति, अपार आनन्द और अलौकिक सुखों को प्राप्त करता है।

सद्‌गुणों को प्राप्त किए बिना स्थाई सम्पत्ति या सुख असंभव है। तृष्णा तो आपको दुख के सागर में ढकेल सकती है। अगर संसार में ही बैकुण्ठ प्राप्त करने की इच्छा है, तो आप अपने जीवन को दुःखी, पीड़ित व रोगियों की निःस्वार्थ सेवा में लगाइए और साथ ही सब प्राणियों से स्नेह रखते हुए सर्वशक्तिमान, अनित्य, अचिन्त्य प्रभु के चरण कमलों में दृढ़ विश्वास रखकर उसे याद कीजिए। अगर आप यह कहें कि हमें अपने निज के लिए नहीं; बल्कि लोक कल्याण कार्यों के लिए धन चाहिए, ताकि उसके द्वारा पीड़ित समाज की सेवा कर सकें।

अगर वास्तव में आपका उद्देश्य यही है, तो अवश्य आपका यह मनोरथ पूर्ण होगा और धन अवश्य मिलेगा, क्योंकि आपकी भावना स्वार्थ रहित एवं उदार है।

परन्तु जितना कुछ धन आपके पास है, उससे आप दूसरों की भलाई करते रहिए, क्योंकि संभव है, धन की वृद्धि के साथ-साथ आप स्वार्थी व लोभी बन जाएं।

चाहे कोई कैसा ही गरीब हो, वह समाज सेवा व स्वार्थ त्याग अवश्य कर सकता है। जिनके हृदय में करुणा, दया एवं उदारता आदि दैवी गुण मौजूद हैं, वे परोपकार करते ही हैं और धन प्राप्ति की प्रतीक्षा नहीं करते; बल्कि स्वार्थ त्याग में लगे रहते हैं।

ऐसे महापुरुष स्वार्थ की गन्दी भावनाओं को पास नहीं आने देते और अपने पड़ौसी या दूर रहने वाले, दोस्त और दुश्मन सभी की निःस्वार्थ एवं सच्ची सेवा करना ही अपना धर्म समझते हैं।

कारण और कार्य का गहरा सम्बन्ध है। हमारी मानसिक

सतोगुणी भावनाएं सम्पत्ति व शक्ति को जन्म देती हैं तथा तमोगुणी व दूषित भावनाओं से गरीबी और कमजोरी पैदा होती है।

रुपया-पैसा सच्चा धन नहीं है, और न ऊंचा पद अथवा प्रभुता की दौलत है अतः केवल पैसे पर निर्भर रहने वाले फिसलकर गड्ढे में गिर सकते हैं।

आपका सच्चा धन आपके सदगुण हैं एवं आपकी सच्ची शक्ति उनका सद उपयोग है।यदि आप अपनें हृदय को सुधार लेंगे तो आपका जीवन सुधर जायगा। विषयवासना, घृणा, क्रोध, घमण्ड, लोभ, स्वार्थ, हठ, निंदा यह सब दुर्बलता व गरीबी के रूप हैं।

इसके विपरीत प्रेम, पवित्रता, कोमलता, नम्रता, संतोष, दया, उदारता, स्वार्थ त्याग और प्ररोपकार वृत्ति, यही सच्चा धन व शक्ति है। अगर आप उपरोक्त गरीबी और दुर्बलता लाने वाले तत्वों को जीत लेंगे तो आपके अन्दर एक सर्व विजयी शक्ति प्रगट हो जायेगी। और जो भी व्यक्ति अपने को सर्वश्रेष्ठ गुणों से युक्त बनाने में सफल हो जायगा उसके चरणों में संसार झुक जायगा। याद रखिए! सुख बाहर के ठाठ-बाट या सम्पत्ति पर निर्भर नहीं है; बल्कि आपके अन्दर की विचारधारा व भावनाओं पर निर्भर है।

मान लीजिए आप कल किसी कारखानें या मिल के मालिक हैं और आपके कर्मचारी गण आपके विरुद्ध आन्दोलन करते हैं, विरोध भी करते हैं और बहुत-से अच्छे कर्मचारी काम छोड़कर चले भी जाते हैं।

इससे आप हताश होकर इस वर्ग के प्रति एक प्रकार से घृणा करने लगते हैं, एक बार फिर उन मज़दूरों व कर्मचारियों को मंहगाई व भत्ता देकर, तनखाहें बढ़ाकर व और भी अनेक प्रकार की सुविधाएं देकर आप उन्हें राजी करना चाहते हैं, परन्तु फिर भी वे काम करने से इन्कार करते हैं।

ऐसी सूरतें पेश होने पर आप सख्ती न करें; बल्कि यह उपाय करें:

उन कर्मचारियों में दोष निकालने के स्थान पर आप अपना हृदय ही टटोलें, तब आपको यह रहस्य समझ में आ जायेगा कि सब दोष आपके ही अन्दर है। संभव है आपके अन्दर कोई स्वार्थ पूर्ण इच्छा हो अथवा मन में कोई सन्देह ही होगा अथवा मन ही मन आप उन कर्मचारियों के प्रति कठोर भावनाएं रख रहे होंगे और इसी कारण उपरोक्त दूषित विचारों का विष अदृश्य रूप से बाहर फैल रहा है और उनके मन पर भी दूषित प्रभाव डाल रहा है, चाहे प्रगट में आप अपने कार्यों व वाणी द्वारा सहानुभूति ही क्यों दिखाते रहे हैं।

सभी झगड़ों व विवादों को सर्वथा समाप्त करने के लिए यह जरूरी है कि आप अपने नौकरों के प्रति मन में उदार व स्नेह-पूर्ण विचार रखें, आप उनके सुख-सुविधा, आराम का भी ख्याल कीजिए तथा कभी भी उनसे उनकी शक्ति से बाहर काम न लीजिए।

ऐसा करने का नतीजा यह होगा कि आपके दयापूर्ण, उदार विचारों से आपके नौकर वफादार गुलाम व स्वामिभक्त बन जायेंगे और वे आप की सेवा में प्राण तक देने को भी तैयार रहेंगे।

परन्तु संसार में ऐसे मालिक, गृह स्वामी या सेठ बिरले होंगे जिनका हृदय इतना करुणपूर्ण, कोमल एवं उदार होगा कि वे अपने स्वयं के सुख व आराम को छोड़कर अपने आश्रित जनों नौकरों व घर के आदमियों के सुख व आराम का ज्यादा ख्याल रखेंगे। उन्हें खिलाकर आप खायेंगे, उन्हें पहले सब चीजें देकर पीछे आप ग्रहण करेंगे।

जिस मालिक में ऐसे गुण हों उसको खुशी सदा बढ़ती रहेगी और उसे कभी अपने नौकरों को हटाने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

चाहे गृह-स्वामी हो अथवा मिल मालिक, अगर वह अपने आश्रितों या नौकरों का हित चाहता है और उन्हें तंग नहीं करता तो उसे कभी विफलता या क्षोभ का सामना नहीं करना पड़ेगा—यही सफल-जीवन का रहस्य हैं।

अगर आपको यह शिकायत है कि मैं संसार में अकेला हूं, मेरा कोई दोस्त नहीं है तो हमारा निवेदन यह है कि इस परिस्थिति में भी आप भाग्य को अथवा दूसरों को दोष न दें; वलिक खुद को दोष दें।

आप दूसरों के प्रति मित्र भाव रखिए फिर आपको अनेक मित्र मिल जायेंगे। पहले अपना हृदय शुद्ध करके स्नेह पूरित वनाइए तो आपसे सभी प्रेम करेंगे।

जो कोई परिस्थितियां आपके जीवन को भार स्वरूप दुखमय बना रही हैं, आप उन सब पर विजय प्राप्त करके उन्नति कर सकते हैं, परन्तु इसके लिए आपको सर्वप्रथम अपने मन को वश में कर उसे छल कपट रहित बनाकर बलवान वनाना होगा।

अगर आप अपने मन में स्थित स्वार्थ-पूर्ण भावनाओं पर विजय पालेंगे जो सब विपरीत परिस्थितियों को जन्म देती हैं, तो आप अपने दुर्भाग्य, शोक, कष्ट, दारिद्रय व रोगों पर ही पूर्ण विजय प्राप्त करने में सफल हो सकेंगे।

यद्यपि पिछले कर्मों के फलस्वरूप आप प्रारब्ध के आधीन हैं और उसी के कारण आप सुख या दुख भोग रहे हैं, परन्तु उसी अटल विधान के अनुसार ही आप कर्म भी कर रहें हैं। जीवन के हर क्षण में हम नये कार्य करते रहते हैं एवं नये विचार मन में लाते रहते हैं और साथ ही उन्हें सत् या असत् बुरा या अच्छा बनाने की शक्ति भी हमारे अन्दर ही है। दूसरी बात यह है कि अगर कोई व्यक्ति (अपने प्रारब्ध या कर्मों के फल के अनुसार) अपना सब धन खो देवे या उस की मान-मर्यादा चली जाय तो यह कोई जरूरी नहीं है कि वह अपनी उदारता, परोपकार, भावना अथवा दुखी प्राणियों के प्रति करुणा भाव भी छोड़ दे, क्योंकि सम्पत्ति शक्ति और सांसारिक सुख इन्ही गुणों से मिल सकते हैं। याद रखिए। जो कोई भी स्वार्थ के वशीभूत हैं वह स्वयं अपना शत्रु है और वह सदा ही शत्रुओं व दैवी संकट से घिरा हुआ रहता है। और जो स्वार्थ को छोड़कर महाराज विक्रमादित्य की

तरह दूसरों के मनोरथ पूर्ण करते हैं वे ही अपने स्वयं के हितैषी हैं और कवच की भांति वे अपने इष्ट-मित्रों द्वारा स्वयं को सुरक्षित रखते हैं। शुद्ध, निष्कपट, दया से पूरित हृदय के दैवी प्रकाश के सम्मुख समस्त अन्धकार दूर हो जाता है और सभी सङ्कट के बादल पिघलकर नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि स्वार्थ का त्याग करने वाले ही संसार पर विजय पाते हैं।

अतः आप अपनी गरीबी, अपनी पीड़ाएं, अपने सङ्कट, अपने रोग-शोक कलह, आंतरिक दुख एवं असहाय अवस्था से छुटकारा पाने के लिए तेरा और मेरा की भावना छोड़िये। आप अपने क्षुद्र, संकीर्ण, स्वार्थ पूर्ण भावना की जीर्ण, फटी हुई पोशाक उतार फेंकिए और उसकी जगह विश्व प्रेम की नई पोशाक धारण कीजिए।

ऐसा करने से फिर आप अपने हृदय में स्वर्ग या बैंकुण्ठ का आभास पायेंगे और आपको सारी बाहरी जिंदगी भी उसकी छाया पड़ने से सर्वथा वैसा रूप धारण कर लेगी। जो मनुष्य दृढ़ता पूर्वक स्वार्थ, त्याग व आत्म विजय के मार्ग पर चलता है, जिसकी सहायता श्रद्धा व विश्वास करते हैं उसे अवश्य प्रचुर एवं अतुल सम्पत्ति एवं स्थाई आनन्द प्राप्त होंगे और उसे इसी पृथ्वी पर ही बैकुण्ठ का-सा सुख प्राप्त होगा। स्नेह, करुणा, सदाचार मानव को स्वर्ग प्रदान करते हैं। आज्ञाकारी व्यक्ति सदा सुखी रहते हैं। पराया धन, पराई स्त्री, पराई भूमि हरण करने वाले तथा हिंसक, हत्यारे, मांस-मदिरा से भी महा दुखी होकर महान दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

विचारों की गुप्त क्रिया

मानसिक शक्तियों का नियंत्रण व संचालन

विश्व की शक्तियों में सबसे बलवान शक्तियां वे होती हैं जो ध्वनि रहित अथवा मूक हैं। और ऐसा नियम है कि शक्ति की प्रबलता के अनुसार उसका वेग सही (ठीक) ढंग से उपयुक्त होने पर लाभप्रद होता है एवं गलत तरीके से प्रयोग होने पर वह विध्वंसक अथवा घातक हो जाता है।

सभी जानते हैं कि यन्त्र, मशीन आदि की शक्तियों से बिजली, भाप, गैस आदि की ताकतों से क्या-क्या काम लिए जा रहे हैं।

परन्तु ऐसे लोग बिरले ही हैं जिन्होंने मन के क्षेत्र सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की है जहां पर (विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली) विचारों के वेग निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं और साथ ही वे विनाश अथवा मुक्ति की लहरें (तरंगे) बनकर बाह्य संसार में प्रगट होते हैं।

आज के सभ्य युग में मनुष्य अपनी मानसिक शक्ति एवं विचार-शक्ति का पूर्ण विकास कर रहा है और विचारों के प्रभाव से ही वह उन्नति कर रहा है।

इस जड़ संसार में मानव की बुद्धि चरम सीमा पर पहुंच रही है, परन्तु इसका एक मात्र कारण विचारों की एकाग्रता है।

परन्तु जो लोग मन और इन्द्रियों के गुलाम हैं और पाशविक इच्छाओं के वशीभूत रहते हैं वे कभी सच्चा सुख और शांति नहीं पा सकते, क्योंकि स्वार्थ (खुदगरजी) के कारण उन्हें दैवी (ईश्वरीय) सहायता प्राप्त नहीं होती।

ईश्वरीय विधान (सर्वोच्च कानून) को पूरा जानने वाले सन्त-महात्मा लोग कहा करते थे कि मनुष्य की बाह्य परिस्थितियां उसके

आंतरिक विचारों एवं भावनाओं से ही बनती व बिगडती है । और यह कि जिस समय जिस जाति या देश के निवासियों के जैसे अच्छे-बुरे विचार, जैसी इच्छाएं होती हैं उसी के अनुसार सफलता अथवा सामूहिक विनाश दोनों ही प्राप्त होते हैं (प्रगट होते हैं) ।

जिस प्रकार सारे, सच्चे ज्ञान व शक्ति का विकास, विचारों की अलौकिक क्षमता की जानकारी पर निर्भर है, उसी प्रकार महापुरुषों की समस्त सिद्धियां व चमत्कारों का आधार भी उनकी मानसिक-शक्तियों की जानकारी ही है ।

राष्ट्रीय हानि-लाभ, राष्ट्रीय निर्माण या विध्वंस, उस राष्ट्र की विचार शक्ति एवं भावनाओं के वेगों के आधीन हैं एवं उन्हीं के अनुसार प्रगट होते हैं।

संसार में जो महायुद्ध होते हैं, प्लेग फैलता है, अकाल पड़ते हैं उन सबका एक मात्र कारण यह है कि जन साधारण के खोटे, दूषित, प्रबल विचारों व भावनाओं में प्रबल संघर्ष होता है और उनके गन्दे विचार (पापपूर्ण भावनाएं) ही ईश्वरी विधान के अधीन विनाश के रूप में प्रगट होते हैं।

युद्ध किसी एक व्यक्ति के दूषित विचारों के प्रभाव से नहीं होता, न कि एक समुदाय के कुविचारों का फल है; बल्कि वह तो समूचे राष्ट्र की स्वार्थपरता (खुदगरजी) का एक भयानक विध्वंसक रूप है।

हमारे मन के मूक एवं विजयप्रद विचारों की प्रबल शक्तियां ही बाह्य संसार का सृजन करती हैं और विचारों को मूर्तरूप देती हैं।

समस्त विश्व की रचना ही विचार या कल्पना से हुई है। बाह्य जड़ संसार तो वास्तव में विचारों का ही एक प्रतिबिम्ब या छाया है।

मानव की सभी सफलताएं, आविष्कार या निर्माण सब पहले विचार संसार में पैदा हुए फिर उनका साकार या जड़ रूप बना ।

लेखक, आविष्कारक, नक्शानवीस, वैज्ञानिक आदि सब लोग अपने कार्यों को मन में सोचकर योजनायें बनाते हैं और फिर विचार जगत में ही उनका संशोधन करके उनको अन्तिम रूप देते हैं और इस के वाद वे इन योजनाओं को क्रियान्वित करते हैं तथा उनको जड़ या साकार रूप देते हैं।

जब हम अपने विचारों की शक्ति का सर्वोपरि दैवी विधान (कानून) के अनुकूल ठीक व सही दिशा में प्रयोग करते हैं तो उसका परिणाम निर्माणकारी, सुखप्रद व स्थाई होता है किन्तु इसके विपरीत विधान के प्रतिकूल, विचारशक्ति से दुरुपयोग करने से परिणाम विनाश, विपत्ति, कष्ट एवं दुख होते हैं।

अगर आप अपने सभी विचारों को इस प्रकार व्यवस्थित करेंगे कि 'ईश्वर सर्व शक्तिमान् एवं सर्वोच्च न्यायकर्ता है' और साथ ही उस महाप्रभु में अटल-अचल श्रद्धा व भक्ति बनाए रखेंगे तो आप भगवान से सम्पर्क स्थापित कर सकेंगे और साथ ही अपने सभी पाप व अपराधों के नाश एवं उनसे बचने का मार्ग भी आपको अपने अन्त:करण में ही मिल जायगा। विश्वास करें और आप जीवित रहें। अपने अन्त:करण स्थित नित्य सनातन भगवान को पहचानिए, उसकी आवाज सुनिये, उसके सुझाए मार्ग पर चलिये, फिर आप सभी पापों, अपराधों व कष्टों से मुक्ति पा जायेंगे।

जहां पर भय, चिंता, फिकर, सन्देह, कलह, नैराश्य तथा उत्साह-हीनता है वहां निश्चय ही अज्ञान है एवं प्रभु में श्रद्धा का अभाव है।

मन की ये सभी हालतें सर्वथा स्वार्थ परायणता (खुदगरजी) से ही पैदा होती हैं और इनका आधार, पाप या दुष्कर्म की शक्ति व सत्ता में अटूट विश्वास है इसलिए ये सभी नास्तिकवाद (अनीश्वर-वाद) को जन्म देती हैं।

हमें यथा सम्भव छुटकारा पाने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि इन विकारों के वश में रहते मोक्ष प्राप्त होना असम्भव है।

आप देने के समान ही किसी से डरना अथवा चिंता करना भी पाप है। भला सोचिए जिसको निःस्वार्थ प्रेम, सर्वशक्तिमान ईश्वर, शाश्वत एवं अटल ईश्वरीय न्याय में दृढ़ विश्वास है। वह फिर संसार में किससे डर सकता है और किस बात की चिन्ता कर सकता है।

अगर आप डरते हैं, चिंता करते हैं अथवा सन्देह करते हैं तो इसका अर्थ यह है कि आप ईश्वर पर विश्वास नहीं करते और उसकी सत्ता से इन्कार करते हैं।

मन की ऐसी अवस्थाओं से ही सारी कमजोरियां और असफलताएं उत्पन्न होती हैं और इन्हीं से शक्ति सम्पन्न मानसिक विचार कमजोर पड़कर बिखर जाते हैं जबकि अगर उन्हीं विचारों को एकाग्रचित होकर उद्देश्य पूर्ति में लगाया जाय तो अति उत्तम व तात्कालिक सफलताएं प्राप्त हो सकती हैं।

अगर आप मन की इन विपरीत अवस्थाओं को वश में कर लेंगे तो आप शक्ति-सम्पन्न जीवन व्यतीत कर सकेंगे और किसी की गुलामी या अधीनता नहीं करेंगे; बल्कि आप मालिक बनकर रहेंगे।

उपरोक्त मानसिक विचारों को वश में करने का एक मात्र उपाय यह है, आध्यात्मिक ज्ञान की निरन्तर व स्थाई वृद्धि।

आत्मसंयम के निरंतर अभ्यास द्वारा आप को अति शीघ्र अपनी आन्तरिक, विचार शक्ति का ज्ञान हो जायेगा और बाद में आप उस शक्ति को प्राप्त भी कर लेंगे एवं उसके उचित उपयोग एवं मार्ग का भी ज्ञान हो जायेगा।

जिस सीमा तक आप अपने मन एवं इन्द्रियों को वश में कर लेंगे तथा उनके अधीन न रहकर उन्हें अपने अधीन बना लेंगे। उसी सीमा तक आप बाह्य व्यवहारों तथा अपनी सांसारिक परिस्थतियों को भी वश में करके इच्छानुसार उनमें परिवर्तन करने में सफल हो जायेंगे।

सदा संशय से घिरे रहना, निराधार भय से त्रस्त रहना अथवा

चिंता-फिकर से रात-दिन ही अकारण सुस्त रहना, यह सब गुलामी। पराधीनता के लक्षण हैं और इन विकारों वाले व्यक्ति सदा औरों के गुलाम रहते हैं।

ऐसे बुजदिल लोग, जिन्हें ईश्वर पर विश्वास नहीं है जो मन को वश में नहीं रख सकते, वे अपने घर-कारोबार का भी प्रबन्ध ठीक तरह पर नहीं कर सकते और वे सदा परिस्थितियों के अधीन जीवन बिताते हैं, क्योंकि वे इन्द्रियों के गुलाम हैं।

शक्ति सम्पन्न जीवन के ध्येय के प्रमुख अङ्ग दृढ़ विश्वास एवं लक्ष्य ही हैं। संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं जो दृढ़ विश्वास एवं अटल उद्देश्य द्वारा पूर्ण न हो सके। नित्य प्रति मौन विश्वास व श्रद्धा के अभ्यास द्वारा विचारों की शक्तियां (वेग) एक जगह केन्द्रित हो जाते हैं और अपने गुप्त लक्ष्य (मंतव्य) को बल प्रदान करते रहने से यही शक्तियां सफलता अथवा मनोरथ सिद्धि की ओर अग्रसर होकर इच्छित फल प्रदान करती हैं। जीवन में आपकी परिस्थिति कैसी भी हो अगर आप शक्ति, उपयोगिता, सफलता किसी हद तक प्राप्त करने की आशा रखते हैं तो यह अत्यावश्यक है कि आप सर्व-प्रथम शान्ति, एकान्तवास व मनन द्वारा अपने विचारों की शक्ति का निरोध (एकत्रित करना) और उनको अपने लक्ष्य की ओर फेंकने (केन्द्रित करने) की जानकारी प्राप्त करें (सीखें)।

मान लो आप एक व्यापारी हैं और अचानक आपको घाटा या अन्य कोई भयंकर हानि सर पर आ पड़ी है या आप आफत में फंस गए हैं। आप घबराकर भय और चिन्ता में डूब जाते हैं और अपने विवेक का सन्तुलन खो बैठते हैं।

याद रखिए! अगर आपके मन में चिन्ता, फिकर या भय बराबर बना रहेगा तो ऐसी हालत में आप नष्ट हो जाएंगे अथवा जीवन ही खो देंगे, क्योंकि यह ध्रुव सत्य है कि जब किसी के मन में चिन्ता-फिकर घर कर लेते हैं तो विवेक, चातुर्य और बुद्धि नष्ट हो जाते हैं।

ऐसे समय में आपको चाहिए कि प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व अथवा रात्रि के समय से लाभ उठावें एवं किसी एकांत स्थान पर अथवा अपने मकान के किसी ऐसे कमरे में चले जाएं जहां आपको किसी प्रकार की बाधा या विघ्न पड़ने की सम्भावना न दिखाई दे, कोई शोरगुल न हो। वहां जाकर आप सुखपूर्वक सरल ढंग से आसन पर बैठ जाइए और बलपूर्वक अपने मन को चिन्ता-फिकर वाली बात से एकदम हटा दीजिए, उसका ख्याल दिल से बिल्कुल निकाल दीजिए और अपने मन एवं विचारों को, अपने जीवन के किसी अत्यन्त प्रिय, आनन्ददायक विषय की तरफ ले जाकर वहीं स्थिर कर लीजिए। ऐसा करने से आपके मन को आश्चर्यजनक शांति, सन्तोष और शक्ति प्राप्त होंगे और आपकी सभी चिन्तायें नष्ट हो जाएंगी।

यदि आपका मन फिर चिंता के नीचे समतल पर आने लगे तो उसे यत्नपूर्वक शक्ति तथा शान्ति के समतल पर लावें।

इसके वाद आप अपने चित्त को सर्वथा अपनी कठिनाई के दूर करने में अनन्य भाव से लगा दें।

फिर आप अनुभव करेंगे कि जो बात आपको अपनी चिन्ता की घड़ियों में पेचीदा कठिन तथा असम्भव जान पड़ती थी, वही अब सरल एवं स्पष्ट हो गई है। इसके सिवा आपकी सूझ-बूझ बड़ी तेज हो जाएगी एवं निश्चय भी दृढ़ हो जाएगा, क्योंकि मन की इसी अवस्था (शांत एवं अनुद्विग्न स्थिति) में ही लक्ष्य प्राप्ति का सच्चा मार्ग एवं उचित साधना का आभास होता है।

सम्भव है मन को उपरोक्त स्थिति में लाने के लिए आपको कई दिन तक साधन व अभ्यास करना पड़े, परन्तु यदि आप अविचल रहेंगे तो अवश्य सिद्धि (कामयाबी) मिलेगी।

और मन की स्थिर एवं शान्त अवस्था में जो मार्ग आपको दिखाई दे उसे ही आप जरूर अपना लें। आप किसी की न मानें; बल्कि शांत मनःस्थिति में दिखाई देने वाले मार्ग को ही मजबूती से

पकड़ लें—चिंता ग्रसित मन के विचारों पर न चलें, सत्य व सफल मार्ग दर्शन व उचित निश्चय केवल प्रशांत मनःस्थिति में ही सम्भव है।

इस भांति चित्तवृत्ति को एकाग्र करते रहने से इधर-उधर बिखरे हुए विचारों को शक्ति एक बिन्दु पर इकट्ठी हो जाती है और फिर वे तीव्र प्रकाश किरणों की भांति प्रस्तुत तथा आसन समस्या की ओर अग्रसर होकर वहां अपना प्रभाव डालती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि वह समस्या उन शक्तियों को आत्म-समर्पण कर देती है (हल हो जाती है)।

आपकी कठिनाई कैसी भी हो, कितनी ही बड़ी हो, वह निःसन्देह विचारों के शक्ति-सम्पन्न निरोध (एकीकरण) एवं शान्त एकाग्रता के सन्मुख लोप हो जाएगी।

संसार में ऐसा कोई भी लक्ष्य, कार्य एवं उद्देश्य नहीं है जो अपनी अन्तरात्मा की प्रबल शक्तियों के विवेकपूर्ण उपयोग तथा प्रयोग द्वारा अति शीघ्र सम्पन्न अथवा सफल न हो सके।

जब तक आप अपनी आन्तरिक प्रकृति (स्वभाव) को गहराई तक ढूंढने में सफल न होंगे तथा जब तक आप अपने उन अनेक शत्रुओं पर विजय नहीं पा लेंगे, जो वहां मन में घात में लगे बैठे हैं। तब तक आपको विचारों (खयालात) की अति सूक्ष्म विलक्षण शक्ति का ठीक-ठीक आभास नहीं होगा तथा न तो आप यह अनुमान लगा सकेंगे कि विचारों की शक्ति का बाह्य वस्तुओं (जड़ पदार्थों) से कितना गहरा सम्बन्ध है, उसमें कितनी जादूभरी (अलौकिक) क्षमता मौजूद है। परन्तु यह तभी संभव है जब कि आप उसका ठीक-ठीक प्रयोग एवं उपयोग करें। फिर आपको मालूम होगा कि विचार-शक्ति किस प्रकार आपके जीवन व परिस्थितियों को सुव्यवस्थित एवं परिवर्तित कर देती है।

आपका हर एक विचार जो आप सोचते हैं, एक वेग है जो बाहर

निकलता है और अपने गुण-दोष एवं गहनता के अनुसार वह बाहर निकलकर उन्हीं व्यक्तियों के दिलों में अपना घर कर लेगा जो उसको ग्रहण करने योग्य है और इस क्रिया का आप स्वयं पर भी अच्छा या बुरा असर पड़ेगा।

हर एक मन का दूसरे मन से अबाधित रूप से सम्बन्ध जुड़ा हुआ है एवं विचारों के वेग (समूह) भी आपस में निरन्तर अदल-बदल होते रहते हैं। स्वार्थयुक्त एवं दूषित विचार ऐसे दुर्भाग्यपूर्ण एवं विध्वंसक वेग होते हैं, शैतान के दूत होते हैं जो बाहर जाकर दूसरों के मन में दुर्भावनाएं पैदा करके दूषित वातावरण उत्पन्न करते हैं एवं बदले में (प्रतिक्रिया स्वरूप) अधिक वेग से आपकी तरफ वापस लौटते हैं।

इसके विपरीत जो विचार, शांत, पवित्र और निःस्वार्थ होते हैं, वे एक तरह के देवदूत (फरिश्ते) होते हैं जो संसार में अपने पंखों पर स्वास्थ्य समृद्धि, आनन्द लेकर जाते हैं एवं दूषित शक्तियों का नाश करते हैं तथा वे शोक व चिन्ता से संतप्त सागर पर आनन्द को वर्षा करते हैं।

आप सदा अच्छे उदार विचार रखें, जिसका परिणाम यह होगा कि वे आपके बाह्य, सांसारिक जीवन व उत्तम परिस्थितियों के रूप में साकार बन जाएंगे।

आप अपने अन्तर्मन के वेगों को वश में कर लीजिए फिर आप अपनी बाह्य परिस्थितियों को भी अपनी इच्छानुसार (अच्छी या बुरी) बना सकेंगे। सन्त एवं दुष्ट में यही अन्तर है कि संत अपने मन, इन्द्रियों को पूर्णतया वश में रखता है जबकि दुष्ट सर्वथा मन एवं इन्द्रियों का दास होता है।

सच्ची शक्ति और स्थाई शांति प्राप्त करने का एकमात्र अद्वितीय मार्ग यही है कि आप आत्मसंयम रखें। मन एवं इन्द्रियों को वश में करें एवं अन्तःकरण को शुद्ध करें।

यदि आप मन के वश हो जाते हैं तो आप नपुंसक व दुखी रहेंगे तथा संसार में आप तुच्छ एवं अनुपयोगी बने रहेंगे।

यदि आप अपने जीवन को सम्पत्ति एवं सुख से भरपूर व सुनहरा बनाना चाहते हैं तो आपके सम्मुख सबसे पहला कर्तव्य यह है कि आप अपने चंचल मन की क्षणिक वासनाओं को, घृणा या प्रेम के वेग को, क्रोध के उफान को, सन्देह व ईर्ष्या-द्वेष को तथा अन्य मानसिक विकारों को पूर्णतया जीत लें, जिनके आप बुरी तरह दास बने हुए हैं।

जिस सीमा तक आप अपने मानसिक एवं चंचल विकारों के वशीभूत रहेंगे, उसी सीमा तक जिन्दगी में आपको दूसरों के अधीन रहना पड़ेगा।

यदि आप दृढ़तापूर्वक, निडर होकर जीवन बिताने के इच्छुक हैं अथवा किसी बड़े मनोरथ उद्देश्य को पूरा करना चाहते हैं तो आपको ऊंचा उठने के उपाय सीखने चाहिए और अपने मन के इन सब तुच्छ विचारों, दूषित, मलिन कल्पनाओं पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

आपको नित्यप्रति अपने मन को शांत एवं स्थिर रखने का अभ्यास करने की आदत डालनी चाहिए, एकांत स्थान में जाना चाहिए। यह एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा कष्टप्रद विचार के स्थान पर शांतिप्रद विचार स्थिर किये जा सकते हैं।

जब तक आप इस साधन व उपाय के करने में सफल न होंगे तब तक आप यह आशा नहीं कर सकते कि भविष्य में अपने जीवन के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर आप अपनी मानसिक शक्तियों को केन्द्रित कर सकेंगे एवं कोई सराहनीय सफलता प्राप्त करेंगे। यह ऐसी विधि है जिसके द्वारा आप अपनी बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित करके एक दिशा में लगा सकते हैं।

जिस प्रकार बिखरी हुई, हानिकर नालियों को एक अच्छी नहर के रूप में काटकर उसको ठीक एक दिशा में ले जाकर उचित ढंग

से सिंचाई करने से फालतू बंजड़ भूमि को भी एक फल उत्पादक बाग अथवा अन्न पैदा करने वाले सुनहरी खेत के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति शान्ति व गंभीरता प्राप्त कर लेता है तथा अपने अन्त:स्थित विचारधाराओं को वश में करके उचित दिशा में ले जाता है, वह अपनी आत्मा की रक्षा करता है एवं अपने हृदय तथा जीवन को हरा-भरा, सफल तथा उपयोगी बना लेता है।

ज्यों-ज्यों आप अपने विचारों एवं मानसिक उद्वेगों पर विजय प्राप्त करने में सफल होते जाएंगे, त्यों-त्यों ही आप ऐसा अनुभव करेंगे कि आपके अन्दर एक नवीन एवं मूक शक्ति का प्रादुर्भाव हो रहा है तथा आपके साथ विश्राम एवं आनन्द निश्चित रूप में संलग्न रहेंगे।

शीघ्र ही आपकी गुप्त आन्तरिक शक्तियां प्रगट होने लग जाएंगी और जहां पहले आपके प्रयत्न कमजोर तथा प्रभाव रहित रोते थे। वहां अब आप शांत, विश्वास, दृढ़ श्रद्धा से काम कर सकेंगे जिसके कारण सफलता अवश्य मिलेगी और इस नवीन बल एवं शक्ति के साथ ही आपके अन्दर एक अपूर्व ज्ञान व विवेक का प्रकाश उत्पन्न हो जाएगा जिसे 'दिव्य दृष्टि' कहते हैं और उसके प्राप्त होने पर आप भविष्य में अन्धकार एवं सन्देह में न भटककर दृढ़ निश्चय एवं प्रकाश के साथ काम करेंगे।

इस दिव्य अन्तर्दृष्टि की प्राप्ति होने पर आपके निर्णय एवं मानसिक संकल्प सत्य होने लगेंगे। इसके बाद आपको ऐसी सिद्धि प्राप्त हो जाएगी कि आप उसकी सहायता से भावी दुर्घटनाओं को जान सकेंगे तथा सर्वथा निश्चित प्रामाणिकता के साथ अपने प्रयत्नों की भविष्यवाणी कर सकेंगे।

जैसे-जैसे आप दूसरे के प्रति अपने भावों को बदल लेंगे वैसे ही वे भी आपके प्रति अपने मनोभावों तथा व्यवहार को बदलते जाएंगे।

ज्यों-ज्यों आप अपने तुच्छ कायरतापूर्ण एवं विध्वंसक विचारों के वेग से ऊंचे उठते जाएंगे। त्यों-त्यों आपका संपर्क ऐसी बलवान, निर्माणकर्ता एवं ऊंचा उठाने वाली तरंगों से होता जाएगा जो बलवान, निष्कपट एवं उदार हृदय व्यक्तियों के मन से उत्पन्न होती रहती हैं।

आपका सुख अत्यन्त विस्तृत व स्थाई हो जाएगा और आप अपने अन्दर ऐसे आनन्द, बल एवं शक्ति का अनुभव करेंगे जो केवल आत्मसंयम द्वारा ही प्राप्त होती हैं।

आगे जाकर यह आनन्द, शक्ति और बल निरन्तर आपके अन्दर से प्रभावित होते रहेंगे और आपके बिना प्रयत्न किये ही तथा आपके बिल्कुल बिना जाने अनायास ही बलवान व्यक्ति आपकी ओर आकृष्ट होंगे। आपके हाथों में प्रभावसत्ता आवेगी और आपके इस बदलते हुए अन्दरूनी विचार संसार के अनुकूल ही आपकी बाहरी परिस्थितियां भी अपना रूप धारण कर लेंगी।

आप स्वयं ही अपने मित्र व अपने शत्रु हैं। इसलिए अगर आप संसार में उपयोगी शक्ति-सम्पन्न एवं सुखी बनना चाहते हैं तो आप विध्वंसक, भिक्षावृत्ति वाले एवं दूषित (नीच) विचार धाराओं को अपने हृदय में बिल्कुल स्थान न दें, उन्हें आश्रय न दें।

जिस प्रकार एक बुद्धिमान गृहस्वामी अपने नौकरों पर शासन करता है तथा अपने मेहमानों का सत्कार करता है वैसे ही आपको भी अपनी इच्छाओं पर शासन करना सीखना चाहिए और अगर आप अपने मन, इन्द्रियों व इच्छाओं को थोड़ा भी वश में कर लेंगे तो आपकी ताकत बहुत ज्यादा बढ़ जाएगी और जो व्यक्ति इस दैवी सिद्धि को प्राप्त कर लेगा उसको अलौकिक बुद्धि प्राप्त हो जाएगी, उसको आन्तरिक शांति व बल प्राप्त होंगे।

उसे यह भी अनुभव होगा कि जो मनुष्य अपने मन एवं आत्मा का स्वामी (शासक) है उसकी मदद व रक्षा विश्व की सभी शक्तियां करती हैं।

यदि आप स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ प्राप्त करना चाहते हैं तो सदा हृदय में दया व प्रेम तथा खुशी के विचार रखें और अगर यहीं पर घोर नरक के कष्ट भोगना चाहते हैं तो हिंसा, क्रोध, पशुता एवं विश्वासघात की भावनाएं रखें अथवा विचार अपने मन में सोचा करें, क्योंकि आपके खुद के विचार ही स्वर्ग अथवा इन्द्रलोक हैं और वे ही घोर नरक हैं।

आनन्द या सुख आपके विचारों पर ही निर्भर हैं और कष्ट व पीड़ा भी आपके विचारों का ही फल है। समस्त संसार की रचना ही विचारों से हुई है तथा यह विश्व, यह संसार-चक्र, जो कुछ चल रहा है वह सब ईश्वर की कल्पना का ही परिणाम है।

यदि आप अपने स्वप्न साकार बनाना चाहते हैं अथवा मनो-कामनाएं पूरी करना चाहते हैं तो सदा निरन्तर उनका ध्यान करें, उन्हीं को सोचते रहें। प्रकाश अथवा अन्धकार, पाप या पुण्य सब आपके विचारों पर निर्भर हैं।

रात-दिन अपने विचार ऊंचे व महान रखिए। बस! आप भी ऊंचे व महान बन जाएंगे।

इसके विपरीत अपने नीच विचारों से आप भी नीच हो जाएंगे।

स्वास्थ्य, सफलता व शक्ति का रहस्य

हम लोग बहुत समय से परियों की कहानियां सुनते रहे हैं कि परियां सदा दुष्ट व्यक्तियों से भोले-भाले शुद्ध हृदय व्यक्तियों की सहायता किया करती थीं। आज भी परियां व दैवी अदृश्य शक्तियां मौजूद हैं, परन्तु इस युग के पाप कर्मरत व्यक्तियों को वे नजर नहीं आतीं। परियां व दैवी शक्तियां अदृश्य रूप में निवास करती हैं, उनमें बड़ी भारी शक्ति है। वे परोपकारी एवं दयालु व्यक्तियों को स्वास्थ्य सम्पत्ति और सुख प्रदान करती हैं एवं समस्त प्रकार के सुख एवं भोज्य-पदार्थ प्रचुर मात्रा में प्रदान करती हैं।

परन्तु वे उन्हीं लोगों के लिए तत्पर रहती हैं जो ज्ञानी व बुद्धिमान हैं, विचारों की शक्ति की जिन्हें जानकारी है एवं जो भगवान के मंगलमय विधान की अवहेलना नहीं करते, जो लोग मन में भी किसी का बुरा नहीं सोचते, सदा दूसरों की भलाई करते हैं जिनका हृदय पवित्र है वे ही दैवी शक्तियों द्वारा पुरस्कृत किए जाते हैं एवं उन्हीं को वे सच्चा स्वास्थ्य धन-सम्पति व आनन्द प्रदान करती हैं।

जिनके विचार पवित्र हैं, उदार भावनाएं हैं जो सबसे निःस्वार्थ प्रेम रखते हैं और जो कभी घमण्ड नहीं करते वे ही महापुरुष कहलाते हैं।

निरन्तर अच्छे विचारों से हृदय को युक्त रखने से मनुष्य के चारों तरफ शक्ति एवं मधुरता का वातावरण बना रहता है और उसका प्रभाव उन सब लोगों पर पड़ता है जो ऐसे बड़ भागी पुण्यात्मा व्यक्ति के सम्पर्क में आते हैं और ऐसे सन्तों का पदार्पण

जहां होता है वह घर भी पवित्र हो जाता है, उसके दर्शन से पाप कट जाते हैं।

साधु, सन्त, महान् आत्माओं के पवित्र एवं भक्ति पूर्ण मानस से निकलने वाली पवित्र, प्रकाश युक्त किरणों के प्रभाव से पाप व अपराध की अशक्त प्रवृत्तियां दूर भाग जाती हैं।

जिन व्यक्तियों के हृदय में ईश्वर-भक्ति व श्रद्धा है तथा छल-कपट का अंश भी नही है उनमें ही शक्ति है, उनमें हो स्वास्थ्य है व वे ही सफल हैं। उपरोक्त लक्षणों वाले सत्पुरुषों को व्याधि, रोग, असफलता एवं विपत्तियां छू तक नहीं सकतीं क्योंकि वहां इनके लिए जगह नहीं है।

मानव जड़ शरीर से कुछ उच्च प्राणी है और उसका शरीर वैसा ही बन जाता है जैसा वह उसे अपने विचारों की शक्ति से बनाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि समस्त रोगों का कारण कुपथ्य एवं मानसिक विकार ही हैं।

संसार में ऐसा कोई दुष्कर्म अथवा बुराई नहीं है जिसकी जड़ व उत्पत्ति मन में न हो और पाप, बीमारो, शोक और कष्ट वास्तव में सृष्टि के विधान से सम्बन्धित नहीं होते वे नैसर्गिक कार्यक्रम के प्रतिकूल हैं और उनकी उत्पत्ति का एकमात्र मूल कारण कार्य और कारण के सत्य सम्बन्ध के विषय में हमारा अज्ञान ही है।

प्राचीन भारतीय इतिहास देखने पर यह पता चला है कि पहले भारत में कुछ ऐसे ऋषि-मुनि व योगी रहते थे, जिनका जीवन आहार-विहार, खान-पान इतना अधिक पवित्र, सात्विक एवं शुद्ध होता था कि उसके प्रभाव से वे साधारणतया कम से कम १५० साल तक जीते थे, कुछ २०० साल तक जोते थे और अगर उनमें से कोई व्यक्ति बीमार हो जाता तो यह कार्य अक्षम्य। अपराध एवं निंदित कर्म समझा जाता, क्योंकि उनका यह दृढ़ विश्वास था कि रोग पीड़ित

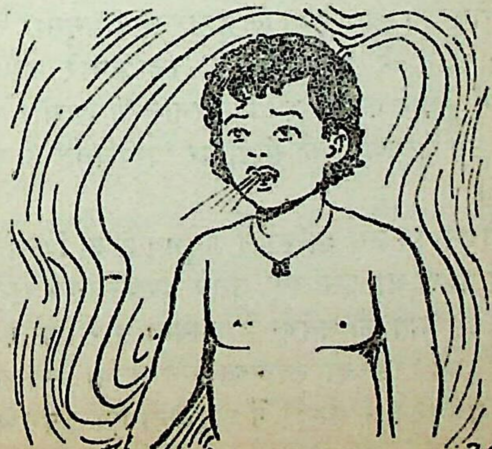
व्यक्ति ने अभक्ष्य भक्षण आदि द्वारा प्रकृति के नियमों का उल्लंघन किया है इसलिए रोग के रूप में उसे दण्ड मिला है।

हमें यह अन्धविश्वास सर्वथा अपने मन से निकाल देना चाहिए कि रोग दैवी प्रकोप का फल है और यह ईश्वर प्रदत्त है; बल्कि यह समझना चाहिए कि केवल हमारे अज्ञान लापरवाही व बदपरहेजी का नतीजा है।

रोग का आक्रमण उन्हीं लोगों पर होता है जिनके शरीर विजातीय द्रव्य से पूरित होते हैं और मन गन्दे होते हैं ऐसे लोगों के पास बीमारी नहीं फटकती जिनके मन व शरीर एवं विचार पवित्र होते हैं।

यदि आप क्रोधी, चितायुक्त एवं ईर्ष्या-द्वेषयुक्त या लालची हैं अथवा किसी अन्य दुर्गुण या विकार के वशीभूत हैं तो आपको स्वास्थ्य प्राप्त होना असम्भव है, क्योंकि आप अपने मन में निरन्तर रोग के बीज वो रहे हैं।

बुद्धिमान व्यक्ति यत्नपूर्वक मन के ऐसे विकारों को सर्वथा त्याग देते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि उपरोक्त मनोविकार गन्दे घर या



30

संचित मल के ढेर से भी अधिक भयानक होते हैं। समस्त शारीरिक

व्याधियों एवं पीड़ाओं से अपनी रक्षा चाहते हो और पूर्ण स्वास्थ्य व दीर्घ जीवन की इच्छा है तो अपने मन को स्थिर बनावें और विचारों को उच्च व पवित्र रखें तथा जीवन को प्रकृति के अनुकूल बनावें सदा प्रसन्न रहें, प्रेम पूर्ण भावनाएं रखें। साथ ही प्राणियों के प्रति वैर-भाव त्यागकर सबके प्रति अच्छी भावनाओं का प्रवाह हृदय में बहने दें फिर रोग व कष्ट आपके पास नहीं आवेंगे।

ईर्ष्या, द्वेष, शंका, संदेह, चिन्ताएं, घृणा और स्वार्थ वृत्ति को सर्वथा छोड़ दें, इससे आपको मंदाग्नि, गठिया, अम्लपित्त व हृदय रोग नहीं सतावेंगे।

परन्तु उपरोक्त मनोविकारों से घिरे रहने पर आप अवश्य रोग व कष्टों के शिकार बने रहेंगे। मन के विकारों व शारीरिक व्याधियों का कितना निकट सम्बन्ध है—यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

एक रोगी मनुष्य ने अपना इलाज कई डाक्टर-वैद्यों से कराया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। कई तीर्थों में स्नान किया, पर लाभ नहीं हुआ। एक रोज उसे स्वप्न हुआ कि हमारे आदेशानुसार चलो तो रोग-मुक्त होगे। स्वप्न में दैवी शक्ति ने कहा हमारे साथ आओ और अमुक जल में स्नान करो। रोगी ने स्नान किया और रोग मुक्त हो गया। वहां उस जलाशय की सीढ़ी पर 'प्रायश्चित करो' यह शब्द लिखे हुए थे।

बहुत सोचने पर उस व्यक्ति ने अनुभव किया कि वह बहुत समय से व्यभिचार प्रवृत्त था, इसलिए उसके दण्ड स्वरूप रोग का शिकार बना। उसने इस पाप को सर्वथा छोड़ दिया और फिर कभी वह रोग से दुखी नहीं हुआ। सच्चा स्वास्थ्य एव सच्ची सफलता एक साथ रहती हैं, क्योंकि विचार संसार में यह दोनों एक-दूसरे से अति निकट एवं जुड़ी हुई है।

आप अपने काम-क्रोध, लोभ पर व ईर्ष्या-द्वेष, घृणा, पर नियंत्रण

करें व शांति-संतोष धारण करें। इससे दुर्भाग्य एवं नियति के कठोर दण्ड से भी आप बच जायेंगे और कोई दुष्ट ग्रह आपका कुछ न बिगाड़ सकेगा। और अगर आप मन में दया व हृदय में दृढ़ ईश्वर-भक्ति को बनाएं रखेंगे तो अनेक खतरों व कष्टों से आपकी रक्षा होगी और कोई भी अनिष्ट नहीं होगा। दृढ़ विश्वास एवं श्रद्धा से अवश्य सफलताएं मिलती हैं।

सर्वशक्तिमान हरि में श्रद्धा, अटल, ईश्वरी विधान पर विश्वास, अपने कार्य में दृढ़ता अपनी शक्ति पर भरोसा, ये सब बातें ऐसे अजेय दुर्ग हैं जिनका आश्रय लेकर आप सर्वत्र विजय प्राप्त कर सकेंगे।

वैभव, सुख-सम्पत्ति व कल्याण प्राप्ति के लिए आप हर हालत में अपनी अन्तरात्मा के आदेशों का पालन करें एवं अन्तःस्थित ईश्वर के प्रति सच्चे बने रहें।

सब प्रकाशों को छोड़कर अन्तःस्थित प्रकाश पर निर्भर रहें, दूसरे उपदेश न सुनकर आत्मा की आवाज सुनें तथा अपने उद्देश्य की पूर्ति में निर्भय व शांत होकर लगे रहें और यह दृढ़ विश्वास रखें कि लोक-कल्याण व परोपकार करने वालों को ऊंची गति प्राप्ति होती है, कभी उनकी दुर्गति नहीं हो सकती। सृष्टि के नियम कभी बदल नहीं सकते और आपको निसंदेह वही प्राप्त होगा जिसके आप योग्य हैं और जो अपने बोया है। ईश्वर व उसके न्याय पर दृढ़ विश्वास रखना—यही सच्चे सुख व सफलता का शांति व संपत्ति का व कष्टों से मुक्त होने का एक मात्र उपाय है।

इसी विश्वास व स्वार्थ त्याग के प्रभाव से आप धर्म पर दृढ़ रह सकेंगे तथा सभी सांसारिक ऐश्वर्य, सुख भोग व धन के दौलत के संग्रह एवं उनमें फंसने की प्रवृत्ति का त्याग कर सकेंगे, जिनका अन्त केवल भस्म की ढेरी होता है। सभी सुख-दुखों में धैर्य व भक्ति पर अटल रहने से आपको अपूर्व आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होगी और सभी

सङ्कट स्वयं टल जायेंगे, क्योंकि संग्रह वृत्ति एवं तृष्णा समस्त दुःखों की जड़ है।

याद रखिए। धर्म युक्त एवं उदार विचारों से और सत्कर्म करने से परिणाम सदा बहुत ही सुन्दर होंगे। मूर्ख लोग कामनाएं करते हैं और उनके पूर्ण न होने पर भाग्य को दोष देते हैं, परन्तु बुद्धिमान लोग सदा अच्छे कर्म करके सन्तुष्ट रहते हैं।

आपकी सफलता या असफलता आपका प्रभाव व भाग्य छाया की भांति आपके साथ चलते हैं और यह ध्रुव सत्य है कि आपके हर समय व रात-दिन के विचार, कल्पनाएं व भावनाएं ही आपके भाग्य व परिस्थितियों का निर्माण करती हैं। अगर आपके विचार व भावनाएं प्राणियों के प्रति स्नेह पूर्ण निष्कपट, छल रहित और आनन्दमय होंगे तो दैवी शक्तियां आपको अक्षय सुख व आनन्द प्रदान करेंगी। इसके विपरीत अगर आप घृणा युक्त, अशुद्ध, दुःखमय एवं खोटे विचार व भावनाएं मन में रखेंगे तो विधान के अनुसार वे ही दैवी शक्तियां आपको भय व अशांति प्रदान करेंगी एवं अनेक दुःख, शोक एवं आपत्तियां आपको चारों ओर से घेरे रहेंगी।

निःसंदेह आप ही स्वयं अपने भाग्य के बनाने व बिगाड़ने वाले हैं, दूसरा कोई नहीं। आप स्वयं ही हर समय ऐसे विचार व भावनाएं अपने अन्दर से बाहर भेजते रहते हैं, जिनके प्रभाव से आपका जीवन सुधरता या बिगड़ता है।

आप अपने हृदय को उदार, स्नेहपूर्ण व सर्वथा स्वार्थ रहित बनाइए, इससे आपका प्रभाव व सफलता महान् एवं स्थाई होगे चाहे धन आपको अधिक न मिले।

इसके विपरीत निजि स्वार्थ की संकुचित मनोवृत्ति के प्रभाव से आपका प्रभाव व सफलताएं अत्यन्त साधारण व तुच्छ ही रहेंगी चाहे आप करोड़पति ही क्यों न बन जायें।

इसलिए आप मन से निष्कपट, उदार व स्वार्थ रहित एवं पवित्र श्रद्धायुक्त व एक ध्येय वाले बनें फिर आपको बदले में उत्तम स्वास्थ्य व स्थाई सफलता मिलेंगे एवं आप शक्ति वाले महापुरुष बन सकेंगे। अपने ध्येय पर दृढ़ रहें फिर आपको दैव कृपा से सुअवसर प्राप्त होंगे और आप उत्तरोत्तर उन्नति करते रहेंगे।

जो कुछ भी आपका ध्येय या मनोरथ हो आप सब ओर से चित्त हटाकर एकाग्र मन से उसमें लगे रहें एवं समस्त साधनों द्वारा उसकी पूर्ति की चेष्टा करें, फिर अवश्य आप सफल होंगे। मूर्ख लोग ऐसा न करके व्यर्थ बकवास तथा पराई निन्दा व पार्टीबाजी में अपने जीवन को व अपनी मानसिक व आध्यात्मिक शक्ति को बरबाद करते हैं तथा शारीरिक शक्तियों को शराब, मांस, व्यभिचार, मुकदमेबाजी में नष्ट करके अनेक विपत्तियों में फंसकर कष्ट पाते हैं। कभी अपने ध्येय से विचलित न हों, निर्भय बने रहें। क्रोधी, डरपोक, विचारहीन लोग कभी तरक्की नहीं कर सकते। परनिंदक कभी सुखी नहीं होते। विद्या एवं ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करते रहें तथा दानशील बनें। मांगना व मारना बराबर है। दूसरों को ठगने वाले ठग कहलाते हैं एवं ठगाने वाले दानी ठाकुर (महापुरुष) कहलाते हैं।

केवल अपनी अन्तरात्मा (अन्तःस्थित ईश्वर) की आज्ञा मानें। वह कभी धोखा नहीं देगी और उसके प्रसाद से आप बराबर उन्नति करते रहेंगे। मन की पवित्रता आपको स्वास्थ्य प्रदान करेगी। ईश्वर निष्ठा (भक्ति) आपको सफलता देगी, मन को बश में करने से आप दूसरों को जीत सकेंगे।

अक्षय सुख प्राप्त करने के उपाय

लगभग सभी व्यक्ति सुखी बनना चाहते हैं, परन्तु आज दुनियां में खुशी बिरले व्यक्ति हैं। गरीब, धनहीन व्यक्ति दौलत चाहते हैं और उनका विश्वास है कि धन प्राप्त होने पर उन्हें अक्षय सुख मिलेगा। धनवान व्यक्ति भी सब सुख, वैभव-विलास से घिरे रहने पर भी शांति व सुख से दूर हैं।

यह सच है कि सुख बाह्य सम्पत्ति से प्राप्त नहीं होता और न धनादि के अभाव से दुख मिलता है, क्योंकि अगर ऐसा ही होता तो सभी गरीब लोग दुखी रहते और धनी सदा सुखी रहते। दरअसल बात बिल्कुल इससे विपरीत है।

लेखक स्वयं ऐसे कई व्यक्तियों को जानता है जिनके पास अपार धन-सम्पत्ति, नौकर व भोग-विलास की प्रचुर सामग्री होने पर भी वे अति दुःखी व चिंतित शोक मग्न रहते थे जबकि कुछ अत्यन्त गरीब, धनहीन व्यक्ति बहुत प्रसन्न व सुखी थे। बहुत-से धनी पुरुषों ने हमें बताया कि धन-संग्रह के कारण उनके जीवन का माधुर्य समाप्त हो गया, स्नेह व त्याग न रह घमंड व स्वार्थ आ गया और वास्तव में गरीबी ही अच्छी थी। जो लोग बुद्धिमान, विवेकशील हैं वे तो यह मानते हैं कि इच्छाओं की पूर्ति मात्र से ही कोई व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता।

सच बात तो यह है कि लोग अज्ञानरूपी अन्धकार में फंसे होने से यह मान बैठे हैं कि केवल अपना स्वार्थ साधन करना ही श्रेष्ठ है और यही विश्वास संसार के समस्त दुःखों का मूल कारण है, परन्तु यह एक भयंकर भूल है, क्योंकि स्वार्थ या खुदगरजी ही सब दुःखों की जड़ है और जब तक आप स्वार्थ त्याग नहीं करोगे तब तक आनन्द व सुख कभी प्राप्त नहीं होगा।

इच्छाओं का परित्याग एवं यथा लाभ सन्तोष द्वारा ही आन्तरिक शांति, आनन्द व सुख मिलते हैं, विषय-भोग व इन्द्रियजन्य सुख क्षण भंगुर हैं। तृष्णा समुद्र के समान विशाल है और उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। इच्छा पूर्ति के साथ नई इच्छाएं पैदा होती हैं। जो इच्छाओं के गुलाम हैं वे उनकी पूर्ति हेतु अनेक पाप एवं जघन्य अपराध करने से भी नहीं चूकते, जिसका नतीजा यह होता है कि जब उनके पापों का घड़ा भर चुकता है और उसका कठोर दण्ड मिलने का समय आ जाता है तो नियति उन्हें भयानक ज्वलंत यातनाओं द्वारा पाप मुक्त करती है। दरअसल विषय वासनाएं नरक में धकेलती हैं और वहां भयानक यातनाएं सहनी पड़ती हैं।

इसके विपरीत इच्छाओं के परित्याग एवं संयमरूपी तपस्या से ही स्वर्ग प्राप्त होता है और तपस्वी व्यक्ति वहां अपार आनन्द व सुख भोगते हैं।

नरक व स्वर्ग आन्तरिक अवस्थाएं हैं। आप खुदगर्ज, स्वार्थी बन जायेंगे तो नरक मिलेगा और अगर सर्वथा निस्वार्थी, परोपकार रत, दानी बन जाइये तो आप चिरकाल स्वर्ग के सुख भोगेंगे।

यह निश्चित बात है कि जो लोग केवल अपने व्यक्तिगत सुख, व्यक्तिगत स्वार्थ के वशीभूत रहते हैं वे कभी सुख नहीं पा सकते, सदा दुःखी ही रहते हैं और जो उदार हृदय व्यक्ति दूसरों की सेवा, दूसरों के कष्ट दूर करना आदि कार्यों में अपना तन, मन, धन अर्पण करते हैं वे ही बैकुण्ठ व स्वर्ग के अधिकारी हैं जैसा कि महाराजा विक्रमादित्य किया करते थे। कीर्ति व यश दानियों को मिलता है। कृपण व लोभी कभी कीर्ति नहीं पा सकते।

जूनागढ़ के भक्त नरसी मेहता ने अपनी अरबों-खरबों की अपार धन सम्पत्ति, साधु सन्त दुःखी गरीबों को दे डाली पास कुछ न रखा; अकिंचन बन गये। इसी से स्वयं नारायण ने साकार बनकर

उनकी नानी बाई के ५६ करोड़ से भी अधिक का भात भर उन्हें अमर कीर्ति प्रदान की थी।

जरा सोचिए! जो वस्तुएं स्वभावतः नाशवान, क्षण भंगुर हैं उनके प्राप्त होने पर हमें सच्चा सुख कैसे मिल सकता है? सच्चा सुख तो नित्य, सनातन, स्थिर वस्तुओं में निष्ठा द्वारा ही मिल सकता है जैसे भक्ति, प्रेम, दया तथा सत्य। इसलिए भ्रम के पर्दे को हटाइए और नाशवान अस्थिर धनादि से मोह न करके ईश्वर के चरणों में मन लगाइए जो नित्य स्वरूप है।

साथ ही अपने मन को पवित्र, छल-कपट रहित बनाकर स्वार्थ वृत्ति को छोड़िए एवं सभी प्राणियों से निःस्वार्थ प्रेम कीजिए, इससे आपको पूर्ण शांति, अक्षय सुख व आनन्द प्राप्त होगा और फिर उसका आनन्द व सुख को आपसे कोई नहीं छीन सकेगा।

जो मनुष्य इतने उदार हृदय हैं कि दूसरों की भलाई में एवं उनके प्रेम में तन-मन-धन अर्पण कर देते हैं उन्हें ही अक्षय सुख व अपार आनन्द प्राप्त होता है एवं वे अजर-अमर हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाता है। आत्मा को शांति मधुर वचनों द्वारा एवं दया व स्वार्थ त्याग तथा परोपकार से ही मिलती है। आध्यात्मिक दृष्टि से सुख और समदृष्टि एक ही वस्तु है।

समदृष्टि ईश्वरीय विधान का एक अङ्ग है जिसका बाह्य आध्यात्मिक स्वरूप प्रेम है। इसके विपरीत सभी प्रकार की स्वार्थ परायणता (खुदगरजी) घृणित त्याज्य है और स्वार्थी बनना ईश्वरी विधान का उल्लंघन है। आप स्वार्थ त्याग करके समस्त संसार से प्रेम करें, फिर आप अपने को दैवी कृपा का भाजक बना सकेंगे एवं अक्षय सुख प्राप्त करेंगे।

आज दुनियां के स्त्री-पुरुष सुख की खोज में व्यर्थ ही भटक रहे हैं, पर उन्हें सुख नहीं मिलता। सच तो यह है कि सुख व आनन्द तो उनके अन्दर ही है और बाहर भी उनके निकट ही है और सारे संसार

में फैला हुआ है, परन्तु वे स्वार्थ साधन में लगे रहने से सब प्रकार के सुखों से अपने को वंचित कर रहे हैं।

इंगलैंड के महापुरुष श्री बरले ने अक्षय सुख के रहस्यों को बड़े ही सुन्दर ढंग से इस प्रकार समझाया है—

'मेरे पास एक व्यक्ति आया और भोजन मांगा, एक ने भीख चाही। तब मैंने भूखे को रोटी और दूसरे को पैसे दिए। एक तीसरा सहानुभूति व चौथा विश्राम मांगने आया और मैंने उन्हें सहानुभूति व विश्राम दिए। इस पर दैव कृपा से मधुर सुख व आनन्द मेरे पास आकर खड़े हो गए और चुपके से मेरे कान में कहने लगे—'तुम्हारे इस उदार कर्म व पुण्य के कारण हम सदा तुम्हारे साथ रहेंगे।'

व्यक्तिगत स्वार्थ एवं क्षण भंगुर पदार्थों का त्याग कर दीजिए। इससे आप तत्काल अमरत्व एवं बैकुण्ठ प्राप्त कर सकेंगे। दानी विक्रम व सखी की हातिम की तरह आप संकुचित स्वार्थ वृत्ति व खुदगरजी के कामों को छोड़ दें, इससे आपको स्वयं दैवी शक्तियों का सान्निध्य व सहायता मलेगी। पर दुखभंजनहार बनो तथा दूसरों के कष्टों व दुःखों को दूर करने में तन-मन-धन अर्पण करो, हर प्रकार दूसरों की सेवा करो, इससे अदृश्य शक्तियां तथा देवता गण आपको प्रत्येक कष्ट व शोक से मुक्ति दिला देंगे एवं आपको सर्वदा अनन्त सुख प्रदान करेंगे।

धार्मिक, दयालु, परोपकारी व्यक्तियों की ईश्वर सदा रक्षा करता है।

पहले मैंने अपने विचार उदार बनाये। फिर मैंने अपनी वाणी को मधुर बनाया, इसके बाद अपने कर्म अच्छे बनाए, इससे मुझे अपार आनन्द व सुख मिला—अतः आप भी ऐसा करके अक्षय सुख भोग सकते हैं।

सत्कर्म से स्वर्ग व दुष्कर्मों से नरक जरूर मिलता है और बैकुण्ठ

व स्वर्ग इसी दुनिया में है, परन्तु केवल दानी, दयालु व निस्वार्थी त्यागी व्यक्ति ही उन्हें प्राप्त कर सकते हैं। केवल निष्कपट, शुद्ध हृदय व्यक्ति ही स्वर्ग पा सकते हैं। कपटी व स्वार्थी तो नरक भोगते हैं और अधोगति को प्राप्त करते हैं। आप निष्काम कर्म करके एवं सभी जीवों से निस्वार्थ प्रेम करके अपने जीवन का ध्येय ऊंचा बना-कर सब प्रकार के आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। भगवत् भक्ति, प्रार्थना द्वारा आप शांति व ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त कर सकते हैं।

दान के द्वारा आप ऊंचे उठ सकते हैं और संग्रह व दान लेकर आप अधोगति को प्राप्त हो सकते हैं। इतिहास को देखो! दानी व्यक्ति अनन्तकाल से विश्व द्वारा पूजे जाते हैं परन्तु दान निस्वार्थ होना चाहिए।

महाराजा विक्रमादित्य व सखी हातिम की कीर्ति आज भी संसार में फैली है। क्यों? वे जब तक दूसरों के (शरणागतों) के कष्ट दूर न कर देते तब तक भोजन नहीं करते थे। प्यारी से प्यारी वस्तु भी औरों को दे डालते थे—वे कभी अपने सुख, अपने आराम का ख्याल नहीं रखते थे इसलिए परियां, देवगण व अदृश्य शक्तियां उन्हें सब सुख प्रदान करती थीं।

बस आप भी अपने कर्मों से दुःखी व सुखी बन सकते हैं, कर्मों से स्वर्ग या नरक प्राप्त कर सकते हैं, कर्मों से ही अपकीर्ति प्राप्त कर सकते हैं, कर्मों से ही आप रोगी या नीरोग बन सकते हैं व कर्मों से ही आप अल्पजीवी या दीर्घजीवी बन सकते हैं।

सम्पत्ति, वैभव व धन सम्पदा की प्राप्ति

अच्छी सम्पदा केवल उन्हीं को प्राप्त होती हैं जिनके हृदय में श्रद्धा, भक्ति, उदारता और प्रेम भरे रहते हैं। जिनके दिल में उपरोक्त बातों का अभाव है, वहां कल्याण व लक्ष्मी का निवास असम्भव है, क्योंकि सुख की भांति सम्पदा भी वाह्य वस्तु न होकर आन्तरिक वस्तु है। लोभी व कृपण व्यक्ति करोड़पति बनने पर भी सदा अभागा, नीच व दुखी रह सकता है।

वास्तव में असन्तोषी ही दरिद्री है एवं जो यथालाभ सन्तुष्ट हैं वही धनी हैं और बड़ा धनी वह है जो अपने धन को परोपकार एवं दान में खर्च करता है।

विश्व अलभ्य वस्तुओं से भरा है, परन्तु आज का मनुष्य केवल रुपये-पैसे इकट्ठे करने में ही अत्यन्त व्यस्त रहता है अथवा नश्वर भूमि पर अधिकार करना चाहता है। ऐसी सूरत में यह मानना पड़ेगा कि स्वार्थ वृत्ति कितनी मूर्खता व अज्ञान का स्वरूप है। इसके साधन हेतु लोग कैसे-कैसे जघन्य अपराध व दुष्कर्म करके कष्टों, दुखों व अकाल मृत्यु का आलिंगन करते हैं। वास्तव में स्वार्थ परायणता, आत्म-हत्या व स्वयं का विनाश ही है। स्वार्थी व्यक्ति, परिवार, समाज व देश के लिए कलंक होते हैं।

प्रकृति व उसके सब अंग सबको अबाधित रूप से देते रहते हैं और इससे उन्हें कोई हानि नहीं होती, परन्तु आज का मनुष्य संग्रह करके सब कुछ खो बैठता है।

ईश्वरीय न्याय के प्रति विश्वास रखें, उसमें हेर-फेर हो नहीं सकता, धर्म सर्वोपरि वस्तु है! इस विधान के अनुसार विश्वासघात,

बेईमानी भूलकर भी कभी न करें, क्योंकि यह दुर्गुण भयानक अग्नि की भांति आपको जला देंगे।

सदा और हर हालत में वही कर्म करें जिसे आप ठीक, उचित समझें और ईश्वरीय न्याय पर भरोसा रखें। उस सर्वशक्तिमान, अन्तर्यामी प्रभु में विश्वास बनाए रखें जो सर्वत्र व्याप्त है. वह कभी आपको धोखा नहीं देगा; बल्कि सदा रक्षा करेगा जैसे भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी।

ईश्वरीय निष्ठा द्वारा आपकी सब हानियां लाभ के रूप में बदल जायेंगी एव सब श्राप बलिदान बन जायेंगे। प्रेम, दया, सत्य, उदारता, क्षमा आदि गुणों को कभी न छोड़ें, क्योंकि यह आपको उच्चतम स्थान प्रदान करेंगे और इनके रहते आपकी कभी दुर्गति न होगी।

अपने हृदय को विशाल बनाइये, संकुचित वृत्ति को कष्ट व दुख का मूल समझकर सर्वथा छोड़ दीजिये और सदा दूसरों से स्नेह रखते हुए उनके कष्ट निवारण करते रहिए, इसके फलस्वरूप आपको इसी दुनियां में अपार आनन्द, अक्षय सुख, धन व सम्पत्ति बिना मांगे मिलेंगे। एवं दुर्भाग्य व दुष्ट ग्रहों से मिलने वाले कष्टों से भी आपकी रक्षा होगी एवं जीवन सदा सुखमय बना रहेगा।

रोग रूपी भयानक विपत्ति से अपनी रक्षा के लिए आप लंघन, फलाहार, वस्त्रों व औषधियों के परित्याग रूपी अचूक उपायों का आश्रय लीजिये तथा राजदण्ड, ईश्वरी दण्ड व नरक यातनाओं से बचने के लिए हत्या, बलात्कार, चोरी विश्वासघात तथा काम-क्रोध लोभ का परित्याग कीजिये क्योंकि उपरोक्त एक भी दुर्गुण के शिकार होने पर आप इस प्रकार नष्ट हो जायंगे जैसे दीपशिखा के स्पर्श से कीट-पतंग नष्ट होते हैं।

आपके अदृश्य हृदय का श्वेत परिधान अगर पाप एवं अपराध, शोक व कष्ट से गन्दा हो गया है, तो केवल प्रार्थना व तीर्थ स्नान

उसे उज्ज्वल नहीं बना सकते। इसके लिए ज्ञान एवं विवेक द्वारा स्वार्थ व हिंसक मनोवृत्ति को त्याग कर प्रेम, दया व सत्य को ग्रहण करना पड़ेगा, तभी ईश्वर का निवास आपके हृदय में होगा व हृदय की गन्दी चादर साफ व निर्मल बनेगी।

स्वार्थ और सत्य दो राजा हैं!

मनुष्य की आत्मा के युद्ध-क्षेत्र के दो राजा हैं जो आपस में राज्य सत्ता के लिए हमेशा लड़ते रहते हैं और हृदय पर विजय व अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं। इनमें स्वार्थ तो माया एवं लोभ का अधिपति है और सत्य का स्वामी अंतःस्थित परमेश्वर है।

स्वार्थ का राजा विद्रोही है और उसके शस्त्र ये हैं: काम-पिपासा, भोग लिप्सा, घमण्ड, ईर्ष्या, मद, स्वार्थ, परायणता व हिंसा और ये दुर्गुण अज्ञान रूपी अन्धकार से उत्पन्न होते हैं।

परन्तु राजा सत्य, बड़ा विनम्र व कोमल है और उसके शस्त्र ये हैं: कोमलता, विनय, सन्तोष, पवित्रता, स्वार्थ-त्याग, मानवता, प्रेम व दया और सब ज्ञानरूपी प्रकाश के द्योतक हैं।

प्रत्येक मानव के हृदय में इनमें से एक का प्रभुत्व अवश्य रहता है, जहां स्वार्थ है वहां सत्य नहीं है और जहां सत्य है वहां स्वार्थ नहीं है। यह उपदेश भगवान बुद्धदेव के श्रीमुख से निकले हुए हैं।

उनका मत यह है कि मनुष्य एक साथ ईश्वर व शैतान की आराधना नहीं कर कर सकता।

स्वार्थ संकीर्ण एवं टेढ़ा है और स्वार्थ से अनेक घातक व अनन्त इच्छाएं उत्पन्न होती हैं और उसके पथ-भ्रष्ट मूर्ख पुजारी या भक्त भ्रम में पड़कर व्यर्थ ही यह सोच लेते हैं कि हम अपनी समस्त सांसारिक कामनायें भी पूरा कर लेंगे और सत्यवादी बने रहेंगे।

परन्तु सत्य के भक्त व प्रेमी स्वयं का तथा माया का त्याग करके उसकी पूजा किया करते हैं और वे निरन्तर स्वार्थ परायणता तथा सांसारिक बंधनों व माया से अपनी रक्षा करते रहते हैं।

सत्य की उपासना के लिए त्याग आवश्यक है; सर्वस्व त्याग

करके अकिंचन बनना जरूरी है, क्योंकि सत्य (ईश्वर) के साक्षात्कार के लिए स्वार्थ का सर्वथा लोप (अभाव) नितांत आवश्यक है; भक्त मीरा मेवाड़ राज्य व उसके अनंत वैभवों का सर्वथा परित्याग करके ही भगवद् साक्षात्कार करने में सफल हुई थी। महाराजा बलि ने भी वामन भगवान को पृथ्वी व राज्य दान करके ही अमर कीर्ति व कृष्ण सान्निध्य प्राप्त किया था। संसार के समस्त ऋषि, मुनि, सन्त व भक्तों ने सर्वप्रथम माया, धन, सम्पत्ति, सांसारिक सुख सबका परित्याग करके ही सिद्धि, कीर्ति व भगवान को प्राप्त किया था।

परन्तु क्या आज का महालोभी, अति स्वार्थ परायण, धन लोलुप, कामी मानव अपने लोभ को, स्वार्थ को, भोग-लालसा को, पार्टीबाजी व कुर्सी की तृष्णा को छोड़ सकता है? शायद नहीं! और इसलिए उसे शांति कभी नहीं मिलती।

संसार के हर क्षेत्र में नजर पसारकर देखिये, जहां भी कोई व्यक्ति केवल स्वार्थ में लिप्त हो जाता है वहीं कठिनाइयां उसे आ घेरती हैं, स्वार्थी व्यक्ति अपार कष्ट, पड़ाएं, रोग, शोक व निराशाओं से घिरा रहता है एवं दुर्भाग्य उसे नष्ट कर देता है।

परन्तु इतिहास पढ़कर देखिये परमार्थ एवं सत्य के मार्ग से कठिनाइयां दूर रहती हैं और सत्यवादी, परमार्थी व स्वार्थ त्यागी बनने पर समस्त कष्टों से, शोक समूह व निराशाओं से दैवी शक्तियां मुक्ति दिलाती हैं।

स्वार्थ अन्धा है एवं सत्य व परमार्थ प्रकाशमान हैं; सत्य के प्रकाश को स्वार्थी नहीं देख सकते। स्वार्थी व अभिमानी व्यक्ति अपने इन दुर्गुणों द्वारा परिवार, समाज व देश का सदा अकल्याण करते हैं अतः वे दण्ड के भागी हैं। ऐसे व्यक्ति क्या दुष्कर्म नहीं करते?

मिलावट, हत्या, बलात्कार, चोरी, डाके, अपहरण, हिंसा, विश्वासघात, देशद्रोह आदि जघन्य अपराध करने में भी उन्हें संकोच

नहीं होता। आश्चर्य तो यह है कि उपरोक्त अज्ञानी व्यक्ति बार-बार के कठोर दण्ड, कारावास, पुलिस यन्त्रणायें, फांसी आदि से भी नहीं डरते एवं अन्य अपराधियों की महान दुर्दशा व अधोगति एवं सर्वनाश को आंखों देखते हुए भी कोई शिक्षा ग्रहण नहीं करते।

यह सर्वथा सत्य व प्रकट तथ्य है कि आग में हाथ डालने व उसे छूने पर जलना ही पड़ेगा और जलने से उत्पन्न अकथनीय पीड़ायें भी नियत अवधि तक अवश्य भोगनी ही पड़ेगी चाहे कुछ भी उपाय करें और कोई शक्ति इन पीड़ाओं से आपकी रक्षा नहीं कर सकेगी।

इसी प्रकार की ज्वलंत अग्नि, दुष्कर्म पाप व अपराध हैं। इस आग का स्पर्श व प्रवेश भी आपको अछूता नहीं छोड़ेगा। यह भयानक आग आपका धन-सम्पति, सुख, नौकरी, कारोबार, प्रतिष्ठा व जीवन भी भस्म कर सकती है और रिश्वत, प्रार्थना आदि द्वारा भी आप कर्मफल एवं नियति के कठोर दण्ड से नहीं बच सकते।

जिस प्रकार हाथी काम विकार के कारण कागज की कृत्रिम हथनी पर मोहित होकर, शिकारियों द्वारा निर्मित गहरे गड्ढे में फंसकर आयुपर्यन्त कष्टमय, पराधीन जीवन बिताता है वैसे ही आज के कामी पुरुष, उच्छृङ्खल नारियां, युवक-युवतियां धर्मपूर्वक विवाहित जीवन की मर्यादाओं को ठुकरा कर बलात्कार, अपहरण, व्यभिचार कर्म में प्रवृत्त होकर निंदा व घृणा के पात्र बनते हैं तथा समाज में कलंकित बनकर नारकीय जीवन बिताते हैं।

घमण्डी व्यक्ति अभिमान के कारण अपने आपको ही श्रेष्ठ व सर्वोपरि समझते हैं। ऐसे लोग दूसरे लोगों को व उनकी सम्मतियों को तुच्छ समझते हैं एवं झूठे विवादों व कलह में प्रवृत्त रहकर अपने बहुमूल्य समय व शक्ति को नष्ट करते हैं। इसके विपरीत सज्जन, उदार व्यक्ति केवल सत्य से स्नेह रखते हैं, वे सभी व्यक्तियों को उदार दृष्टि से देखते हैं और सबका सम्मान करते हैं।

ऐसे सज्जन पुरुष दूसरे लोगों की सम्मति से अपनी सम्मति अच्छी

नहीं समझते और विनम्र व कोमल हृदय से तर्क छोड़कर स्नेह निभाते हैं। इस सत्कर्म के कारण वे स्वर्ग-सुख प्राप्त करते हैं।

चाहे कुटुम्ब-परिवार हो, समाज या गांव हो, शहर या कस्बा हो अथवा कोई संगठन हो या देश ही हो; स्नेह से यह फलते-फूलते हैं व उन्नति करते हैं।

परन्तु आज के युग में तो बात कुछ उल्टी ही है। सब जगह स्वार्थवश व अज्ञानवश कलह, लड़ाई, झगड़ा, दंगा, फिसाद का साम्राज्य है।



यह ध्रुव सत्य है कि सास और बहू, बहन व भाई, पिता और पुत्र, पति और पत्नी, भाई-बन्धु, देवरानी, जिठानी, ननद, भौजाई, चाचा-भतीजा, श्वसुर, जमाई, साले-बहनोई के नाते-रिश्ते कितने कोमल, मधुर व स्नेहजन्य हैं, परन्तु जब कलह व झगड़े हो जाते हैं तब ये पवित्र सम्बन्ध व रिश्ते समाप्त होकर परिवार व उसकी सुख-शांति का सर्वनाश कर डालते हैं।

लोग (पुरुष, स्त्री) व अन्य व्यक्ति क्रोध के वशीभूत होकर वाद-विवाद व गाली-गलौज तथा एक-दूसरे की कटुआलोचनायें और

निंदा करते हैं और मूर्खता के कारण यह सोचते हैं कि हम ही सच्चे हैं और सब झूठे हैं; मगर ऐसा करके वे स्वयं अपना विनाश करते हैं।

दुष्ट, शैतान, नीच व्यक्ति स्वार्थ तथा लोवभश दूसरों से लड़ते हैं और उनकी हिंसा करते हैं, परन्तु सत्यनिष्ठ, क्षमाशील तथा दयालु व्यक्ति स्वयं अपनी हानि सहन करके सबको क्षमा करते हैं।

बुद्धिमान लोग इस रहस्य को जानते हैं कि झगड़ों से सर्वनाश होता है और दया व हिंसा दोनों ही क्रिया व प्रतिक्रिया एवं कारण व कार्य के अटल सिद्धान्त के अनुसार प्राणियों को प्रतिफल अवश्य देती है।

हिंसा व क्रोध का फल पीड़ाएं, कष्ट व नरक हैं। अहिंसा व दया का प्रतिफल आनन्द, सुख और स्वर्ग है।

शंका, शत्रुता, ईर्ष्या, द्वेष, काम वासनाएं एवं अभिमान आदि मनोविकार, बन्धन व नरक के कारण हैं।

पवित्रता, प्रेम, दया, संयम, भक्ति व नम्रता आदि दैवी गुण हैं, ये प्राणियों को अपार आनन्द, अक्षय सुख एवं स्वर्ग प्रदान करते हैं।

क्या आप धन के लोभी हैं ? क्या धन के लिए पाप और अन्याय भी करते हैं ? क्या आप अभिमान वश अपनी पार्टी के लिए दूसरी पार्टी से शत्रुता रखते हैं और लड़ते हैं ? क्या आपको सत्ता, कुर्सी याने नेतागीरी का लोभ है ? क्या आप औरों से अपनी झूठी प्रशंसा या खुशामद चाहते हैं ?

अगर आपमें उपरोक्त बातें मौजूद हैं तो आप चाहे अपने को धर्मात्मा, भक्त या जनता का सेवक समझें परन्तु दरअसल आप नरक के अधिकारी हैं और जब कर्मों का फल मिलने का समय आयेगा तो स्वयं ही उचित प्रतिफल भोगना ही पड़ेगा।

इसके विपरीत क्या आप धन के लोभी नहीं हैं ? क्या आप धन के लिए पाप नहीं करते ? क्या आप सर्वथा कलह, वाद-विवाद,

झगड़े तथा पार्टीबाजी को बुरा समझकर उनसे दूर रहते हैं ? क्या आप सभा में सबसे नीची जगह बैठकर व अपमानित होकर भी क्रोध



न करके क्षमाशील बने रहते हैं ? क्या आप अभिमान, क्रोध तथा काम-विकारों के वशीभूत नहीं होते ?

बस! अगर आपमें उपरोक्त गुण हैं तो आप मनुष्य नहीं देवता हैं, आपका जन्म सफल है और चाहे मन्दिर में आप जायें या न जायें, भगवान आपकी रक्षार्थ सदा आपके पीछे-पीछे फिरते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण के निज मुख से उच्चारित एवं सर श्री एडविन आरनोल्ड द्वारा अनुवादित सुन्दर शब्दों में भक्तों व सन्तों के लक्षण सुनिये—

ईश्वर के सिवा किसी से न डरना, ज्ञान एवं विद्या प्राप्त करने की चेष्टा, खुले हाथों दान देना, संयम, एकान्त प्रेम, विनम्रता, अहिंसा, सच बोलना, क्रोध का त्याग, उदारता, क्षमा शीलता, पीड़ित, दुखी प्राणियों की सेवा, सन्तोष, तृष्णा का त्याग, छल-कपट का त्याग— इन लक्षणों वाले महापुरुष स्वर्ग प्राप्त करते हैं।

आज के युग में तो लोग एक-दूसरे के विरोधी बने हुए हैं। कुटुम्ब,

गांव, समाज, प्रांत व देशों में निरन्तर शत्रुता व कलह और झगड़े चल रहे हैं और इसीलिए सारा संसार कष्ट, पीड़ा और शोक से दुखी है। सभी अपना स्वार्थ साधन करना चाहते हैं। काम-पिपासायें, अधिकार लिप्सा, धन-लोलुपता, तृष्णा, मतभेद, ईर्ष्या, द्वेष के वशीभूत सब ही दूसरों को बरबाद करके अपना भला सोचते हैं। परन्तु उपरोक्त दुर्गुणों के रहते सत्य एवम् ईश्वर-प्राप्ति तथा सुख शांति ऋद्धि-सिद्धि असम्भव है। घृणा के समान कोई शोकप्रद वस्तु नहीं और पाशविकता (कामुकता) के समान कलंक लगाने वाली और कोई चीज नहीं है और लोभ के समान कोई दुर्गुण नहीं है।

सन्त पुरुष किसी का अपमान नहीं करते, किसी की निंदा या आलोचना नहीं करते, कभी अनुचित स्वार्थ साधन नहीं करते इसलिए वे शांति प्राप्त करते हैं। ऐसे महापुरुष ही सत्य को जान सकते हैं। वे अपनी तपस्या द्वारा देवताओं के प्रिय बन जाते हैं एवम् भगवान उनको आश्रय प्रदान करते हैं।

ऐसे ज्ञानी लोग यह जानते हैं कि ईश्वरी न्याय सर्वोपरि है, कष्ट, शोक, पीड़ाएं अज्ञान व स्वार्थ से उत्पन्न होते हैं। ऐसे व्यक्ति कभी वाद-विवाद, कलह या झगड़ा नहीं करते।

वे अच्छी तरह जानते हैं कि आज का मनुष्य मदांध एवम् परम् स्वार्थ परायण है, सारी दुनियां भ्रम व तृष्णा के वशीभूत है एवम् संसार में तमोगुण का लोभ, क्रोध, काम व हिंसा का राज्य है, इसीलिए सत्य के दर्शन दुर्लभ हैं।

लगभग सभी स्त्री-पुरुष भोग-विलास और ऐश-आराम में डूबे हुए हैं, नाचरंग, मांस-मदिरा का सेवन करते हैं, घमण्ड में चूर रहते हैं। धीरे-धीरे सुख भोग व सत्ता प्राप्त करने की तृष्णा उनके दिलों में बढ़ती जाती है।

और वे बेकार काल्पनिक सुख-भोगों व अमरत्व के स्वप्न देखा करते हैं एवं पाप प्रवृत्त रहते हैं, किन्तु जब अपने ही दुष्कर्मों का फल

और पापों के दंड भोगने का अवसर आ जाता है तब पापों के फल-स्वरूप वे महान कष्ट, पीड़ाएं व दुख भोगते हैं और निराश व शोक-मग्न होकर ईश्वर की शरण में आने का इरादा करते हैं।

अगर आप दुखी हैं तो निश्चय जानिये कि आप खुदगर्ज व स्वार्थी हैं, क्योंकि जहां परमार्थ का अभाव एवं स्वार्थ परायणता है वहीं कष्ट तथा दुख हैं एवं सत्य, दया, परोपकार द्वारा समस्त दुख दूर हो जाते हैं।

संसार खुद अपने हाथों दुख और पीड़ा उत्पन्न कर रहा है। इसके लिए अन्य को दोष लगाना व्यर्थ है। अनन्त सुख, अक्षय शांति व आनन्द एवं स्वर्ग प्राप्ति के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हृदय को शुद्ध किया जावे, कपट-जाल को काटकर फेंका जाय। इसके बाद हृदय को निस्वार्थ प्रेम एवम् समस्त भूतों व प्राणियों के प्रति दया, सहानुभूति व करुणा का सागर बनाया जावे, घृणा का अंश भी न रहे।

आपके साथ अगर कोई बुरा करे तो आप बदले में भलाई करें, कोई घृणा करे तो आप प्रेम कीजिए, कठोर व्यवहार के बदले में नम्र व्यवहार करें और कोई गाली दे तो आप हंसकर उससे मधुर बचन बोलें।

उपरोक्त तपस्या व स्नेह सिंचन के प्रभाव से आपके पाप और दुख कट जायेंगे, आपको इस लोक व परलोक में कहीं कोई भय न होगा।

सुख-शान्ति कहां है ?

दुनिया भी एक रंग-मंच है जहां रात-दिन चक्र की भांति सुख-दुख, पाप-पुण्य दोनों के प्रदर्शन होते रहते हैं। स्वार्थ रेगिस्तान है और परमार्थ ही सुन्दर बाग है।

लोग अपने हाथों से अपना भाग्य बनाते और बिगाड़ते हैं, कर्मों से

हो नीचे व ऊंचे बनते हैं। कर्मों से ही आप दुखी और सुखी बनते हैं। इसी दुनिया में स्वर्ग है और यहीं नरक है, अतः अन्तःस्थित परमेश्वर को मधुर, स्थिर, सत्य वाणी को सुनकर तदनुसार आचरण कीजिए, सुख व शांति वहां मिलेगी—अन्यत्र नहीं।

○

आध्यात्मिक शक्ति कैसे प्राप्त हो ?

आज संसार में अधिकांश स्त्री-पुरुष ऐसे हैं जो हमेशा आनन्द, सुख भोग, शृङ्गार, नशा तथा नाचरंग में लिप्त रहना पसन्द करते हैं। सदा हंसी या रोना देखते रहते हैं। कोई भी शक्ति, स्थिरता व बल की इच्छा नहीं करता। इस प्रकार वे अपनी शक्ति को बरबाद कर देते हैं।

सच्ची शक्ति एवं प्रभाव चाहने वाले थोड़े हैं, क्योंकि इनकी प्राप्ति के लिए स्वार्थ त्याग अत्यावश्यक है।

चंचल मन के वश में होना, इन्द्रियों के स्वाद के आधीन रहना—ये कमजोर बनाते हैं। संयम व इन्द्रिय निग्रह द्वारा आध्यात्मिक-शक्ति प्राप्त हो सकती है।

जो लोग भोग-विलास चाहते हैं, नशा करते हैं, रंग-रेलियां मनाते हैं, मांस-मदिरा सेवन करते हैं एवं अपने मानसिक खोटे विचारों के शिकार हो जाते हैं उनमें कोई सिद्धांत, प्रभाव या शक्ति नहीं पाई जाती।

जो उद्देश्य रखते हैं, अडिग होकर अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए यत्न करते हैं वे ही दरअसल सर्वाधिक मानसिक शक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

आप अपने मन व इन्द्रियों को जीत लें फिर आप अपने भाग्य पर भी विजय पा सकते हैं।

जो लोग स्वर्थी हैं वे कोई ध्येय नहीं बनाते और जब उनके ऐश-आराम में विघ्न होने की संभावना हो जाती है तो वे तुरन्त पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं।

स्वार्थी लोग केवल अपने स्वार्थ साधन करने में संलग्न रहते हैं और अपने मनोरथ सिद्ध करने के लिए घृणित से घृणित दुष्कर्म भी कर डालते हैं।

वे अनेक दुष्ट षड्यन्त्रों द्वारा अपने विरोधियों व शत्रुओं को कुचलकर खत्म करना चाहते हैं, परन्तु ऐसे स्वार्थान्ध व्यक्ति कभी यह नहीं सोचते कि वे स्वयं अपने शत्रु हैं।

ऐसे स्वार्थ संलग्न व्यक्तियों के कार्य शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि वे सत्य धर्म के विपरीत हैं। केवल परोपकार भावना, सेवा और लोक कल्याण हेतु किये हुए कार्य ही फलते-फूलते हैं व स्थिर रहते हैं।

कुछ वेदांत वादियों का कथन है कि आत्म संयम एवं तपस्या द्वारा ऐसी आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हो सकती है जिससे साधक श्राप व वरदान दे सकता है।

किसी भी उद्देश्य सिद्धि के लिए अपनी समस्त शक्ति, साधन, विचार तथा चेष्टाओं को सब ओर से हटाकर उसी तरफ लगाना जरूरी है।

इसके सिवा परमार्थ साधन के लिए रीति-रिवाज, लोक निंदा से तथा रुढ़ियावाद से कभी न डरो व दूसरों की राय की परवाह न करते हुए निर्भय होकर अपना कार्य करते रहिए।

हमेशा अपनी अन्तरात्मा का अनुसरण कीजिए और हृदय स्थित दिव्य प्रकाश के बताये मार्ग पर चलिये, क्योंकि इस ईश्वरी प्रकाश के सामने अन्य प्रकाश तुच्छ एवं नगण्य हैं।

अपने अन्तःकरण की आज्ञा मानना ही बहादुरी तथा धार्मिकता है और दूसरों के इशारों पर चलना तो निरी दासता है।

हर क्षेत्र में स्वार्थ परायणता, संकट, कमजोरी तथा विनाश के गढ़े में डालती है एवं त्याग हो जीवन, शक्ति, स्वर्ग व सुखप्रद होता है, त्याग तथा तपस्या द्वारा आप प्रारब्ध फल से भी सुरक्षित रह सकेंगे।

पूर्ण सुख व शान्ति की अनुभूति

बाह्य जगत में सर्वत्र अशान्ति फैल रही है, क्योंकि सब देश, समाज, व्यक्ति एक-दूसरे के हनन करने में लगे हुए हैं।

लगभग सभी ईर्ष्या व घृणा के वशीभूत हैं जिसके कारण मानव-जीवन अस्त-व्यस्त हो रहा है। झगड़-फसाद चल रहे हैं, भयानक युद्ध की तैयारियां की जा रही हैं।

मदांध देश एवं व्यक्ति क्षण भंगुर माया व सांसारिक प्रलोभनों के वशीभूत होकर एक-दूसरे का संहार करने पर तुले हुए हैं।

जब तक कुटुम्ब, समाज या देश के लोगों की बुद्धि स्वार्थ त्याग-मय नहीं बनेगी तब तक उन्हें कभी स्थाई सुख-शांति प्राप्त न होगी।

जो सुख, धन तथा मान बड़ाई से मिलता है अथवा राज्य सत्ता से प्राप्त होता है या युद्ध में विजय प्राप्त करने पर मिलती है। यह सब सुख क्षण भंगुर व नाशवान् है तथा समय के फेर से नष्ट हो जाते हैं। दया, सत्य, पवित्रता व स्वार्थ त्याग से एवम् संयम द्वारा ही स्थाई सुख व शांति प्राप्त होती है।

आप अपने प्रत्येक विचार, प्रत्येक भावना व इच्छा को उस दैवी शक्ति के पूर्णतया अधीन बनाइये जो आपके अन्तःकरण में स्थित है। यदि आप अन्तःस्थित ज्योतिस्वरूप ईश्वर की आज्ञाओं का पालन नहीं करेंगे तो आप सदा ठोकरें खाते ही रहेंगे व भटकते ही रहेंगे और कोई रक्षा नहीं कर सकेगा।

झूठे विवादों से, इन्द्रिय सुखों से एवं सांसारिक प्रलोभनों से दूर रहिये और अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाइए एवं स्वार्थ का त्याग कीजिए।

अन्तरात्मा के आदेश स्पष्ट व सत्य होते हैं। वह आपको सदा

दुष्कर्मों से बचाकर सन्मार्ग पर ले जाती है—उसी की शरण में सुख मिलेगा।

आपके समस्त पाप व कष्ट, भय, चिन्तायें आपके स्वयं के पैदा किये हुए हैं और आपके खुद के हाथ में यह बात है कि उनमें लिप्त रहें या छोड़ दें। पुण्य कर्म करना यह दैवी संपदा का फल है और इसका फल स्वर्ग व आनन्द है। पाप कर्म, तामसी सम्पदा वाले करते हैं—इनका फल बन्धन दुःख व नरक है। दैवी शक्तियां व देवदूत सदा पुण्यात्माओं व भक्तों के पास छाया की भांति मौजूद रहते हैं एवं उन्हें सदा शांति, सुख व आनन्द प्रदान करते रहते हैं। अगर आप उन्हें आंखों से नहीं देख सकते अथवा उनके शब्द नहीं सुन सकते या उनका सामीप्य प्राप्त नहीं कर सकते तो इसका कारण यह है कि आप अपने दुष्कर्मों द्वारा अयोग्य बन गये हैं और आपका अन्तःकरण छल-कपट, घृणा आदि से दूषित है और आप अपनी दुर्भावनाओं व कुवासनाओं के शिकार हैं।

आप वैसे ही अब हैं जैसा आप होना चाहते थे और भविष्य में भी वैसे बन सकेंगे जैसा आप चाहेंगे।

निस्वार्थ प्रेम की अनुभूति

केवल आत्मा ही सत्य, नित्य व सनातन है, अन्य सब वस्तुएं नाशवान हैं। ईश्वर भक्ति ही स्थिर रहती है, मानव प्रेम तो संकीर्ण, संकुचिक, स्वार्थयुक्त होते हैं और उनका अन्त दुखदाई होता है केवल ईश्वर प्रेम व निस्वार्थ प्रेम स्थाई व आनन्दप्रद होता है। बहुधा ऐसा होता है कि नारी प्रेम के पुजारी किसी संयोग व घटनावश कामभोगों से स्त्री के मोह से मुक्त होकर अपना प्रेम स्त्री से हटाकर भगवान की ओर ले जाते हैं और अपना जन्म सफल कर लेते हैं।

लोग घमण्डो व अभिमानी होते हैं, सत्ता के लोभी व स्वार्थपरायण होते हैं, वे ही पराजय, पीड़ा, शोक तथा दुर्भाग्य के शिकार बनते हैं, इतिहास इसका साक्षी है।

मनुष्य जब सब ओर से निराश व दुखी होकर भगवान की शरण में आता है तो उसकी अवश्य ही रक्षा की जाती है। हरि चरणों में आने वाला कभी निराश नहीं हुआ न होगा।

परन्तु आज का मनुष्य लोभ, मोह तथा अज्ञान के वशीभूत होकर हीरा छोड़कर कांच के टुकड़े के लिए मरता है। अमृत छोड़कर विष पीना चाहता है। यही कारण है कि वह शोक व कष्टों से घिरा हुआ है और संसार बराबर तब तक दुखी बना रहेगा जब तक वह दूसरों के हक छीनने का यत्न करेगा। मनुष्य नियति व प्रारब्ध के कठिन बन्धनों में जकड़ा हुआ है, इन्हें तोड़ना सरल नहीं है।

सच बात तो यह है जिन बन्धनों में लोग जकड़े हुए हैं एवं दुखी हैं, उन बन्धनों या जंजीरों में मनुष्य ने स्वयं अपनी इच्छा से अपने को बंधवाया है और यह कि मनुष्य नियति की इन कठोर जंजीरों से बंधे रहना चाहते हैं, उनसे प्रेम करते हैं वे अपने स्वार्थ रूपी छोटे अन्धकारमय जेल को मधुर व सुखद समझते हैं।

यह ध्रुव सत्य है कि धुआ जैसे आग से पैदा होता है, छाया प्रतिमा की होती है वैसे ही कारण से काय होता है और दुख या सुख, नरक या स्वर्ग सब मनुष्य के स्वयं के कर्मों व विचारों के ही फल हैं। संसार में कोई भी परिस्थिति व दशा ऐसी नहीं जो कर्म सम्भव न हो और वह दशा या प्रारब्ध ईश्वरी विधान के अनुसार ही बनती है।

जो मनुष्य विपत्ति, शोक, कष्ट तथा पीड़ाएं आदि भोगते हैं वे सब उनके खुद के वर्तमान या पिछले दुष्कर्मों या अपराधों का ही फल है और जो आज सुख आनन्द, सम्पत्ति, वैभव भोग रहे हैं वह सब उनके दान, तपस्या, त्याग व धर्म का ही फल है।

आज की दुनियां युद्ध, झगड़े, पार्टीबाजी, सत्ता का लोभ व स्वार्थ में बुरी तरह फंसी हुई है और इसीलिए दुखी है। अगर मनुष्य स्वार्थ छोड़कर समस्त जीवों से प्रेम करे तो सर्वथा सुखी हो सकता है। कभी पराई निन्दा या आलोचना किसी की न करे, क्योंकि वह अज्ञान व दुखजनक है।

नोट—कर्मों से ही सावित्री सीता, दमयन्ती आदि सती देवियों ने व मीरा ने अपने कुलों को पवित्र करके संसार में अक्षय कीर्ति प्राप्त की थी और कर्मों से ही दुराचार प्रवृत्त स्त्रियां अपयश व नरक प्राप्त करती हैं। कर्मों से ही ऋषि, मुनि, सन्त, भक्त संसार में सुख पाकर वैकुण्ठ, स्वर्ग व कीर्ति पा चुके हैं। कर्मों द्वारा ही महाराजा विक्रम संवत के चलाने वाले बने। कर्मों से ही सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, रैदास, नामदेव ने तथा नरसी भक्त ने प्रत्यक्ष उस सर्वशक्ति मान को साकार बनाकर नचाया व कर्मों से ही आज के भूले, मूर्ख, पथ-भ्रष्ट, अज्ञ व्यक्ति हत्या, बलात्कार, चोरी, डकैती, धोखा करके घोर कष्ट, पीड़ाएं व दुख भोग रहे हैं।

१२१७२ टैक्निकल प्रिंटिंग प्रेस सोनीपत (निकट दिल्ली) में मुद्रित।